VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-III

हिन्दी

हिन्दी गद्य

SYLLABUS

UNIT-I **हिन्दी गद्य साहित्य का संक्षिप्त इतिहास—**

- हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास
- हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास
- हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास
- हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास
- हिन्दी की अन्य गद्य विधाओं का उद्भव और विकास

UNIT-II **हिन्दी गद्य की महत्त्वपूर्ण विधाओं का संक्षिप्त परिचय**—तत्त्व एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- कहानी
- उपन्यास
- नाटक
- एकांकी
- आलोचना
- निबन्ध
- यात्रा वृत्तान्त
- संस्मरण
- रेखाचित्र
- डायरी
- रिपोर्ताज
- आत्मकथा
- जीवनी
- व्यंग्य

UNIT-III **हिन्दी उपन्यास—**

- गबन–प्रेमचन्द

UNIT-IV **हिन्दी कहानी—**

- पंच परमेश्वर—प्रेमचन्द
- पाजेब—जैनेन्द्र
- परदा—यशपाल
- तीसरी कसम—रेणु
- विष्णु प्रभाकर–धरती अब भी घूम रही है
- गंगा प्रसाद विमल—विध्वंस

UNIT-V **हिन्दी नाटक एवं एकांकी—**

नाटक—

- चन्द्रगुप्त—जयशंकर प्रसाद

एकांकी—

- दीपदान—डॉ० रामकुमार वर्मा
- रीढ़ की हड्डी—जगदीश चन्द्र माथुर

UNIT-VI **हिन्दी निबन्ध—**

- भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
- मित्रता—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- अशोक के फूल—हजारीप्रसाद द्विवेदी
- उत्तरा फाल्गुनी के आस-पास—कुबेरनाथ राय
- तुम चन्दन हम पानी—डॉ० विद्यानिवास मिश्र

Unit-VII **अन्य गद्य विधाएँ : प्रथम खण्ड**

- रेखाचित्र (गिल्लू—महादेवी वर्मा)
- संस्मरण (तीस बरस का साथी—रामविलास शर्मा)
- जीवनी अंश (कलम का सिपाही—अमृत राय)
- रिपोर्ताज (पहाड़ी रिक्शा—कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर)
- व्यंग्य (एक फाइल का सफर—रवीन्द्र नाथ त्यागी)

Unit-VIII **अन्य गद्य विधाएँ : द्वितीय खण्ड—**

- यात्रा वृत्तान्त (मेरी तिब्बत यात्रा—राहुल सांकृत्यायन)
- डायरी अंश (एक साहित्यिक की डायरी—भूमिका भाग एवं तीसरा क्षण पृष्ठ सं० 7-28 मुक्तिबोध)
- इंटरव्यू (मैं इनसे मिला, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—पद्म सिंह शर्मा कमलेश)
- आत्मकथा अंश (जूठन—ओमप्रकाश वाल्मीकि)

TOUCH 'n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, बागपत रोड, टी०पी० नगर,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : हिन्दी गद्य साहित्य का संक्षिप्त इतिहास ...3
UNIT-II : हिन्दी गद्य की महत्त्वपूर्ण विधाओं का संक्षिप्त परिचय : तत्त्व एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ ...22
UNIT-III : हिन्दी उपन्यास : गबन–प्रेमचन्द ...46
UNIT-IV : हिन्दी कहानी ...60
UNIT-V : हिन्दी नाटक एवं एकांकी ...81
UNIT-VI : हिन्दी निबन्ध ...94
UNIT-VII : अन्य गद्य विधाएँ : प्रथम खण्ड ...121
UNIT-VIII : अन्य गद्य विधाएँ : द्वितीय खण्ड ...138
© मॉडल पेपर ...160

UNIT-I

हिन्दी गद्य साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कहानी के स्वरूप का निर्धारण कैसे होता है?

उत्तर कहानी जीवन का एक कलात्मक प्रतिबिम्ब ही है, इसी कारण इसमें मानव के तन-प्रकाशमय जीवन को रंजक और मंगलमय रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

प्र.2. अज्ञेय के अनुसार कहानी की क्या परिभाषा है?

उत्तर अज्ञेय के अनुसार, "कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है जो उम्र भर चलती रहती है और समाप्त नहीं होती है।"

प्र.3. गद्य कहानी का आविर्भाव कब माना जाता है?

उत्तर गद्य कहानी का आविर्भाव 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में माना जाता है।

प्र.4. हिन्दी की पहली मौलिक कहानी किसे माना जाता है?

उत्तर कुछ विद्वान 19वीं शताब्दी से पूर्व प्रकाशित राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द द्वारा रचित 'राजा भोज का सपना' को हिन्दी कहानी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं।

प्र.5. हिन्दी कहानी के इतिहास को कितने भागों में विभाजित किया गया है?

उत्तर हिन्दी कहानी के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया गया है—

1. स्वातन्त्रय पूर्व की हिन्दी कहानी,
2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी।

प्र.6. हिन्दी कहानी का प्रथम सोपान या प्रथम युग किसे कहा जाता है?

उत्तर प्रेमचन्द्र से पूर्व हिन्दी कहानी 'इंदुमती' (सन् 1903) से लेकर 'उसने क्या कहा था' के प्रकाशन तक के काल को हिन्दी कहानी का प्रथम सोपान या प्रथम युग कहा जाता है।

प्र.7. उपन्यास की परिभाषा दीजिए।

उत्तर उपन्यास की परिभाषा देना सरल नहीं है परन्तु व्यापक दृष्टि से कह सकते हैं कि यह गद्य साहित्य का एक ऐसा रूप है, जिसका आधार कथा है।

प्र.8. हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम को कितने भागों में बाँटा गया है?

उत्तर हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम को तीन भागों में बाँटा गया हैं—

1. उद्‌भव काल अथवा भारतेन्दु युग।
2. मध्य काल अथवा प्रेमचन्द्र युग।
3. आधुनिक काल अथवा प्रेमचन्द्रोत्तर युग।

प्र.9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी का प्रथम उपन्यास किसे माना?

उत्तर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा विरचित 'भाग्यवती' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. जयशंकर प्रसाद के हिन्दी उपन्यास 'तितली' में किसकी भावना पर बल दिया गया है?

उत्तर जयशंकर प्रसाद के हिन्दी उपन्यास 'तितली' में ग्राम सुधार की भावना पर बल दिया गया है।

प्र.11. राग दरबारी उपन्यास किसके द्वारा रचित है?

उत्तर राग दरबारी उपन्यास श्रीलाल शुक्ल द्वारा रचित है।

प्र.12. उपन्यास में देश-काल से क्या तात्पर्य है?

उत्तर उपन्यास में देश-काल से तात्पर्य उस देश (स्थान) और समय से है, जिसका वर्णन उपन्यासकार अपनी कृति में करता है।

प्र.13. हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ कौन-कौन-सी है?

उत्तर हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ हैं—जीवनी, गद्य गति, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि।

प्र.14. पाँचवा वेद किसे कहा जाता है?

उत्तर पाँचवा वेद नाटक को कहा जाता है।

प्र.15. नाटक का आविर्भाव कब माना जाता है?

उत्तर हिन्दी नाटक का आविर्भाव डॉ० दशरथ ओझा ने 13वीं शताब्दी में माना।

प्र.16. प्रथम हिन्दी नाटक किसे माना जाता है?

उत्तर महाकवि विद्यापति द्वारा रचित मैथिली नाटक 'गोरक्ष विजय' को प्रथम नाटक कहा।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कहानी की विशेषताएँ क्या हैं?

उत्तर

कहानी की विशेषताएँ

कहानी में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

1. कहानी एक कथात्मक संक्षिप्त गद्य रचना है, अर्थात् कहानी आकार में छोटी होती है जिसमें कथा-तत्त्व की प्रधानता होती है।
2. कहानी में 'प्रभावान्विति' होती है अर्थात् कहानी में विषय के एकत्व के साथ ही प्रभावों की एकता का होना भी बहुत आवश्यक है।
3. कहानी ऐसी हो, जिसे बीस मिनट, एक घण्टा या एक बैठक में पढ़ा जा सके।
4. कौतूहल और मनोरंजन कहानी का आवश्यक गुण है।
5. कहानी में जीवन का यर्थाथ होता है, वह यर्थाथ जो कल्पित होते हुए भी सच्चा लगे।
6. कहानी में जीवन के एक तथ्य का, एक संवेदना अथवा एक स्थिति का प्रभावपूर्ण चित्रण होता है।
7. कहानी में तीव्रता और गति आवश्यक है जिस कारण विद्वानों ने उसे 100 गज की दौड़ कहा है। अर्थात् कहानी आरम्भ हो और शीघ्र ही समाप्त भी हो जाए।
8. कहानी में एक मूल भावना का विस्तार असख्यानात्मक शैली में होता है।
9. कहानी में प्रेरणा बिन्दु का विस्तार होता है।
10. कहानी की रूपरेखा पूर्णत: स्पष्ट और सन्तुलित होती है।
11. कहानी में मनुष्य के पूर्ण जीवन नहीं बल्कि उसके चरित्र का एक अंग चित्रित होता है, इसमें घटनाएँ व्यक्ति केन्द्रित होती हैं।
12. कहानी अपने आप में पूर्ण होती है।

उक्त विशेषताओं को आप ध्यान से बार-बार पढ़कर कहानी के मूल भाव और रचना-प्रक्रिया को समझ पाएँगे। इन सब लक्षणों या विशेषताओं को ध्यान में रखकर हम आसान शब्दों में कह सकते हैं कि—"कहानी कथा-तत्त्व प्रधान ऐसा खण्ड या प्रबन्धात्मक गद्य रूप है, जिसमें जीवन के किसी एक अंश, एक स्थिति या तथ्य का संवेदना के साथ स्वत: पूर्ण और प्रभावशाली चित्रण किया जाता है।" किसी भी कहानी पर विचार करने से पहले उसे पहचानना आवश्यक होता है। आगे के पाठों में हम इस पर और विस्तार से बात करेंगे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. कहानी के उद्देश्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

कहानी के उद्देश्य

प्राय: कहानी का उद्देश्य 'मनोरंजन' माना जाता है, पर विद्वानों के अनुसार कहानी किसी लक्ष्य-विशेष को लेकर चलती है और पाठक को भी वहाँ तक पहुँचा देती है। वस्तुत: कहानी का उद्देश्य यर्थाथ के सुरूचि पूर्ण वर्णन द्वारा उच्च आदर्शों का संदेश देना है। चूँकि कहानी में जीवन की जटिलताओं, दैनन्दिन कार्यकलापों एवं व्यस्तताओं को उद्घाटित किया जाता है। अत: कहानी अपनी संक्षिप्तता और संप्रेषणता के द्वारा मनुष्य को जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझने में मद्द करती है।

कहानी के छ: तत्त्वों को ज्यो-का-त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता है। क्योंकि आजकल कई कहानियों में कथानक का वह स्वरूप नहीं मिलता जो समीक्षकों ने परम्परागत रूप में रखा है। कई कहानियों में संवाद होता ही नहीं है। इसी तरह केवल मनोरंजन के उद्देश्य से ही कई कहानियाँ नहीं लिखी जाती। अब तक कहानी की यात्रा अपने आरम्भ से लगातार परिवर्तनशील रही है। तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपर्युक्त छ: तत्त्व आज की कहानी के लिए सीमा रेखा नहीं बना सकते। अत: परम्परा से चली आ रही मूल्यांकन दृष्टि को तोड़ना होगा।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुए कथाकार और समीक्षक 'बटरोही' ने कहानी के केवल दो तत्त्व बताए—(1) शाब्दिक जीवन प्रतिबिम्ब (2) उससे नि:सृत होने वाली 'एक' एवं 'प्रत्यक्ष' (मानवीय) संवेदना। वे स्पष्ट करते हैं कि जीवन-प्रतिबिम्ब के अंग के रूप में पात्र और वातावरण आ जाते हैं, उनका आना अनिवार्य हो, ऐसी बात नहीं हैं। बहुत बार कहानीकार के अलावा कहानी में कोई दूसरा पात्र नहीं होता। इस विधा के दो निम्नलिखित रचना-तत्त्व हैं—

(अ) **कथा-तत्त्व**—'कथा-तत्त्व' से आशय परम्परागत रूप से चला आ रहा 'कथानक' नहीं हैं अपितु जीवन-जगत के प्रतिबिम्बों का कथन और उनका प्रत्यक्षीकरण है। घटनाओं, क्रिया-व्यापारों और चरित्रों के माध्यम से किसी एक संवेदना को जगाने के लिए अपनाया गया कथा-परिवेश।

(ब) **संरचना-तत्त्व**—'संरचना-तत्त्व' इस कथन तत्त्व को या जीवन-जगत् के प्रतिबिम्बों को प्रभावशाली ढंग से विन्यासित करने वाले उपादन है, जिसे हम भाषा, संवाद और इनके द्वारा निर्मित वातावरण, शैली आदि के रूप में देख सकते हैं। वस्तुत: ये दोनों तत्त्व परस्पर घुले-मिले रहते हैं और कहानी को प्रभावशाली बनाने में अपना योगदान देते हैं। संरचना-तत्त्व ही कहानी का 'रचनात्मक परिवेश' है, जिससे कहानीकार संवेदना का प्रभावपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है।

प्र.3. हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

हिन्दी उपन्यास का उद्भव

अब तक आपने उपन्यास के स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त की। इन जानकारियों से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न हो रहे होंगे कि क्या हिन्दी उपन्यास में समयानुकूल अनेक परिवर्तन हुए होंगे? मन में इस प्रश्न का उभरना स्वाभाविक है। लेकिन इसका उत्तर जानने से पूर्व हमें हिन्दी उपन्यास के उद्भव के विषय में जानना भी आवश्यक हो जाता है। जैसा कि हिन्दी कहानियों के अध्ययन करते समय पूर्व भी यह जानकारी ले चुके है कि भारत में कथा साहित्य की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। रामायण, महाभारत, उपनिषद् आदि ग्रन्थ अनेक कथा कहानियों से भरे पड़े हैं लेकिन हिन्दी साहित्य में जिस कहानी को हम आज पढ़ते या सुनते हैं उसके बीज पश्चिमी साहित्य से भारतीय साहित्य में आये। इसीलिए वर्तमान के हिन्दी उपन्यास भी कहानी विधा की भाँति ही पश्चिमी साहित्य की देन है। तभी तो हिन्दी उपन्यास का इतिहास भी कहानी साहित्य के इतिहास की भाँति बहुत प्राचीन नहीं है। जैसा हिन्दी साहित्य के इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि हिन्दी साहित्य की इस विधा का जन्म भारतेन्दु युग में हुआ। पहले तो बंगाल उपन्यासों के अनुवाद द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य की नींव रखी गयी और इसके पश्चात् भारतेन्दु युग में अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी से हिन्दी उपन्यास की शून्यता को समाप्त किया।

हिन्दी उपन्यास का विकास

भारतेन्दु युग में जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं का जन्म हुआ उसी प्रकार हिन्दी उपन्यास भी अस्तित्व में आया। उस समय के शीर्ष साहित्यकार भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने अनेक साहित्यकारों को इस विधा पर लेखनी चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। इसी के परिणाम स्वरूप लाल श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु' नामक वह उपन्यास लिखा, जिसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है। इनके पश्चात् अनेक लेखकों ने इस विधा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। मुंशी प्रेमचन्द्र इसी उपन्यास विधा को

TOUCH 'n PASS

आगे बढ़ाने में प्राणप्रण से जुट गये इसीलिए हिन्दी उपन्यास के इतिहासकारों ने मुंशी प्रेमचन्द को केन्द्र में रखकर हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम पर अपनी लेखकी चलायी।

इन्होंने हिन्दी के उपन्यास साहित्य का इतिहास लिखते समय इसे तीन चरणों में विभक्त किया—

1. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास।
2. प्रेमचन्द्र युग के हिन्दी उपन्यास।
3. प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यास।

प्र.4. हिन्दी उपन्यास की विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

उपन्यास की विशेषताएँ

विद्वानों ने उपन्यास में निम्नलिखित तथ्यों को प्रस्तुत किया है—

1. उपन्यास यर्थाथ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। यर्थाथ से तात्पर्य है कि जीवन जैसा दिखता या अनुभव होता है। इस जाने-पहचाने जीवन के अनुभव को कल्पित घटनाओं तथा पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार रूपायित करता है। यह रूपायन कल्पित होते हुए भी मूलत: यर्थाथ है।
2. उपन्यास का मूल तत्त्व मानव चरित्र हैं। इसमें मनुष्य के चरित्र का बाह्य पक्ष या आचरण पक्ष तो प्रस्तुत होता ही हैं, साथ ही उसके मन की विभिन्न स्थितियों का उद्‌घाटन भी होता है।
3. उपन्यासकार जीवन की कथा कहकर पाठकों की उत्सुकता जगाता है। बाद में उसी जिज्ञासा का शमन मानव चरित्र के आन्तरिक उद्‌घाटन तथा परिस्थितियों को प्रकाश में लाकर करता है। इस प्रकार सरस कथा होते हुए भी वह जीवन का गहन गंभीर विश्लेषण करता हैं।
4. उपन्यासकार अपने समकालीन जीवन को दृष्टि में रखकर उसके आधार पर उपन्यास में प्रस्तुत जीवन की व्याख्या और विश्लेषण करता है।

प्र.5. हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

हिन्दी गद्य साहित्य की अन्य विधाएँ

साहित्य की विभिन्न विधाओं; जैसे—कविता, कहानी, नाटक, एकांकी, जीवनी, संस्मरण, उपन्यास, निबंध, रेखाचित्र आदि का इस्तेमाल पाठ्य सामग्री के रूप में विभिन्न कौशलों के विकास के लिए किया जा सकता है—

1. **नाटक**—नाटक में किसी महापुरुष के जीवन की घटनाओं का अनुकरण किया जाता है। जो कलाकार इन घटनाओं का अनुकरण कर हमारे सामने पेश करता है। अभिनेता कहलाता है। नाटक में मूलभाव अनुकरण या नकल होता है। नाटक का आनंद देख कर लिया जाता है, इसलिए यह दृश्य-काव्य कहलाता है। नाटक की वास्तविक सफलता मंच पर खेले जाने में है। जिन व्यक्तियों की कथा नाटक में होती है, वे आपस में या स्वयं से वार्तालाप करते हैं और भाषा वार्तालाप का आधार होती है।
2. **एकांकी**—एकांकी में एक घटना होती है और वह नाटकीय कौशल से चरम सीमा तक पहुँचती है। इसमें सम्पूर्ण कार्य एक ही स्थान और समय में होता है। एकांकी में जीवन के किसी एक पक्ष को लिया जाता है। कम-से-कम पात्र होते हैं। इसमें छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन नहीं किया जाता है। सक्षिप्तता एकांकी के लिए आवश्यक है।
3. **उपन्यास**—उपन्यास में लेखक मानव जीवन की तस्वीर को इस निपुणता से प्रस्तुत करता है कि हम उसमें डूब जाते हैं और उसमें वर्णित कथा हमें अपनी सी लगती है। उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण किया जाता है।
4. **कहानी**—कहानी एक ऐसा आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक पर किसी एक प्रभाव को उत्पन्न कर सके। इसमें उन सभी बातों को छोड़ दिया जाता है जो इस प्रभाव को आगे बढ़ाने में मदद नहीं करतीं। कहानी में जीवन के किसी एक अंक का चित्रण रहता है। बड़ी-से-बड़ी कहानी भी छोटे-से-छोटे उपन्यास से छोटी होती है। कहानी में विचार को सांकेतिक रूप में रखा जाता है।
5. **निबंध**—निबंध गद्य की वह विधा है जिसमें विचारों को क्रमबद्ध रूप में रखा जाता है। निबंध के लेखन के लिए अध्ययन और विषय का ज्ञान आवश्यक है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "निबंध सीमित आकार वाली वह रचना है जिसमें विषय का प्रतिपादन निजीपन, स्वच्छता, सौष्ठव, सजीवता और आवश्यक संगति तथा संबद्धता के साथ किया जाता है।"

TOUCH 'n PASS

6. **आत्मकथा**—आत्मकथा का लेखक अपने जीवन के बारे में खुद लिखता है। दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई अपनी जीवनी आत्मकथा है। आत्मकथा का नायक लेखक स्वयं होता है। इसमें वह अपने बीते हुए जीवन पर दृष्टि डालता है। अपने अतीत का विश्लेषण करता है।
7. **जीवनी**—जीवनी का लेखक किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में लिखता है। यानी जब कोई लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है तो उसे जीवनी कहते हैं। जीवनी का नायक लेखक स्वयं नहीं होता है, कोई अन्य व्यक्ति होता है।
8. **यात्रा वृत्तांत**—जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों का वर्णन करता है तो उसे यात्रा वृत्त या यात्रा साहित्य कहते हैं। लेखक वर्ण्य विषय का वर्णन आत्मीयता तथा निजता के साथ करता है। जिस विषय का वह वर्णन करता है उसके साथ उसका जुड़ाव होता है तथा उसके अपने जीवन संदर्भ भी उसमें आते हैं। यात्रा वृतांत्त का लेखक यात्रा के विवरणों में स्थान, दृश्य, घटनाएँ तथा व्यक्ति से सम्बन्धित कटु एवं मधुर स्मृतियों का चित्रण करता है।
9. **रेखाचित्र**—जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। इस प्रकार के वर्णन में व्यक्ति को तटस्थ होना पड़ता है।
10. **संस्मरण**—जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण स्मृति के आधार पर लिखा जाता है। संस्मरण लिखने के लिए जरूरी है कि लेखक का वर्णित व्यक्ति, घटना आदि के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रहा हो। संस्मरण अतीत का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं। लेखक को उसमें अपनी कल्पना से कुछ भी जोड़ने की छूट नहीं होती।
11. **कविता**—कविता लयात्मक होती है। अमूर्त होती है। उसमें बिंबों का प्रयोग होता है। साथ ही उसमें मितव्ययता का खास ख्याल रखा जाता है यानी कम-से-कम शब्दों में अधिक और गहरी बात कहने की कोशिश की जाती है। कविता के प्रभाव उसे विशिष्ट बनाते हैं। कविता मुक्त छंद में भी लिखी जाती है और दूसरी तरफ छंदोबद्ध कविताएँ भी होती हैं। जैसे—दोहा, चौपाई आदि। कविता का अनुवाद कठिन होता है।

प्र.6. हिन्दी नाटक की व्युत्पत्ति एवं अर्थ पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

नाटक की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं व्याख्या

नाटक का उद्भव और विकास विवेचन विश्लेषण से पूर्व नाटक शब्द की व्याख्या एवं अर्थ तथा व्युत्पत्ति से अवगत हो लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

नाट से पूर्व नट् धातु है जिससे नट व्युत्पन्न हुआ है।

'नट्'—सं० नट् (नत्य) + अच् अभिनय में वह व्यक्ति जो किसी का रूप धारण करके उसकी चेष्टाओं का अभिनय करता है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति सं. नट् (नाचना) + घञ से हुई है जिसका अर्थ नच्च, नाच, नत, नत्य, नकल या स्वांग होता है। नाटक से पूर्व नट् से नाटा शब्द व्युत्पन्न हुआ है। इसलिए नाटक से नाट की व्यत्पत्ति देखी।

नाटक—सं. नट् + ण्वुल—अक प्रत्यय से नाटक की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ नाट्य या अभिनय करने वाला या नटों या अभिनेताओं के द्वारा मंचन। अभिनय इसका अंग्रेजी पर्याय ड्रामा है।

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नाटक शब्द तक पहुँचने से पूर्व—नच्च—नाच—नत्—नत्य, नट—नाट—नाट्य—नाटक शब्द प्रमुख हैं।

नच्च (अंग प्रत्यंग को हिलाना) से क्षतिपूरक दीर्घीकरण से नाच (वाद्य यंत्र सहित स्वर, लय, ताल पर नाचना क्रिया की संज्ञा), नत् में सांस्कृतिक भाव आ जाता है। नत् से (नत्य) बन जाता है। नट से नाट नकल स्वांग का भाव आ जाता है। जिससे नाट्य शब्द बना है। नाट्य से नाटक की व्युत्पित्ति हुई है।

अंग प्रत्यंग हिलाना, अंग प्रत्यंग वाद्य यंत्र के साथ, भावाभिव्यक्ति, तथा अभिनय के साथ कथा की अभिव्यक्ति नाटक कहलाती है।

प्रथम हिन्दी नाटक—नाटक का बीजवपन वेदों में हो चुका था जिसके आधार पर नाटक को पाँचवां वेद कहा जाता है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में घटना का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार देवताओं से प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस लेकर पाँचवें वेद अर्थात् नाटक को जन्म दिया। शिव ने तांडव नृत्य तथा पार्वती ने लास्य प्रदान किया।

KUCHH MORE

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के बाद ही नाटक का आविर्भाव हुआ। उत्तर-वैदिक युग से पूर्व नाटक का आगमन हो चुका था। 'यवनिका' के आधार पर नाटक को यूनान की देन कहा गया। वह भी सत्य नहीं क्योंकि शब्द यवनिका नहीं 'जवनिका' है। जब वेग के अनुसार, जवनिका—वेग से उठने गिरने वाला पर्दा होता है। यूनानी नाटक में पर्दा नहीं होता था, अंक नहीं होते थे आदि।

पाणिनि (ईसा 400 वर्ष पूर्व) ने नाटक का उल्लेख किया है। रामायण, महाभारत में नाटक का उल्लेख है। उपलब्ध नाटकों में सबसे प्राचीन महाकवि भास की रचनाएँ हैं। कालिदास, शुद्रक, भवभूति, हर्षवर्द्धन, भट्ट नारायण तथा विशाखदत्त आदि नाटककार थे। उसके बाद नाट्य कला विलुप्त सी हो गई।

डॉ० दशरथ ओझा ने तेरहवीं शताब्दी से नाटक का आविर्भाव माना है। सर्वप्रथम उपलब्ध नाटक "गय सुकुमार रास" है जिसका रचनाकाल संवत् 1289 वि० है। इस की भाषा पर राजस्थानी हिन्दी का प्रभाव है। नाटकीय तत्त्वों पर प्रकाश नहीं पड़ता है। इसलिए इसे प्रथम नाटक नहीं कहा जा सकता है।

महाकवि विद्यापति द्वारा रचित मैथिली नाटक 'गोरक्ष विजय' को प्रथम नाटक कहा गया है। किन्तु पद्य भाग मैथिली में है। मैथिली नाटकों के बाद रास नाटक अर्थात् ब्रजभाषा पद्य के नाटक आये। उसके पश्चात् हिन्दी में पद्य वद्य नाटकों की रचना होती रही जिनमें 'प्रबोध चंद्रोय' को प्रथम नाटक कुछ आलोचकों ने माना है। यशवंत सिंह को प्रथम नाटककार माना है। इसका रचनाकाल सं० 1700 वि० है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हिन्दी कहानी के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

हिन्दी कहानी का उद्भव

कहानी शब्द हमारे लिए अपरचित शब्द नहीं है, क्योंकि बचपन में हम जिसे कथा कहते थे, कहानी उसी कथन का साहित्यिक रूप है। इस कहानी को हमने कभी दादा-नानी के मुख से लोक कथा के रूप में सुना तो कभी पण्डित जी के मुख से धार्मिक कथा के रूप में सुना है। ये सभी राजा रानी की कहानियाँ, पशु पक्षियों की कहानियाँ, देवताओं और राक्षसों की कहानियाँ, चमत्कारों और जादूटोनों की कहानियाँ, भूत प्रेतों की कहानियाँ, मूर्ख और बुद्धिमानों की कहानियाँ वर्तमान की कहानियों का पुरातन स्वरूप थीं, जिन्हें लोग बड़े चाव से सुनते और सुनाते थे। इनके अतिरिक्त, पुराण, रामायण, महाभारत, पन्चतंत्र, बेताल पच्चीसी, जातक कथाएँ आदि कई प्राचीन ग्रन्थ इन कहानियों का आदि स्रोत रहे हैं। इन कहानियों को पढ़ने-सुनने से जहाँ जन सामान्य से लेकर विद्वानों का मनोरंजन होता था, वहाँ इनके माध्यम से अनेक शिक्षाएँ तथा उद्देश्य प्राप्त होते थे। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इन्हें एक ही साथ कई घंटों और दिनों तक सुना जा सकता है। जिन्हें बार-बार सुनने पर नीरसता की अपेक्षा और अधिक सरसता प्राप्त होती है। ये सभी कहानियाँ हमें परम्परा से प्राप्त हुई, इनमें अतिसंख्य कहानियाँ कल्पना पर आधारित होती हैं, लेकिन कहीं-कहीं इन कहानियों में ऐतिहासिक तथ्यों को भी उजागर किया जाता है। ये ही कहानियाँ वर्तमान कहानी का प्राचीन स्वरूप है।

प्राचीन कहानियाँ घटना प्रधान होती थी, जिस घटना के माध्यम से लेखक या वक्ता अपने उद्देश्य की पूर्ति करते थे। इसके लिए वे कहानियों की घटनाओं को मनोइच्छित रूप देते थे। कहानी की रचना के लिए वे काल्पनिक, दैवीय, और चमत्कारी घटनाओं का आविष्कार करते थे। लेकिन वर्तमान की कहानी पुरातन कहानी से एकदम भिन्न है। क्योंकि आज का कहानीकार कहानी की घटना को मानव के यथार्थ जीवन से जोड़ता है, कहानी लिखते समय कहानीकार यह ध्यान रखता है कि जिस कहानी की वह रचना कर रहा है वह अस्वाभाविक न लगे। जिस चरित्र को वह प्रस्तुत कर रहा है, वह समाज के अन्दर क्रियाशील मानव की भाँति ही प्रतीत हो। वह उसके द्वारा ऐसे कार्य नहीं करा सकता जो मनुष्य के लिए असम्भव हो। पुरातन कहानियों के चरित्र ऐसे होते हैं जो असम्भव कार्य को कर देते हैं। लेकिन वर्तमान की कहानियाँ के पात्र अपने समय और परिस्थितियों के अनुकूल क्रियाशील होते हैं। आज समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा है, इसीलिए इसी साहित्य के गद्य रूप कहानी में भी काफी बदलाव आ रहे हैं। वर्तमान की हिन्दी कहानी का उद्भव 18वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। कुछ विद्वान हिन्दी कहानी के प्रारम्भ के अन्तर्सूत्र भारत की प्राचीन कथा परम्परा से जोड़ते हैं तो कुछ कहानी विधा को पाश्चात्य साहित्य की देन मानते हैं। कुछ साहित्यधर्मी हिन्दी कहानी का उद्भव स्रोत गुणाढ्य की वृहद कथा, कथा सरित सागर, पंचतंत्र कथाएँ, हितोपदेश जातक कथाओं से जोड़ते हैं तो कुछ विद्वान स्वामी गोकुल नाथ की चौरासी वैष्णवन की वार्ता को हिन्दी का प्रथम कहानी संग्रह मानते हैं, लेकिन ये कहानियाँ नहीं जीवनियाँ मात्र हैं।

TOUCH 'n' PASS

हिन्दी कहानी का विकास

जैसा कि विद्वान स्वीकारते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी में कहानी का आरम्भ उस समय हुआ जब अंग्रेजों के प्रभाव से गद्य लिखा गया। अंग्रेजों ने हिन्दी गद्य के विकास के लिए जिन लेखकों को तैयार किया उनकी आरम्भिक रचनाएँ एक तरह की कहानियाँ हैं। इन गद्य लेखकों में इंशा अल्ला खाँ एक ऐसे गद्यकार थे जिन्होंने ''रानी केतकी की कहानी'' जैसी कहानी का सृजन किया लेकिन वर्तमान के समालोचक इसे आधुनिक हिन्दी कहानी के स्वरूप और कथ्य से भिन्न मानते हैं। वर्तमान में कहानी के लिए जिन तत्त्वों को निर्धारित किया गया है, रानी केतकी की कहानी में वे सभी तत्त्व नहीं मिलते। वर्तमान की कहानी लेखन की प्रेरणा पूर्व में अंग्रेजी और बांग्ला में रची गयी और हिन्दी अनुदित कहानियों से मिली, क्योंकि 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच आदि भाषाओं में कहानी का अच्छा विकास हो चुका था।

'नासिकेतो पाख्यान' तथा 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी न मानने के पीछे उसमें कहानी तत्त्वों का अभाव है। इसके पश्चात् भारतेन्दु की 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' प्रकाश में आयी लेकिन विद्वानों ने इनमें भी कहानी कला के तत्त्वों के अभाव के दर्शन किये। वैसे हिन्दी कहानी का प्रारम्भ सन् 1900 में प्रकाशित होने वाली उस 'सरस्वती' पत्रिका से हुआ जिससे पंडित किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (1900 ई०) का प्रकाशन हुआ था। हिन्दी कहानी के इस विकास पर गहरी दृष्टि डालने के लिए हमें हिन्दी कहानी के महान कहानीकार प्रेमचन्द्र को केन्द्र में रखकर चर्चा करनी होगी।

प्र.2. गद्य कहानी के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

उत्तर

गद्य कहानी का स्वरूप

गद्य के भीतर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, समीक्षा आदि विधाएँ आती हैं। इनमें से कहानी, उपन्यास और नाटक को हम कथा-साहित्य कहते हैं। कथा-साहित्य में किसी-न-किसी घटना क्रम के सन्दर्भ में प्रेम, ईर्ष्या, रहस्य, रोमांच, जिज्ञासा और मनोरंजन सम्बन्धी भाव मिले-जुले होते हैं। कहानी का सम्बन्ध सृष्टि के प्रारम्भ से ही जोड़ा जाता है। मानव ने जिस दिन से भाषा द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति आरम्भ की होगी सम्भवत: उसी दिन उसने कहानी कहना और सुनना आरम्भ कर दिया होगा।

प्रारम्भ में कहानी में व्यक्ति के अनुभव सीधे-सीधे कहे गये होंगे। यानि घटना या अनुभव को बाँटने की क्रिया ही कहानी बन गयी होगी। वास्तव में दो लोगों के बीच भूख-प्यास, सुख-दु:ख, भय-आशंका, प्रेम-ईर्ष्या, जीवन और सुरक्षा की भावना समान और सामान्यत: पायी जाती है। निश्चित ही दूसरों के साथ हुई घटना को सुनने और अपने अनुभवों को सुनाने की इच्छा आज भी हर एक मनुष्य में एक समान रूप से पायी जाती है। इसी सुनाने की इच्छा को कहने अर्थात् कहानी का प्रारम्भिक रूप बनाया होगा। स्पष्ट है कि मनुष्य के ज्ञान के साथ-साथ कहानी का विकास भी निरन्तर होता रहा है। मनुष्य के विकास का जो क्रम रहा वही कहानी के विकास का भी रहा है। जिस प्रकार आज मनुष्य का जीवन सरल से अत्यन्त जटिलता की ओर बढ़ा, कहानी का रूप भी उसी अनुरूप जटिल हो गया है। आज का जीवन तर्क प्रधान, बुद्धि प्रधान है, इसलिए कहानियाँ भी बुद्धि प्रधान हो गयी हैं।

कहानी का वर्तमान स्वरूप आधुनिक युग की देन है। भारत में कहानियाँ अपने अत्यन्त प्राचीनतम रूप में मिलती हैं। वेदों में हम भले ही कहानी के मूल रूप का आभास न कर पाएँ किन्तु उनमें कहानियों की व्यापक परम्परा रही है। महाभारत, बौद्ध साहित्य, पुराण, हितोपदेश, पंचतन्त्र आदि कहानियों के भण्डार हैं। पंचतन्त्र तो वास्तव में विश्व की कहानियों का स्रोत माना जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आधुनिक कहानी का यह स्वरूप अंग्रेजी साहित्य से होते हुए बांग्ला के माध्यम से मिला है। अपने प्राचीन रूप में गल्प, कथा, आख्यायिका, लघु कथा नाम से जानी जाने वाली कहानी का स्वरूप वर्तमान कहानी से बिलकुल अलग है। आजकल प्रचलित कहानियाँ मुख्यत: तीन रूपों में दृष्टिगत होती हैं जिन्हें कहानी, लघुकथा एवं लम्बी कहानी के नाम से जाना जाता है।

कहानी, लघुकथा, लम्बी कहानी

कहानी का दूसरा रूप है 'लघुकथा' और तीसरा 'लम्बी कहानी'। आजकल इन रूपों में कई रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं और लोग इन्हें एक ही मानने की भूल करते हैं। वे सोचते हैं कि कहानी छोटी होकर 'लघुकथा' और आकार बड़ा होने पर 'लम्बी कहानी' हो जाती है, जबकि आकार में औसत होने वाली कहानी ही कहानी है।

लघुकथा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ० पुष्पा बंसल ने कहा है ''लघुकथा कहानी की सजातीय है, किन्तु व्यक्तित्व में इससे भिन्न। यह मात्र घटना हैं, परिवेश-निर्माण को पूर्णतया छोड़कर पात्र-चरित्र-चित्रण को भी पूर्णतया त्यागकर विश्लेषण से अछूती

रहकर, मात्र घटना (चरम सीमा) की प्रस्तुति ही लघुकथा हैं। लघुकथा में प्रेरणा बिन्दु का विस्तार नहीं होता है, केवल बिन्दु होता है। लघुकथा मनोरंजन नहीं करती मन पर आघात करती है। चेतना पर ठोकर मारती है और आँखों में उंगली डालकर यर्थाथ दिखाती है। लघुकथा में एक सुस्पष्ट नुकीला संवदेना-सूत्र प्रधान हो उठता है।'' उक्त कथन के आलोक में कहा जा सकता है कि लघु कथा में एकता, संक्षिप्ता, तीखेपन, व्यंग्य और घटना सूत्र के तीव्र प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

दूसरी और जीवन की गहरी जटिलता ने 'लम्बी कहानी' को जन्म दिया। 'लम्बाई' पृष्ठ संख्या की नहीं, अपितु साहित्य के क्षेत्र में नई दृष्टि की सूचक है। यही नई दृष्टि 'लंबी कहानी' को कहानी से अलग करती है। घटना और परिवेश में, अंतर्द्वन्द्व में अर्थात् मनोभावों के चित्रण में विस्तार देकर चित्रित किया जाता है। इसीलिए घटना का इकहरापन होते हुए भी उसके एक से अधिक कोण स्पष्टता से उभर आते हैं और एक से अधिक पात्र उभर आते हैं। अर्थात् लम्बी कहानी में मुख्य पात्र के साथ-साथ घटना से जुड़े अन्य पात्र परिवेश की सम्पन्नता में स्थित होकर जीवन-सन्दर्भों की गहनता को विस्तार एवं आयाम प्रदान करते हैं। इसे संक्षेप में आप समझ सकते हैं। लम्बी कहानी में क्योंकि घटना और पात्रों के सन्दर्भ में 'एकता' या एक पक्ष का पालन नहीं होता, इसीलिए उसका आकार बढ़ जाता है किन्तु वह अपने कहानीपन को अक्षुण रखती हैं।

यद्यपि कहानी जीवन के यर्थाथ से प्रेरित होती है तब भी इसमें कल्पना की प्रधानता रहती है। इसमें रचनाकार अपनी बात सीधे न कहकर कथा के माध्यम से कहता है।

प्र.3. कहानी के अर्थ को समझाते हुए परिभाषित कीजिए।

उत्तर

कहानी का अर्थ और परिभाषा

अर्थ—'कहानी' शब्द अंग्रेजी के 'शॉर्ट स्टोरी' का समानार्थी है। कहानी का शाब्दिक अर्थ है—''कहना'', इसी रूप में संस्कृत की 'कथ' धातु से कथा शब्द बना, जिसका अर्थ भी कहने के लिए प्रयुक्त होता है। कथ्य एक भाव है जिसे प्रकट करने के लिए कथाकार अपने मस्तिष्क में एक रूपरेखा बनाता है और उसे एक साँचे में ढाल कर प्रस्तुत करता है, वही 'कथा' कहलाती है। सामान्य बोलचाल की भाषा में 'कथा' और 'कहानी' शब्द एक पर्याय के रूप में जाने जाते रहे हैं; लेकिन आज कहानी कथा-साहित्य के एक आवश्यक अंग के रूप में प्रसिद्ध है। यद्यपि कहानी को किसी एक निश्चित परिभाषा या शब्दों में बाँधना कठिन कार्य है, फिर भी 'कहानी' को समझाने के लिए विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

परिभाषा—हम पहले ही जान चुके हैं कि कहानी पश्चिम देशों से आई विधा है। अत: सबसे पहले पश्चिमी विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं को लिया जा सकता है। इन देशों में **एडगर एलन पो** आधुनिक कहानी के जन्मदाताओं में प्रमुख माने जाते हैं। उन्होंने कहानी को परिभाषित करते हुए कहा है कि, ''छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्यों से लिखा गया हो, वह स्वत: पूर्ण होती है।''

हडसन के अनुसार, ''लघु कहानी में केवल एक ही मूल भाव होता है। उस मूल भाव का विकास तार्किक निष्कर्षों के साथ लक्ष्य की एकनिष्ठता से सरल, स्वाभाविक गति से किया जाना चाहिए।'' **एलेरी** ने कहानी की सक्रियता पर अधिक बल दिया है और कहा कि, ''वह घुड़दौड़ के समान होती है। जिस प्रकार घुड़दौड़ का आदि और अन्त महत्त्वपूर्ण होता है उसी प्रकार कहानी का आदि और अन्त ही विशेष महत्त्व का होता है।''

इन परिभाषाओं पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि कहानी में संक्षिप्तता और मूल भाव का ही महत्त्व होता है, जबकि कहानी के वास्तविक स्वरूप को ये पूर्ण नहीं करती। अत: यहाँ **सर ह्यू बालपोल** के विचार को समझना जरूरी हो जाता है। उन्होंने कहानी के विषय में थोड़ा विस्तार से बताया है। **पोल** के अनुसार, ''छोटी कहानी एक कहानी होनी चाहिए, जिसमें घटनाओं, दुर्घटनाओं, तीव्र कार्य, व्यापार और कौतूहल के माध्यम से चरम सीमा तक सन्तोषजनक पर्यवसान तक ले जाने वाले अप्रत्याशित विकास का विवरण हो।''

वस्तुत: ये परिभाषाएँ पश्चिम की साहित्यिक प्रवृत्तियों एवं विधा के अनुरूपों को उद्घाटित करती हैं। हिन्दी साहित्य में कहानी, बांग्ला कहानी साहित्य के माध्यम से आई। अत: कहानी में यहाँ का पुट भी शामिल हो गया। भारतीय समाज और संस्कृति का प्रभाव उसके स्वरूप में दिखाई देना स्वाभाविक था। यहाँ हिन्दी के विद्वानों का कहानी के सन्दर्भ में विचार जानना आवश्यक है। अत: अब हम भारतीय विद्वानों की कहानी सम्बन्धी दृष्टिकोण पर विचार करते हैं। **मुंशी प्रेमचन्द्र** के अनुसार, ''कहानी (गल्प) एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली तथा कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं।''

TOUCH 'n' PASS

बाबू श्यामसुन्दर दास का मत है कि, "आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर नाटकीय आख्यान है।" **बाबू गुलाबराय** का विचार है कि, "छोटी कहानी एक स्वत: पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली, व्यक्ति-केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक, परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्ययाशित ढंग से उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतूहलपूर्ण वर्णन हो।" **इलाचन्द्र जोशी** के अनुसार "जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत् चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति को प्रदर्शित करना ही कहानी की विशेषता है।" जयशंकर प्रसाद कहानी को 'सौन्दर्य की झलक का रस' प्रदान करने वाली मानते हैं तो **रायकृष्णदास** कहानी को 'किसी-न-किसी सत्य का उद्घाटन' करने वाली तथा मनोरंजन करने वाली विधा कहते हैं। 'अज्ञेय' कहानी को 'जीवन की प्रतिच्छाया' मानते हैं तो जैनेन्द्र कुमार 'निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करने वाली एक भूख' कहते हैं।

ये सभी परिभाषाएँ भले ही कहानी के स्वरूप को पूर्णत: स्पष्ट नहीं करती हैं, परन्तु उसके किसी-न-किसी पक्ष को जरूर प्रदर्शित करती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि किसी भी साहित्य-विधा की कोई ऐसी परिभाषा देना मुश्किल है जो उसके सभी पक्षों का समावेश कर सके या उसके सभी रूपों का प्रतिनिधित्व कर सके। कहानी में साधारण से साधारण बातों का वर्णन हो सकता है, कोई भी साधारण घटना कैसे घटी, इस वृतान्त को कहानी का रूप दिया जा सकता है परन्तु कहानी अपने में पूर्ण और रोमांचक हो। जाहिर है कहानी मानव जीवन की घटनाओं और अनुभवों पर आधारित होती है, जो समय के अनुरूप बदलते हैं ऐसे में कहानी की निश्चित परिभाषा से अधिक उसकी विशेषताओं को जानने का प्रयास करें।

प्र.4. कहानी के प्रमुख भेदों की विस्तार से विवेचना कीजिए।

उत्तर

कहानी के भेद

कहानी में कुछ ऐसे तत्त्व होते है, जो प्राय: सभी कहानियों में मिलेंगे। किन्तु यह भी सच है कि सभी तत्त्व समान रूप से नहीं होते। किसी में विषय वस्तु की प्रधानता होती है तो किसी में पात्र यानी चरित्रों को प्रधानता दी जाती है। कहीं वातावरण प्रमुख होता है तो कहीं भाव महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कहानी में विभिन्न तत्त्वों की प्रधानता के कई रूप मिलते हैं। तत्त्वों के इन्हीं रूपों के आधार पर कहानियों के कई भेद किये जा सकते हैं। अपनी विकास-यात्रा में हिन्दी कहानी अनेक स्वरूपों और शैलियों में व्यक्त हुई है। कहानी के निम्नलिखित भेद इस प्रकार हैं—

1. **घटनाप्रधान कहानी**—जिन कहानियों में क्रमश: अनेक घटनाओं को एक सूत्र में पिरोते हुए कथानक का विकास किया जाता है अथवा किसी दैवीय घटना और संयोग का विशेष सहारा लिया जाता है, उन्हें घटना प्रधान कहानी कहा जाता है। स्थूल आर्दशवादी कहानियाँ, जासूसी, रहस्यपूर्ण, तिलस्मी एवं अद्भुत् कहानियाँ प्राय: इसी प्रकार की होती हैं। इसमें सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना पर बल नहीं होता बल्कि मनोरंजन पर बल रहता है। ऐसी कहानियाँ कला की दृष्टि से प्राय: साधारण कोटि की मानी जाती हैं।
2. **चरित्र-प्रधान कहानी**—जिन कहानियों में चरित्र-चित्रण की प्रधानता होती है वे चरित्र प्रधान कहानियों के वर्ग में आती हैं। चरित्र प्रधान कहानियों में लेखक का ध्यान पाठकों को घटनाओं के विस्तार में न उलझाकर कहानी के पात्रों के चरित्र-निरूपण की ओर रहता है। इन कहानियों का मुख्य धरातल मनोविज्ञान होता है। चरित्र-प्रधान कहानियाँ घटनाओं को छोड़कर पात्र के चरित्र और मनोवृत्ति अर्थात् मनुष्य के भीतर की भावनाओं, संवेदनाओं, विचारों एवं क्रिया-प्रतिक्रियाओं को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से व्यक्त करती है। इनमें व्यक्ति के अन्तर्मन का चित्रण हुआ है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि चरित्र प्रधान कहानियों में पात्रों के माध्यम से व्यक्ति के भीतर पनप रही आत्म-पीड़ा, दया, खुशी, प्रेम, ईर्ष्या, संकोच, संघर्ष, सहानुभूति एवं महत्त्वाकांक्षा इत्यादि अत्यन्त सूक्ष्म भावों को व्यक्त किया जाता है। मूलत: इन कहानियों में पात्रों के मनोगत भावों और मानसिक संघर्षों को महत्त्व मिला हैं।
3. **वातावरण प्रधान कहानी**—इन कहानियों में वातावरण अर्थात् परिवेश को महत्त्व दिया जाता है। क्योंकि कहानी केवल कल्पना न होकर जीवन परक है और जीवन हमेशा वातावरण से युक्त होता है। हमारे प्रतिदिन के कार्यों और व्यवहारों में किसी-न-किसी रूप से आस-पास का माहौल या परिवेश का प्रभाव होता है। विशेषत: ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि वहाँ किसी युग विशेष का, उस युग की संस्कृति, सभ्यता आदि का वर्णन करना होता है। प्राकृतिक परिवेश, संवाद, संगीत, भाषा आदि की सहायता से वातावरण को जीवंत बनाया जाता है। प्रेमचन्द की 'पूस की रात', 'गुल्ली-डण्डा' प्रसाद की 'बिसाती', 'बनजारा', 'देवरथ', 'आकाशदीप' में यह तत्त्व पूर्ण रूप से चरितार्थ हुआ है।

TOUCH 'n' PASS

4. **भाव प्रधान कहानी**—इससे पहले आपने चरित्र और वातावरण प्रधान कहानियों की विशेषताओं को पढ़ा है। भाव प्रधान कहानी प्राय: चरित्र और वातावरण को प्रमुखता देने वाली कहानियों की तरह ही होती है। यह कह सकते हैं कि इन दोनों प्रकार की कहानियों के बीच में भाव-प्रधान कहानियाँ आती है क्योंकि इनमें केवल किसी एक भाव या विचार को आधार बनाकर समूचा कथानक निर्मित होता है और उसी के आधार से समूची कहानी अपनी एक लय के साथ निर्मित होती है। ऐसी कहानियों में एक भावना को मुख्य रखकर पात्र और वातावरण को गौण रखा जाता है। जैसे जैनेन्द्र की 'नीलम देश की राजकन्या' 'अज्ञेय' की 'कोठरी की बात' और टैगोर की 'भूखा पत्थर' उल्लेखनीय है। भाव प्रधान कहानियाँ प्राय: प्रतीकवादी कहानियों का रूप धारण कर लेती है, क्योंकि ये कहानियाँ अपने भाव-चित्रों में प्रतीकों का सहारा लेकर मानसिक चित्रों और आन्तरिक सौन्दर्य के सत्य को 'साकार' रूप देने में सफल होती है।
5. **मनोविश्लेषणात्मक कहानी**—हिन्दी में मनोविश्लेषणात्मक कहानियों का सफल आरम्भ जैनेन्द्र कुमार से हुआ। मनोवैज्ञानिक कहानियों के विकासक्रम में ही मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ आती हैं। इन कहानियों में घटनाओं और कार्यों की अपेक्षा मानसिक ऊहापोह और मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी जाती है। इन कहानियों में विद्रोह, पाप और अपराध के विश्लेषण हुए तथा पापी, विरोधी और अपराधी के प्रति करुणा, सहानुभूति और दया की भावना लायी गयी तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर मौलिक ढंग से विचार हुए। इन कहानियों में अपर्वू ढंग से और एक नये दृष्टिकोण से सामाजिक मूल्यों और प्रश्नों को देखा एवं परिभाषित किया गया। जैनेन्द की कहानी 'क्या हो', 'एक रात', 'ग्रामोफोन का रिकॉर्ड', इलाचन्द्र जोशी की 'मैं', अज्ञेय की 'अमरवल्लरी', 'विपथगा', 'साँप', 'कोठरी की बात' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।
6. **शैलीगत भेद**—शैली तत्त्व कहानी कला की वह रीति है जो इसके अन्य तत्त्वों का अपने विधान में उपयोग करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शैली के अन्तर्गत कहानी-कला निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ एवं अभिव्यक्ति के तत्त्व आते हैं जिसके प्रयोग से कहानीकार अपने भावों को मूर्त करता है। कहानियों के शैलीगत वर्गीकरण में वर्तमान युग में कहानी लेखन की अनेक शैलियाँ दिखाई दे रही है। यों तो अधिकतर कहानी वर्णनात्मक शैली में लिखी जाती है, किन्तु ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक और पत्रात्मक शैली भी विकसित हैं। कुछ लेखकों ने अब डायरी शैली में भी कहानियाँ लिखी है। इसके अतिरिक्त रेखाचित्रों और संस्मरणों के रूप में भी कहानियों की रचना की जाती है।
7. **ऐतिहासिक शैली**—इसके अन्तर्गत कहानीकार तटस्थ होकर कथावाचक के रूप में कहानी की रचना करता है जो पूर्णता: वर्णन पर आधारित होती है। वर्णनात्मक शैली इसी के अन्तर्गत आती है। कहानी का सूत्रधार कहानीकार होता है और नायक 'वह' यानी अन्य पुरुष ही होता है। स्थान-स्थान पर बौद्धिक विवेचन, भावात्मक वर्णन और विश्लेषण आदि को भी स्थान मिलता है।
8. **आत्मकथात्मक शैली**—इस शैली में कहानीकार या कहानी का कोई पात्र 'मै' अर्थात् 'स्वयं' के आधार पर आत्मकथा के रूप में पूरी कहानी कहता है। इलाचन्द जोशी की 'दीवाली और होली', सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' और अज्ञेय की 'मंसो' इसी प्रकार की कहानी है।
9. **पत्रात्मक शैली**—कहानीकार जब पत्रों के माध्यम से कहानी की रचना करता है तो वह पत्रात्मक शैली कहलाती है। प्रभाव की दृष्टि से यह शैली अधिक प्रचलित और विकसित नहीं है।
10. **डायरी शैली**—यह शैली पत्र शैली के अधिक निकट है। इसमें डायरी के विभिन्न पृष्ठों द्वारा सम्पूर्ण कहानी कही जाती है। इस शैली में भूतकाल का चित्रण सजीवता से किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कतिपय विद्वानों ने विषय की दृष्टि से कहानियों के अन्य भेद माने हैं जिनमें साहसिक, रोमांसिक, जासूसी, ऐतिहासिक और सामाजिक सम्मिलित हैं। अधिकांशत: इन्हें घटनाप्रधान कहानियों की श्रेणी में रखते हैं।

प्र.5. प्रेमचन्द्र पूर्व युग के हिन्दी उपन्यासों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यास

हिन्दी का प्रथम उपन्यास किसे स्वीकार करे? विद्वानों में इस बात पर पर्याप्त मतभेद है। लेकिन यह सत्य है कि प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यास लेखन की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी। कुछ विद्वान 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार करते हैं। लेकिन इसके लेखक इंशा अल्ला खाँ ने इसके शीर्षक पर 'कहानी' शब्द जोड़कर इसके उपन्यास होने की सम्भावना को

समाप्त कर दिया। सन् 1872 में जब श्री श्रृद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक कृति की सर्जना की तो कुछ विद्वानों ने इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया लेकिन इसमें औपन्यासिक तत्त्वों के अभाव ने इसे भी उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में **परीक्षा गुरु** को हिन्दी का प्रथम उपन्यास स्वीकार किया लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु के 'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानकर आचार्य शुक्ल के द्वारा 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानने पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। आचार्य द्विवेदी भले ही उक्त दोनों उपन्यासों को हिन्दी के प्रथम उपन्यास स्वीकार करें लेकिन विद्वान इन दोनों उपन्यासों पर मराठी और बांग्ला की छाया मानते हैं।

यद्यपि प्रेमचन्द पूर्व युग के विद्वान बहुत समय तक लाला श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी के प्रथम उपन्यास के रूप में आदर देते रहे। लेकिन बाबू गुलाब राय जैसे विद्वान इस पर हितोपदेश की छाया देखते हैं। जिसमें हितोपदेश की सी उपदेशात्मकता और बीच-बीच में श्लोकों की उपस्थिति इसे एक मौलिक उपन्यास की मान्यता से वंचित करती है। इस उपन्यास के अतिरिक्त इस युग में बाबू राधाकृष्णदास का 'नि:सहाय हिन्दू और पंडित' बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी तथा सौ अजान एक सुजान' जैसे उपन्यास चर्चित रहे। इसी श्रृंखला में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पंडित अयोध्यासिंह 'हरिऔध' उपाध्याय का 'वेनिस का बाँका तथा ठेठ हिन्दी का ठाट' पंडित गोपालदास बरैया का 'सुशील', लज्जाराम मेहता का धूर्त रसिकलाल, गोपाल राम गहमरी का 'सास पतोहू' तथा किशोरीलाल गोस्वामी का 'लबंग लता' काफी चर्चित उपन्यास रहे। ये उपन्यासकार अपने युग के चर्चित उपन्यासकार रहे हैं। इन उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय और उनके द्वारा लिखे गये उपन्यासों का उल्लेख यहाँ पर इस प्रकार है—

1. **देवकी नन्दन खत्री**—(सन् 1861-1913) हिन्दी के प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासकारों में देवकी नन्दन खत्री का नाम काफी चर्चित है। इनके सभी उपन्यासों में घटना-बाहुल्य तिलिस्म और ऐयारी की बातों पर जोर दिया गया है। इनके उपन्यास मौलिक उपन्यास हैं। हिन्दी भाषा में लिखे गये इनके उपन्यासों को पढ़ने के लिए उर्दू जानने वालों ने हिन्दी सीखी। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति, भूतनाथ (पहले छ: भाग) काजल की कोठरी, कुसुम-कुमारी, नरेन्द्र मोहिनी 'गुप्त गोदना' वीरेन्द्रवीर आदि। इन उपन्यासों के कारण हिन्दी भाषा का विस्तार हुआ और हिन्दी उपन्यास विधा लोकप्रिय हुई।
2. **गोपाल दास गहमरी**—श्री गोपालदास गहमरी ने हिन्दी में अनेक जासूसी उपन्यासों का अनुवाद किया। उन्होंने अपने जीवन काल में एक जासूसी पत्रिका भी निकाली जिसका नाम था 'जासूस', इस पत्रिका में अनेक जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती थी।
3. **किशोरी लाल गोस्वामी**—(सन् 1865-1932) श्री किशोरी लाल गोस्वामी साधारण जनता की अभिरुचि के उपन्यास लिखते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में 'लवंगलता', कुसुम कुमारी, अंगूठी का नगीना, लखनऊ की कब्र, चपला, तारा, प्राणदायिनी आदि साठ से अधिक उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में साहित्यिकता अधिक है लेकिन सामान्य पाठक की रुचि को उदार बनाने की विशेषता को न उभार सकने के कारण ये इनके उपन्यास मात्र बौद्धिक वर्ग की रुचि का परिष्कार करते हैं।
4. **बाबू ब्रजनन्दन सहाय**—बाबू ब्रजनन्दन सहाय ने अपने जीवन काल में 'सौन्दर्योपासक' आदर्श मित्र जैसे चार उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में घटना वैचित्रय और चरित्र-चित्रण की अपेक्षा भावावेश की मात्रा अधिक है।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त उस युग में अनेक उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर हिन्दी उपन्यास विधा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी, इनमें श्री गंगा प्रसाद गुप्त का 'पृथ्वीराज चौहान' और श्री श्याम सुन्दर वैध का 'पंजाब पतन' जैसे उपन्यास काफी चर्चित रहे। प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्श को उभारने का प्रयत्न किया है।

प्र.6. उपन्यास के स्वरूप तथा अर्थ सहित परिभाषा को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास का मुख्य स्रोत अति प्राचीन काल से चली आ रही कथा-कहानियाँ हैं। जिसका जन्म मनुष्य की कौतुहल वृत्ति एवं मनोरंजन वृत्ति को शान्त करने के लिए हुआ है। वर्तमान में यद्यपि बौद्धिकता ने मनुष्य की कौतूहल वृत्ति को कम किया है। अत: आज वे ही कथा-कहानियाँ समाज में प्रचलित है जिनके पीछे बौद्धिक धरातल है। उपन्यास मनुष्य के विकास के साथ-साथ

Touch 'n' Pass

विकसित होने वाली कथा परम्परा का एक संगठित रूप है। मानव मन की अतल गहराई से लेकर उसकी समस्त सांसारिक दृष्यमान ऊँचाई, विस्तार एवं अन्य क्रियाकलाप उपन्यास के क्षेत्र में समाहित है।

वास्तविकता का प्रतिपादन नाटक और गीत भी करते हैं, परन्तु उपन्यास अधिक विस्तृत, गहन एवं पैना होता है। उपन्यास जीवन के लघुतम और साधारणतम् तथ्यों को भी पूर्ण स्वच्छन्दता तथा स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है। उपन्यास मानव की सर्वतोन्मुखी स्वतन्त्रता की उद्घोषक विधा है। आज का जीवन गायन-नर्तन और सम्मोहन का नहीं है। अब अतीत की गौरव गाथा भी अपना महत्त्व खो चुकी है। अत: उनसे अब लिपटे रहना और जीवन की प्रत्येक प्रेरणा उनमें देखना स्वयं को अन्धकार में रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आज के जीवन के सूत्र है—यथार्थता, स्पष्टता, ध्रुवता, मांसलता, बौद्धिकता और स्तरीय निर्बन्धता। इन तत्त्वों के सार से ही उपन्यास का स्वरूप गठित हुआ है।

उपन्यास में प्राय: हमारा वह अति समीपी और आन्तरिक जीवन चित्रित होता हैं जो हमारा होते हुए भी प्राय: हमारा नहीं है। उपन्यास वर्तमान युग की लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। आज की युग चेतना इतनी गुफित और असाधारण हो गई हैं, कि इसे साहित्य के किसी अन्य रूप में इतने आकर्षक और सहज रूप में प्रस्तुत करना दुष्कर है। उसे उपन्यास पूरी सम्भावना और सजीवता के साथ उपस्थित करता है। इसलिए अनेक विद्वानों ने उपन्यासों को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है।

उपन्यास का अर्थ और परिभाषा

अर्थ-उपन्यास—शब्द उप-समीप तथा न्यास-थाती के योग से बना है, जिसका अर्थ है (मनुष्य के) निकट रखी वस्तु। अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि हमारी ही हैं, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हैं, 'उपन्यास' है। उपन्यास शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग नाटक की संधियों के उपभेद के लिए हुआ था। इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है—"उपन्यास: प्रसादन"—अर्थात् प्रसन्न करने को 'उपन्यास' कहते हैं। दूसरी व्याख्या के अनुसार—"उपपत्तिक्रतोहार्थ उपन्यास: संकीर्तित:"—अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप से उपस्थित करना 'उपन्यास' कहलाता हैं। किन्तु आज जिस अर्थ में ग्रहण किया जाता है, वह मूल 'उपन्यास' शब्द से पूर्णत: भिन्न हैं।

हिन्दी साहित्य में 'उपन्यास' नवीनतम् विधाओं में से एक है। अंग्रेजी में जिसे 'नॉवेल' कहते हैं। 'नॉवेल' शब्द नवीन और लघु गद्य कथा दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता रहा, किन्तु अठारहवीं शताब्दी के पश्चात् साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। गुजराती में 'नवलकथा' मराठी में 'कादम्बरी' और बांग्ला के सदृश ही हिन्दी में यह विधा 'उपन्यास' नाम से प्रचलित है। इतालवी भाषा में 'नॉवेल' शब्द 'लघुकथा' के लिए प्रयुक्त होता है। जो नवीनतम् का द्योतन तो कराता ही है साथ ही इस तथ्य को भी घोषित करता है कि उसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान जीवन से है।

परिभाषा—हम पहले ही बता चुके हैं कि कहानी पश्चिम से आई विधा है। कहानी की भाँति आधुनिक उपन्यास भी पाश्चात्य साहित्य का कलेवर लेकर आया है। तो यहाँ भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं को लिया जा सकता है।

भारतीय विचारक—आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह शब्द सर्वथा समर्थ है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के शब्दों में—"मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"

हजारी प्रसाद द्विवेद्वी जी उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहते हैं—"उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नये उपन्यास केवल कथामात्र नहीं है। यह आधुनिक वैयक्तितावादी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसमें लेखक अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है और कथा को इस प्रकार सजाता है कि पाठक अनायास ही उसके उद्देश्य को ग्रहण कर सकें और उससे प्रभावित हो सकें।"

डॉ० श्याम सुन्दर दास के शब्दों में—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"

डॉ० भागीरथ मिश्र—"युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्य मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा हैं।"

पाश्चात्य विचारक—उपन्यास के सन्दर्भ में किसी निष्कर्ष में पहुँचने से पूर्ण कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की एतत् सम्बन्धी धारणा की प्रस्तुति नितान्त आवश्यक हैं।

रॉलफ फॉक्स के अनुसार—"उपन्यास केवल काल्पनिक गद्य नहीं है, यह मानव जीवन का गद्य हैं।" फील्डिंग के अनुसार—"उपन्यास एक मनोरंजन पूर्ण गद्य महाकाव्य है।"

बेकर ने कहा है कि "उपन्यास वह रचना है जिसमें किसी कल्पित गद्य कथा के द्वारा मानव जीवन की व्याख्या की गयी हो।"

TOUCH 'n PASS

प्रिस्टले का मत—"उपन्यास गद्य में लिखी कथा है जिसमें प्रधानत: काल्पनिक पात्र और घटनाएँ रहती है। यह जीवन का अत्यन्त विस्तृत और विशद दपर्ण है और साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में इसका क्षेत्र व्यापक होता है। उपन्यास को हम ऐसे कथानक के रूप में ले सकते हैं जो सरल और शुद्ध अथवा किसी जीवन-दर्शन का माध्यम हो।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक युग का अति समादृत साहित्य रूप है। उपन्यास की शैली की स्वाभाविकता उसकी रोचकता बनाये रखने में सहायक होती है। उपन्यास में उपन्यासकार का निजी जीवन दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। लेखक की जीवन और जगत की अनुभूति जितनी व्यापक और गहरी होगी उसका औपन्यासिक वर्णन भी उतना ही व्यापक और गम्भीर होगा।

प्र.7. हिन्दी आलोचना के अर्थ एवं स्वरूप का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर

हिन्दी आलोचना के अर्थ एवं स्वरूप

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति मूलत: लोच् धातु में उपसर्ग आ तथा ल्युट्-अन प्रत्यय के योग से हुई है। संस्कृत शब्द कोष के अनुसार लोच् शब्द का अर्थ-देखना है। स्पष्ट है कि किसी वस्तु या रचना का सम्यक् विवेचन अथवा मूल्यांकन आलोचना कहलाता है।

हिन्दी में आलोचना के संकुचित अर्थ को ध्यान में रखते हुए समालोचना शब्द का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है। आलोचना और समालोचना दोनों ही समानार्थक शब्द हैं, परन्तु कुछ लोगों ने आलोचना को दोषारोपण के अर्थ में ग्रहण कर लिया इस दोष के निवारण के लिए अब अधिकतर समालोचना शब्द ही प्रयोग में लाया जाता है ताकि इस तरह किसी रचना के गुण—दोष का समान रूप से मूल्यांकन करने के लिए समालोचना शब्द को ही अधिमान दिया जाने लगा। वर्तमान में इस पद्धति के लिए समीक्षा शब्द का अधिक प्रयोग हो रहा हैं। समीक्षा शब्द का संस्कृत ग्रंथों में भी प्रयोग हुआ है—

अन्तर्भाष्य अवान्तरार्थ विच्छेदश्य समीक्षा।—अर्थात् किसी रचना के गुण-दोषों तक सीमित न रहकर जब उसकी आन्तरिक प्रकृति अथवा विशेषता और अवान्तरार्थों की छानबीन की जाए, तब उसे समीक्षा कहा जाता है। काव्य शास्त्रीय विवेचन भी आलोचना का एक अंग ही है।

हिन्दी आलोचना-उद्भव एवं विकास—वास्तव में किसी भी भाषा के उद्भव के साथ ही उसकी आलोचना का भी उद्भव मानना चाहिए, परन्तु जिस प्रकार हिन्दी साहित्य विशेषकर काव्य का मूल संस्कृत काव्य से सम्पृक्त है, उसी प्रकार हिन्दी आलोचना का मूल भी संस्कृत आलोचना से जुड़ा हुआ है। फिर भी इसे पूर्णत: संस्कृत से ही जुड़ा हुआ ही मान लिया जाए तो अन्याय होगा, क्योंकि आदि कालीन, भक्तिकालीन, व रीतिकालीन हिन्दी आलोचना संस्कृत के काव्य शास्त्र से जुड़ी है परन्तु वर्तमान कालीन हिन्दी आलोचना या समीक्षा पाश्चात्य व्यावहारिक समीक्षा से जुड़ी है।

हिन्दी आलोचना का प्रारम्भिक स्वरूप हमें आदि कालीन साहित्यकार विद्यापति की रचना में उपलब्ध हो जाता है। इससे पूर्व भी आलोचना का अस्तित्व अवश्य सम्भव है, इसे जानने के लिए यद्यपि अनेक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी आलोचना के क्रमिक विकास को देखने के लिए हिन्दी साहित्य को विभाजित करके सरलता से जाना जा सकता है।

1. **आदि कालीन आलोचना**—यह सत्य है कि आदिकालीन एवं भक्तिकालीन रचनाओं में किसी स्वतंत्र चिंतन के संकेत नहीं मिलते, परन्तु कुछ कवियों की रचनाओं में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि तथा काव्य-सिद्धान्त सम्बन्धी विचार अवश्य मिलते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस काल की अप्रत्यक्ष आलोचना को नकारा नहीं जा सकता। उनका मत है कि—उनका अवमूल्यन कदापि नहीं किया जा सकता, क्योंकि भावी आलोचना के विशाल प्रसाद की नींव के रूप में वह महत्त्वपूर्ण है।

   विद्यापति का एक सन्दर्भ इस काल की आलोचना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। विद्यापति ने अपनी प्रसिद्ध रचना कीर्तिलता में आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए कहा है कि—काव्य तो लोक—हृदय के लिए आह्लाद कारक वस्तु है, दुर्जनों के उपहास से उसकी आभा कभी मलिन नहीं पड़ सकती—

   बालचन्द्र बिज्जावड भाषा, दुछुनहिं लगई दुज्जन हासा।
   ओ परमेसर हर—सिरकोई, ई गिच्चई नाउर मन मोहई।।

2. **भक्ति-काल में आलोचना का स्वरूप**—इस काल में हिन्दी आलोचना का अधिक विकास दिखाई नहीं देता, न ही इस काल में आदि काल की तरह किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना हुई। फिर भी यह तो सत्य है कि अनेक कवियों के काव्य में काव्य-सिद्धान्त से सम्बन्धित बड़ी विशद चर्चा अवश्य देखने को मिलती है। इन कवियों ने बड़े ही विवेक पूर्ण ढंग से इन

TOUCH 'n PASS

क्लिष्ट विषयों पर अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किए हैं, जो हिन्दी साहित्य की आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। इन कवियों में मुख्यत: जायसी, सूरदास, तुलसीदास, रहीम नन्ददास आदि की रचनाओं में इस आलोचना का आरम्भिक स्वरूप दिखाई देता है। जायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना पद्मावत् में काव्यरचना के मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है। जायसी ने स्पष्ट कहा है कि काव्य रचना का उद्देश्य यश अथवा कीर्ति मुख्य है। उन्होंने संस्कृत आचार्यों की तरह ही पद्मावत् में यश की कामना की है, जो आचार्य दण्डी, वामन, आदि के काव्य सिद्धान्तों के ही अनुकूल है।

मुहम्मद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो परि प्रेम की पावा।।
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहे जगत महँ चीन्हा।।
धनि सोई जसकीरती जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।।
कोई न जगत जस बेचा, कोई न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढै कहानी, हमहिं संवरै दुई बोल।।

इसी तरह इसी काल के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसी दास ने तो रामचरितमानस में काव्यरचना के उद्देश्य को अपनी ओर से स्पष्ट कर दिया है—स्वान्त: सुखाय रघुनाथ गाथा। उन्होंने साहित्यिक रचना को लोक हित से भी जोड़कर देखा है—

कीरति भनिति भलि सोई। सुरसरिसम सब कंह हित होई।।

इसी प्रकार एक और स्थान पर भी तुलसी ने कुन्तक की वक्रोक्ति के अनुरूप ही शब्दार्थ की व्यंजना शब्द में अर्थ—शक्ति के समावेश की चर्चा की है—

गिरा अरथ जल—बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

इसके अतिरिक्त कुछ टीकाएँ भी मिलती हैं, उन्हें व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत लिया जा सकता है, परन्तु इन टीकाओं को शुद्ध व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। भक्ति काल में सूरदास की साहित्यलहरी तथा नन्ददास की रसमंजरी में नायक-नायिका भेद की चर्चा तो मिलती है परन्तु इन्हें शुद्ध आलोचना के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इनमें काव्यांग विवेचन नहीं के बराबर है तथा भक्ति भावना का अधिक वर्णन है। इसी प्रकार रहीम की बरवे नायिका भेद, तथा नाभा दास की भक्तमाल, में भी काव्यांग विवेचन कम होने के कारण इन्हें आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। इस तरह इस काल में साहित्यलहरी व रसमंजरी को छोड़ कर किसी भी रचना को आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। इससे एक बात तो साफ है कि इस काल में बेशक आलोचना की उच्च कोटी की रचनाओं का अभाव है परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आलोचना प्रारम्भिक स्वरूप इस काल में ही दिखाई देने लग गयी थी। आलोचना का सही अर्थों में विकास रीति काल में ही दिखाई देता है।

3. **रीति काल में आलोचना का विकास**—रीति काल में काव्यसिद्धान्तों या काव्यांगों का विवेचन करने वाले अनेक ग्रंथ मिलते हैं। वास्तव में केशवदास को इस काल की सैद्धान्तिक आलोचना का सूत्रपात करने वाला कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कवि पद्माकर को इस शृंखला की अन्तिम कड़ी कहा जा सकता है। इस काल के प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथों में—कविप्रिया, रसिकप्रिया, केशवदास की रचनाएँ, तथा चिन्तामणि की कवि कुल कल्पतरु, रसमंजरी, पिंगल कम करे देव की—रसविलास, भावविलास, शब्दरसायन, भिखारीदास की—शृंगार निर्णय, काव्यनिर्णय पद्माकर की जगद्विनोद तथा मतिराम की ललितललाम, रसराज प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अन्य और भी आलोचनात्मक रचनाएँ उपलबध हैं। कुलपति मिश्र, सोमनाथ, रसिक गोबिन्द, ग्वालकवि, रसलीन, आदि अन्य प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे। इसके अतिरिक्त अन्य लेखक भी हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से सैद्धान्तिक आलोचना को आधार बना कर आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की।

4. **आधुनिक काल में आलोचना का विकास**—इस काल में भी हिन्दी आलोचना का समुचित विकास देखने को मिलता है। इस काल की आलोचना की खास बात यह है कि इस काल में रीति कालीन आलोचना पद्धति से निकल कर एक नए मार्ग की ओर प्रशस्त होती दिखाई देती है। इसके मुख्य कारण गद्य का आविर्भाव, पत्रपत्रिकाओं का प्रचलन, पाश्चात्य समीक्षाजगत से सम्पर्क, तथा पाठकों में चेतना का विकास हो सकता है। इस काल की आलोचना को निम्नलिखित उपभागों में बाँटा जा सकता है—

(क) भारतेन्दु युग (ख) द्विवेदी युग, (ग) शुक्ल युग (घ) शुक्लोत्तर युग।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. आधुनिक काल में हिन्दी आलोचना के विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर

आधुनिक काल में हिन्दी आलोचना का विकास

आधुनिक काल में हिन्दी आलोचना का विकास निम्न प्रकार से हुआ है—

1. **भारतेन्दु युग**—इस युग से ही कुछ विद्वान हिन्दी आलोचना का विकास मानते हैं। इस युग में सैद्धान्तिक आलोचना के साथ व्यावहारिक आलोचना के भी दर्शन होते हैं। सैद्धान्तिक आलोचना में भारतेन्दु का नाटक सबसे पहले गिनने योग्य है। इस ग्रंथ में नाटक से सम्बन्धित चर्चा की गई है। इसके उपरान्त हिन्दी सैद्धान्तिक आलोचना के विकास में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा उनका उल्लेख करना आवश्यक है। जगन्नाथ प्रसाद भानु, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, साहब प्रसाद सिंह, बिहारी लाल जगन्नाथ प्रभाकर आदि के नाम मुख्य हैं।
   नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के माध्यम से अनेक साहित्यकारों के जीवन, रचना, प्रामाणिकता आदि के विषय में अनेक व्यावहारिक समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आए। शिव सिंह सेंगर की रचना शिवसिंह सरोज इसी व्यावहारिक आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस युग में आलोचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। बदरीनारायण प्रेमधन ने हिन्दी प्रदीप तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रों में श्रीनिवास कृत संयोगिता स्वयंवर, तथा बंग विजेता की विस्तृत समीक्षा की।
2. **द्विवेदी युग**—सन् 1900 में हिन्दी पत्रिका सरस्वति का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद के सम्पादन में पर्याप्त आलोचना हुई। इसमें पुस्तक समीक्षा नामक एक स्तम्भ रखा गया, और स्वयं पुस्तकों की समीक्षा प्रारम्भ की। बनारस से प्रकाशित सुदर्शन तथा जयपुर से प्रकाशित समालोचक पत्र में भी अनेक रचनाओं की समीक्षा की गई। द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के मुख्यत: निम्नलिखित रूप दिखाई देते हैं—
   (क) शास्त्रीय आलोचना, (ख) तुलनात्मक आलोचना, (ग) परिचयात्मक आलोचना, (घ) व्याख्यात्मक आलोचना।
   (क) **शास्त्रीय आलोचना** के अन्तर्गत जगन्नाथ भानु की रचना काव्य प्रभाकर छंद सारावली तथा लाला भगवान दीन की रचना अलंकार मंजूषा मुख्य हैं।
   (ख) **तुलनात्मक आलोचना** के लिए द्विवेदी काल को उद्‌भव काल कहा जा सकता है। हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश पद्‌म सिंह शर्मा द्वारा माना जाता है। मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी नवरत्न के प्रकाशन के माध्यम से तुलनात्मक आलोचना का विकास किया।
   (ग) **परिचयात्मक आलोचना**—स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने पत्र सरस्वती में परिचयात्मक आलोचना लिखी आचार्यद्विवेदी निडर आलोचक थे तथा किसी भी कृति में स्पष्ट रूप से पक्षपात के बिना 3 दोष निकाल कर सामने ले आते थे। उनकी आलोचना में खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।
   (घ) **व्याख्यात्मक आलोचना**—
   बालकृष्ण भट्‌ट ने हिन्दी प्रदीप पत्र में नीलदेवी, परीक्षागुरु, संयोगिता स्वयंवर की व्याख्यात्मक आलोचना करके इसका विकास किया। बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी बंगवासीपत्र में अश्रुमतीनाटक, की व्याख्यात्मक आलोचना की। किशोरी लाल गोस्वामी कृत उपन्यास तारा की व्याख्यात्मक समीक्षा समालोचक पत्र में तथा श्रीनिवास कृत परीक्षागुरु की समीक्षा छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशित हुई।
3. **शुक्ल युग**—हिन्दी आलोचना में शुक्ल युग को सबसे बेहतर युग माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी युग में ही आलोचना जगत में आए, परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण हिन्दी के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर हिन्दी आलोचना को भी विकसित किया। शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना को वैज्ञानिकता प्रदान की। हिन्दी आलोचना के इस काल को उसके उत्थान का तृतीयकाल कहा है। उन्होंने लिखा है कि—तृतीय उत्थान में समालोचना का आदर्श भी बदला तथा गुण—दोष के कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और अन्त: प्रवृत्तियों की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया।
   आचार्य शुक्ल के समय में प्रचलित द्विवेदी—युगीन नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद का उदय हो चुका था। नए युग और नई प्रवृत्ति के लिए नए प्रकार की आलोचना की आवश्यकता थी। इस समय अब नवीन काव्य एवं अन्य साहित्य के लिए पुरानी काव्यशास्त्रीय पद्धति पर मूल्यांकन करना सम्भव नहीं था। आचार्य शुक्ल ने आलोचना की बागडोर अपने हाथ में लेकर आलोचना का केन्द्र हिन्दी के भक्तिकाल को बना दिया, तथा स्वयं तुलसी, सूरदास, व

TOUCH n PASS

जायसी पर विस्तृत समीक्षाएँ लिखी। कविता में अनुभूति को प्रधानता प्रदान की। इस काल में शुक्ल कालीन हिन्दी आलोचना का अवलोकन दो भागों में बाँट कर किया जा सकता है—

(क) सिद्धान्त या लक्षणग्रंथ की रचना तथा सैद्धान्तिक आलोचना, (ख) व्यावहारिक आलोचना।

(क) **सैद्धान्तिक आलोचना**—शुक्ल काल में भी कुछ लक्षण ग्रंथों की रचना हुई तथा काव्यांगों का विवेचन हुआ। शुक्ल जी ने इस काल में आलोचना के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान दिया। इससे पूर्व द्विवेदी युग में भी उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ—कविता क्या है, तथा साहित्य आदि आ चुकी थीं। उनकी सैद्धान्तिक आलोचना की कृति—काव्य में रहस्यवाद रसमीमासा भी इसी युग में प्रकाशित हुई।

आचार्य शुक्ल से अलग गुलाब राय की नवरस, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की काव्यांग कौमुदी, श्यामसुन्दरदास की साहित्यालोचन, लक्ष्मी नारायण सुधांशु की रचना—काव्य में अभिव्यंजनावाद, रमाशंकर शुक्ल रसाल की रचना आलोचनादर्श, डॉ० रामकुमार वर्मा की साहित्य समालोचना विशेषत: उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भगवानदीन कन्हैयालालपोद्दार आदि का नाम भी सैद्धान्तिक आलोचना में लिया जा सकता है।

(ख) **व्यावहारिक आलोचना**—इस युग में शुक्ल जी ने ही व्याख्यात्मक आलोचना में गोस्वामी तुलसी दास, तुलसी ग्रंथावली आदि के द्वारा कवि के काव्यगुणों का परिचय करवाया। इसी तरह भ्रमर गीत सार का भी शुक्ल जी ने सम्पादन किया।

इस युग के अन्य व्यावहारिक आलोचकों में कृष्ण शंकर शुक्ल की रचना केशव की काव्य कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की बिहारी की वाग्विभूति, रामकृष्ण शुक्ल की प्रसाद की नाट्य कला, डॉ० रामकुमार वर्मा की कबीर का रहस्यवाद, जनार्दन मिश्र की विद्यापति, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र की मीरा की प्रेम साधना, रामनाथ सुमन की महाकवि हरिऔध, गुप्त जी की काव्यधारा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

4. **आधुनिक युग**—शुक्ल युग के उपरान्त आधुनिक युग का क्रम आता है। इसकाल के प्रमुख आलोचकों में आचार्य नन्दुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० राम विलास शर्मा, डॉ० देवराज, डॉ० देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० सत्येन्द्र आदि का नाम विशेष उल्लेख्य है। इनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के ग्रंथ—आधुनिकसाहित्य नयासाहित्य, नए प्रश्न, कवि निराला, आदि में छायावादी काव्य की नूतन कल्पना छवियों, भावों व भाषारूपों की समालोचना की।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ हिन्दी-साहित्य की भूमिका में आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए। सूरसाहित्य में उनकी छायावादी भावुकता का प्राधान्य दिखाई देता है। कबीर में उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का प्रायोगिक रूप स्पष्ट दिखाई देता है।

डॉ० नगेन्द्र को व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक समीक्षक कहा जाता है। उनके सैद्धान्तिक ग्रंथ रस सिद्धान्त में रस का सांगोपांग वर्णन मिलता है। सुमित्रानन्दन पन्त में उन्होंने छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी साधना, सौन्दर्य चेतना, आदि के दृष्टि कोण से पंत के काव्य की समीक्षा की है। साकेत में उन्होंने एक अध्ययन नामक शास्त्रीय समीक्षात्मक ग्रंथ की रचना की। आधुनिक हिन्दी नाटक, विचार और अनुभूति तथा आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ जैसे समीक्षात्मक ग्रंथों की भी रचना की है। नयी समीक्षा-नए संदर्भ, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ आदि उनके अन्य महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ है।

डॉ० राम विलास शर्मा को मार्क्स वादी आलोचना का स्तम्भ माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान बेशक इस आलोचना के प्रवर्तक माने जाते हैं, परन्तु जिस प्रकार की गवेषणात्मक दृष्टि राम विलास शर्मा की है वैसी अन्य आलोचकों की नहीं है। प्रगति और परम्परा, प्रगति शीलसाहित्य की समस्याएँ, आस्था और सौन्दर्य आदि में उनके मार्क्सवादी आलोचना सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है।

आधुनिक काल में अन्य अनेक प्रकार की आलोचना की धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। प्रभाववादी आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, स्वच्छन्दतावादी आलोचना, सैद्धान्तिक आलोचना प्रमुख हैं। हिन्दी आलोचना में आज भी निरन्तर विकास हो रहा हैं। डॉ० नामवर सिंह, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० शिवप्रसाद सिंह आदि आलोचक इसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.9. हिन्दी नाटक के स्वरूप का समुचित विकास का वर्णन कीजिए।

उत्तर

हिन्दी नाटक के स्वरूप का समुचित विकास

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से होता है। सन् 1850 ई० से आज तक के युग को नाट्य रचना की दृष्टि से तीन खंडों में विभक्त कर सकते हैं।

(i) भारतेन्दु युग (सन् 1850—1900 ई०)
(ii) प्रसादयुग (सन् 1901—1950 ई०)
(iii) स्वातंत्र्योत्तर युग (सन् 1951—अब तक)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता बाबू गोपाल चन्द्र द्वारा रचित नाटक 'महुष नाटक' (सन् 1841 ई०) को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। किन्तु यह भी ब्रजभाषा परंपरा के पद्य बद्ध नाटकों में आता है।

(i) **भारतेन्दु युग**—सन् 1861 ई० राजा लक्ष्मण सिंह ने 'अभिज्ञान शकुन्तलम' का हिन्दी अनुवाद 'शकुन्तला' नाटक नाम से किया। भारतेन्दु ने प्रथम नाटक 'विद्या सुंदर' सन् 1868 ई० में बंगला नाटक से छायानुवाद किया। उसके पश्चात् उनके अनेक मौलिक एवं अनूदित नाटक प्रकाशित हुए—'पाखंड विडम्बनम्'—1872, 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'—1872, 'धनंजय' विजय, 'मुद्राराक्षस'—1875, 'सत्यहरिश्चन्द्र'—1875, 'प्रेमयोगिनी'—1875, 'विषस्य—विषमौधन्'—1876, 'कर्पूर मंजरी'—1876, 'चंद्रावली'—1876, 'भारत दुर्दशा'—1876, 'नील देवी'—1877, 'अंधेरी नगरी'—1881, तथा 'सती प्रताप'—1884 ई० आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु के नाटक मुख्यत: पौराणिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक विषयों पर आधारित है। सत्य हरिश्चन्द्र, 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस' तथा 'कर्पूर मंजरी' अनूदित नाटक हैं। मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर करारा व्यंग्य किया है। पाखंड—विडंबनम, वैदिक हिंसा-हिंसा न भक्ति ऐसा ही नाटक हैं। विषस्य विषमौषधम् में देशी नरेशों की दुर्दशा पर आंसू बहाए हैं तथा उन्हें चेतावनी दी है कि यदि वे न संभलें तो धीरे-धीरे अंग्रेज सभी देशी रियासतों को अपने अधिकार में ले लेंगे। 'भारत दुर्दशा' में भारतेन्दु की राष्ट्र—भक्ति का स्वर उद्घोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत के शासक रूप में चित्रित करते हुए भारत वासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान—स्थान पर अंग्रेजों की स्वेच्छाचारिता, अत्याचारी व्यवहार, भारतीय जनता की मोहकता पर गहरा आघात किया है। 1856 ई० की असफल क्रांति को लोग अभी भूल नहीं पाए थे। भारतेन्दु ने ब्रिटिश शासन एवं उसके विभिन्न अंगों की जैसी स्पष्ट आलोचना अपने साहित्य में ही है वह उनके उज्जवल देश प्रेम एवं अपूर्व साहस का द्योतन करती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला एवं अंग्रेजी नाटक साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं से अनुवाद किए थे। नाट्य कला के सिद्धान्तों का उन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था इसका प्रमाण उनके नाटक देते हैं। उन्होंने अपने नाटकों के मंचन की भी व्यवस्था की थी। वे मंचन में भी भाग लेते थे।

भारतेन्दु के नाटकों में जीवन और कला, सौंदर्य और शिव, मनोरंजन और लोक सेवा का अपूर्व सामंजस्य मिलता है। उनकी शैली में सरलता, रोचकता, एवं स्वाभाविकता आदि के गुण विद्यमान हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा तथा उनके प्रभाव से उस युग के अनेक लेखक नाट्य रचना में तत्पर हुए। श्रीनिवास दास 'रणधीर' और 'प्रेम मोहिनी', राधाकृष्ण दास—'दु:खिकी बाल', महाराणा प्रताप, खंगबहादुर लाल—'भारत ललना', बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन—'भारत सौभाग्यम्', तोताराम वर्मा—'विवाह विडंबन', प्रताप नारायण मिश्र—'भारत दुर्दशा' रूपक, और राधाचरण गोस्वामी 'तन—मन—धन' श्री गोसाई जी के 'अर्पण' आदि नाटकों की रचना की।

इन नाटकों में समाज सुधार, देश—प्रेम, या हास्य विनोद की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इनमें गद्य खड़ी बोली तथा पद्य ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। संस्कृत नाटकों के अनेक शास्त्रीय लक्षणों की इनमें अवहेलना की गई है। भाषा पात्रानुकूल है। शैली में सरलता, मधुरता एवं रोचकता दृष्टिगोचर होती है। भारतेन्दु युगीन नाट्य साहित्य जन मानस के निकट था उसमें लोक रंजन एवं लोकरक्षण दोनों भावों का सुंदर समन्वय हुआ है। तत्कालीन नाटक पाठ्य एवं दृश्य दोनों रूपों में तत्कालीन लोकहृदय का आकर्षक बने हुए थे। इनका दिव्य मंचन भी होता था।

TOUCH 'n PASS

(ii) **प्रसाद युग**—आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु के पश्चात् सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ऐतिहासिक नाटककार जयशंकर प्रसाद है। इन्होंने काव्य की विभिन्न विधाओं के सकल सृजन में ख्याति प्राप्त की। नाटक, कहानी तथा उपन्यास सभी विधाओं में सफल लेखनी उठाकर हिन्दी गद्य साहित्य को समृद्ध बनाया। जयशंकर प्रसाद ने एक दर्जन से अधिक नाटकों का सृजन किया। इनके नाटकों में 'सज्जन'—1910 ई०, 'कल्याणी परिणय' 1912 ई०, 'करुणालय'—1913 ई०, 'प्रायश्चित' 1914 ई०, 'राज्य श्री' 1915 ई०, 'विशाख' 1921 ई०, 'अजात शत्रु' 1922 ई०, 'कामना' 1923 ई०, जनमेजय का 'नाम यज्ञ'—1923 ई० 'स्कंदगुप्त' 1928 ई०, 'एक घूंट' 1929 ई०, 'चंद्रगुप्त' 1931 ई० तथा 'ध्रुवस्वामिनी'—1933 ई० आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने देश की दुर्दशा का वर्णन बारंबार अपनी रचनाओं में किया, जिससे प्रभावित होकर भारतीयों में करुणा, ग्लानि, दैन्य, एवं अवसाद की प्रबल भावनाओं का उदय हुआ। ऐसी भावनाओं का भारतीयों में जन्मना अति स्वाभाविक था। साहित्यिक रचनाओं ने आग में घी का समावेश किया। ऐसे परिवेश एवं ऐसी मन:स्थिति में समाज एवं राष्ट्र विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने की क्षमता खो बैठता है। प्रसाद ने देशवासियों में आत्मगौरव का संचार किया। जिसके लिए उन्होंने अपने नाटकों में भारत के अतीत के गौरवपूर्ण दश्यों को प्रतिस्थापित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध युग से सम्बन्धित है जब भारत अपनी सांस्कृतिक पताका विश्व के अधिकांश देशों में फहरा रहा था। बौद्धधर्म का प्रचार–प्रसार करने के लिए महाराज अशोक ने अपने पुष्यमित्र पुत्र एवं पुत्री संमित्रा को विदेशों में भेजा था। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने अति सूक्ष्मता एवं सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत किया है। उसमें मात्र तत्युगीन रेखाएँ ही नहीं मिलती अपितु तत्कालीन वातावरण के सजीव अंकन की रंगीनी भी मिलती है। धम्र की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण करने की अपेक्षा उन्होंने दार्शनिक आंतरिक गुत्थियों तथा समस्याओं को स्पष्टता प्रदान करना अधिक उचित समझा है। पात्रों का चरित्र चित्रण करते हुए परिवेशानुसार परिवर्तन एवं विकास का प्रतिपादन किया है। मानव चरित्र सत्–असत् दोनों पक्षों का पूर्ण प्रतिनिधित्व उनके नाटकों में मिलता है। नारी रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता, त्याग, बलिदान, ममता, सौहार्द, दया, माया एवं गंभीरता कवि प्रसाद ने प्रदान की है। उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप नारी को नाटककार प्रसाद ने प्रदत्त किया है। प्रसाद ने प्राय: सभी नाटकों में किसी–न–किसी ऐसी नारी की अवतारणा की है जो पृथ्वी के दुख पूर्ण, अंधकार पूर्ण मानवता को सुखमय उज्जवल प्रकाश की प्रदायिनी बनी है। जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के मध्य क्षमा, करुणा एवं प्रेम के स्थायी रूप की प्रतिष्ठा करती है और अपने प्रभाव विचारों तथा चरित्र के दुर्जनों को सज्जन दुराचारियों को सदाचारी, नशंस अत्याचारियों को उदार लोकसेवी बना देती है।

नारी तुम केवल श्रद्धातोविश्वरजत नग पग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के इस समतल में।
—कामायनी

प्रसाद की कामायनी की यह उक्ति प्रसाद के नाटक की दिव्य नायिकाओं को पूर्णत: चरितार्थ करती है। नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में पूर्वी एवं पश्चिमी तत्त्वों का अपूर्व सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद के नाटकों में एक और भारतीय नाट्यशास्त्रानुसार कथावस्तु, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शील निरूपण, रस, सत्य और न्याय विजय की परंपरा का पूर्ण सफलता से पालन हुआ है दूसरी और पाश्चात्य नाटकों का संघर्ष एवं व्यक्ति वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी रचनाओं में उसी तरह हुआ है। भारतीय नाट्य परंपरा की रसात्मकता इनमें प्रचुरता से उपलबध है साथ–साथ पाश्चात्य नाटकों की कार्य व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटक सुखांत होते हैं जबकि पाश्चात्य नाटककार दुखांत। नाटकों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। प्रसाद ने नाटकों का अंत इस ढंग से किया है कि उसे सुखांत दुखांत दोनों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि उन्होंने सुख दुखांतक नाटकों का सृजन किया है। दूसरी दृष्टि से उन नाटकों को न सुखांत कहा जा सकता है न दुखांत कहा जा सकता है। वास्तव में नाटकों का अंत एक ऐसी वैराग्य भावना के साथ होता है जिसमें नायक विजयी हो जाता है किन्तु वह फल का उपभोग स्वयं नहीं करता है। उसे वह प्रतिनायक को ही प्रत्यावर्तित कर देता है। इस प्रकार नाटकों के विचित्र अंत को प्रसाद के नाम पर ही प्रसादांत कहा गया है।

TOUCH 'n' PASS

मंचन की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों में आलोचकों को अनेक दोष दृष्टिगोचर होते हैं। कथानक विस्तृत एवं विशृंखला सा है कि उससे उनमें शैथिल्प आ गया है। उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं एवं दृश्यों का आयोजन किया है जो मंचन की दृष्टि से उपयुक्त एवं उचित नहीं। दीर्घ स्वगत कथन एवं लंबे वार्तालाप, गीतों का आधिक्य, वातावरण की गंभीरता आदि बातें उनके नाटकों की अभिनेयता में अवरोधक सिद्ध होती हैं। वास्तव में प्रसाद नाटकों में कवि एवं दार्शनिक अधिक हैं, नाटककार कम हैं। उनके नाटक विद्वानों, ऋषियों, मुनियों के चिंतन मनन की वस्तु हैं। जन साधारण के समक्ष उनका सफल प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य को प्रसाद में स्वयं व्यक्त किया है।

प्रसाद युग के अन्य नाटककार माखन लाल चतुर्वेदी, 'कृष्णार्जुन युद्ध', पंडित गोविंद वल्लभ पंत—'वरमाला', एवं 'राजमुकुट' आदि। पांडेय बेचन शर्मा उग्र—'महात्मा ईसा', मुंशी प्रेमचन्द—'कर्बला' एवं 'संग्राम' आदि उल्लेखनीय हैं। ध्यातव्य है कि विषय एवं शैली की दृष्टि से इन नाटककारों में परस्पर थोड़ा बहुत अंतर अवश्य है। परिणामत: इन्हें नाटककार स्वरूप विशिष्टमता विहीनता के कारण महत्त्व नहीं दिया जाता है।

प्रसादोत्तर नाटक—प्रसादोत्तर नाटक साहित्य को ऐतिहासिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, सामाजिक राजनीतिक कल्पनाश्रित एवं अन्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पुन: कल्पना आश्रित नाटकों को समस्या प्रधान, भावप्रधान तथाा प्रतीकात्मक नाटक तीन उप विभागों में विभक्त किया जा सकता है।

(iii) **स्वतंत्र्योत्तर**—स्वतंत्रता के पश्चात् नाटक लेखन की गति में तीव्रता आई। हिन्दी नाटक साहित्य को समद्ध करने वाले नाटककारों में—नरेश मेहता—'सुबह के घंटे', लक्ष्मीकांत वर्मा—'खाली कुर्सी की आत्मा', शिव प्रसाद सिंह, 'घंटियाँ गूंजती हैं', मन्नू भंडारी—'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना—'बकरी', 'मुद्राराक्षस', 'तिलचट्टा', शंकर घोष—'एक और द्रोणाचार्य', भीष्म साहनी—'हानूश' एवं 'कविरा खड़ा बाजार में', विमला रैना—'तीन युग', सर्वदानंद—'भूमिजा', श्रीमती कुसुम कुमार—'दिल्ली ऊँचा सुनती है', सुरेन्द्र वर्मा—'सूर्य की अंतिम किरण' से 'सूर्य की पहली किरण' तक, मणि मधुकर—'रस गंधर्व', सुशील कुमार सिंह, 'सिंहासन खाली है', ज्ञान देव अग्निहोत्री—'शुतुरमुर्ग', गिरिराज किशोर—'प्रजा ही रहने दो-, हमीदुल्ला—'समय संदर्भ', तथा प्रभात कुमार भट्टाचार्य 'काठ महल' आदि विशेष उल्लेखनीय नाटक हैं।

'नुक्कड़ नाटक' आधुनिक काल की देन हैं। टेलीविजन सीरियलों (धारावाहिकों) तथा टेलीविजन नाटक युग की माँग है। जिससे नाटक का बहु आयामी विकास हो रहा है। आज हिन्दी नाटकों का विकास नई दिशाओं एवं विभिन्न रूपों में होना हिन्दी नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलबिध है।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

हिन्दी गद्य की महत्त्वपूर्ण विधाओं का संक्षिप्त परिचय : तत्त्व एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु-युग के प्रमुख निबन्धकारों के नाम लिखिए।

***अथवा* भारतेन्दु को छोड़कर भारतेन्दु-युग के किन्हीं दो साहित्यकारों के नाम लिखिए।**

उत्तर भारतेन्दु-युग के प्रमुख निबन्धकार हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि।

प्र.2. द्विवेदी-युग के प्रमुख गद्य-लेखकों के नाम लिखिए।

***अथवा* द्विवेदी-युग के किन्हीं दो गद्य-लेखकों के नाम लिखिए।**

उत्तर द्विवेदी-युग के प्रमुख गद्य-लेखकों के नाम हैं—
आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, अध्यापक पूर्णसिंह, श्यामसुन्दर दास, पं० पद्मसिंह शर्मा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, गोपालराम गहमरी आदि।

प्र.3. 'चिन्तामणि' के लेखक का नाम बताइए।

उत्तर 'चिन्तामणि' के लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हैं।

प्र.4. कुछ प्रगतिवादी निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उत्तर डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० धर्मवीर भारती, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, शिवप्रसाद सिंह, रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि प्रमुख प्रगतिवादी निबन्धकार हैं।

प्र.5. छायावादी युग के निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उत्तर छायावादी युग के निबन्धकारों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्र.6. छायावादोत्तर युग के निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उत्तर डॉ० विद्यानिवास मिश्र, वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० नगेन्द्र, कुबेरनाथ राय आदि छायावादोत्तर युग के निबन्धकार हैं।

प्र.7. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

उत्तर हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों में प्रेमचन्द्र, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, भगवतीचरण वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, जैनेन्द्र कुमार आदि उल्लेखनीय हैं।

प्र.8. 'गोदान' एवं 'परीक्षागुरु' उपन्यास लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर 'गोदान' के लेखक प्रेमचन्द्र एवं 'परीक्षागुरु' के लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं।

प्र.9. उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास का मूल उद्देश्य क्या है?

उत्तर प्रेमचन्द उपन्यास को मानव-जीवन का चरित्र-चित्रण करने वाली एवं मानव-चरित्र के रहस्यों पर प्रकाश डालने वाली कलात्मक विधा समझते थे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. हिन्दी के सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास और उसके लेखक का नाम लिखिए।

उत्तर हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास—परीक्षा गुरु; लेखक—लाला श्रीनिवास दास।

प्र.11. प्रेमचन्द-युग के तीन उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

***अथवा* प्रेमचन्द के समकालिक हिन्दी के दो उपन्यासकारों के नाम लिखिए।**

उत्तर प्रेमचन्द-युग के प्रमुख उपन्यासकार हैं—
चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ कौशिक।

प्र.12. हिन्दी के प्रमुख सामाजिक उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

उत्तर प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, राजेन्द्र यादव, भगवतीचरण वर्मा, अमृतराय, अमृतलाल नागर, मन्नू भंडारी शिवानी आदि प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं।

प्र.13. जयशंकर प्रसाद ने कौन-कौन से उपन्यास लिखे हैं?

***अथवा* जयशंकर प्रसाद के दो उपन्यासों के नाम लिखिए।**

उत्तर तितली, कंकाल तथा इरावती (अपूर्ण) प्रसाद जी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

प्र.14. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर चारुचन्द्र लेख, अनामदास का पोथा, बाणभट्ट की आत्मकथा तथा पुनर्नवा द्विवेदी जी के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

प्र.15. द्विवेदी-युग के दो उपन्यासकारों के नाम बताइए।

उत्तर (1) देवकीनन्दन खत्री (2) गोपालराम गहमरी।

प्र.16. आधुनिक युग के किन्हीं दो कहानी-लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर आधुनिक युग के दो कहानी लेखक हैं—(1) भीष्म साहनी, (2) निर्मल वर्मा।

प्र.17. स्वतन्त्रता के पश्चात् के किन्हीं दो प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर स्वतन्त्रता के पश्चात् निर्मल वर्मा, गिरिराज किशोर आदि।

प्र.18. आधुनिक काल की किन्हीं दो महिला कथाकारों के नाम लिखिए।

उत्तर (1) शिवानी, (2) रजनी पनिक्कर।

प्र.19. प्रेमचन्द के बाद के किन्हीं दो प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर प्रेमचन्द के बाद के दो प्रमुख कहानीकारों के नाम हैं—जैनेन्द्र कुमार, विष्णु प्रभाकर।

प्र.20. कहानी और नयी कहानी का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्राचीन कहानियों का मुख्य उद्देश्य था—आध्यात्मिक विवेचन अथवा नैतिक उपदेश। जबकि आधुनिक कहानी मनुष्य की कुण्ठाओं तथा जीवन की विसंगतियों का यथार्थ चित्रण करने के लिए लिखी जाती है।

प्र.21. छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध कहानीकार का नाम लिखिए।

उत्तर छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचन्द थे।

प्र.22. कहानी की दो विशेषताएँ बताइए।

उत्तर कहानी की दो विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—(1) लघु वस्तु तत्त्व, (2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण, (3) एक ही विषय अथवा संवेदन का प्रस्तुतीकरण, (4) निश्चित उद्देश्य आदि।

प्र.23. भारतेन्दु युग के तीन नाटकों के नाम लिखिए।

उत्तर (1) भारत-दुर्दशा, (2) गौ-संकट, (3) कलिप्रभाव।

प्र.24. माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित नाटक का नाम बताइए।

उत्तर माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नामक नाटक लिखा है।

TOUCH 'n PASS

प्र.25. जयशंकर प्रसाद के दो नाटकों के नाम लिखिए।

***अथवा* जयशंकर प्रसाद के दो नाटकों के नाम बताइए।**

उत्तर जयशंकर प्रसाद के नाटकों के नाम हैं—राज्यश्री, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नाग यज्ञ, एक घूँट, कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित्त, कामना आदि।

प्र.26. आधुनिक काल के दो नाटककारों के नाम लिखिए।

उत्तर आधुनिक काल के दो प्रमुख नाटककार हैं—
(1) लक्ष्मीनारायण लाल, (2) विष्णु प्रभाकर।

प्र.27. छायावादी युग के एक ऐसे हिन्दी-नाटककार का नाम लिखिए जिसने ऐतिहासिक नाटकों के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

उत्तर श्री जयशंकर प्रसाद।

प्र.28. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों का विषय क्या है?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक देशप्रेम, समाज सुधार एवं राष्ट्रीय चेतना पर आधारित हैं।

प्र.29. भारतेन्दु युग के पाँच प्रसिद्ध नाटकों के नाम लिखिए।

उत्तर भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध नाटकों में श्री चन्द्रावली, प्रणयनी-परिणय, संयोगिता स्वयंवर, तप्ता संवरण, मयंक मंजरी, नल-दमयन्ती, वीरांगना रहस्य, सुदामा, कलिकौतुक आदि उल्लेखनीय हैं।

प्र.30. प्रसादोत्तर काल के प्रमुख नाटकों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर प्रसादोत्तर काल के प्रमुख नाटक जय-पराजय, आम्रपाली, अन्धा कुआँ, लहरों के राजहंस, अन्धा युग, मत्स्यगंधा, अँधेरे बन्द कमरे आदि हैं।

प्र.31. हिन्दी के पाँच प्रमुख एकांकीकार और उनके द्वारा लिखित एक-एक एकांकी का नाम बताइए।

उत्तर हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार और उनकी एकांकी इस प्रकार है—
(1) डॉ० रामकुमार वर्मा—दीपदान, (2) उदयशंकर भट्ट—नए मेहमान, (3) विष्णु प्रभाकर—सीमारेखा, (4) उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—तौलिया, (5) जगदीशचन्द्र माथुर—भोर का तारा।

प्र.32. छायावादोत्तर-युग के किन्हीं दो हिन्दी-एकांकीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर (1) लक्ष्मीनारायण मिश्र, (2) उदयशंकर भट्ट।

प्र.33. हिन्दी-गद्य की अग्रलिखित किन्हीं दो विधाओं के एक-एक लेखक का नाम लिखिए-डायरी, निबन्ध, कहानी, नाटक, एकांकी।

उत्तर **डायरी**—लक्ष्मीकान्त वर्मा, **निबन्ध**—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, **कहानी**—मुंशी प्रेमचन्द्र, **नाटक**—जयशंकर प्रसाद, **एकांकी**—डॉ० रामकुमार वर्मा।

प्र.34. हिन्दी की भेंटवार्ता अथवा यात्रा-वृत्त गद्य-विधा के किसी एक प्रसिद्ध लेखक तथा उसकी एक कृति का नाम बताइए।

उत्तर **भेंटवार्ता**—राजेन्द्र यादव—चेखव—एक इण्टरव्यू।
यात्रा-वृत्त—रामवृक्ष बेनीपुरी-पैरों में पंख बाँधकर।

प्र.35. हिन्दी के प्रमुख संस्मरण-लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर सर्वश्री पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, हरिभाऊ उपाध्याय, महादेवी वर्मा, शान्तिप्रिय द्विवेदी, इलाचन्द्र जोशी, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', देवेन्द्र सत्यार्थी, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि हिन्दी के प्रमुख संस्मरण-लेखक हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.36. हिन्दी के प्रमुख जीवनी लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर सर्वश्री रामनाथ सुमन, विष्णु प्रभाकर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, अमृतराय, डॉ० रामविलास शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, पद्मसिंह शर्मा आदि हिन्दी के प्रमुख जीवनी-लेखक हैं।

प्र.37. जीवनी और आत्मकथा के एक-एक लेखक और उनकी एक-एक पुस्तक का नाम लिखिए।

उत्तर **जीवनी**—विष्णु प्रभाकर-आवारा मसीहा।
आत्मकथा—वियोगी हरि-मेरा जीवन-प्रवाह।

प्र.38. प्रमुख रिपोर्ताज-लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर सर्वश्री प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभकर, प्रकाशचन्द्र गुप्त, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि हिन्दी के प्रमुख रिपोर्ताज-लेखक हैं।

प्र.39. हिन्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकारों के नाम लिखिए।

उत्तर हिन्दी के प्रसिद्ध रेखाचित्रकार हैं—महादेवी वर्मा, श्रीराम शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, रामवृक्ष बेनीपुरी, देवेन्द्र सत्यार्थी, विनयमोहन शर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', अमृतराय, श्रीनारायण चतुर्वेदी, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि।

प्र.40. यात्रा-वृत के किन्हीं तीन तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर यात्रा-वृत के मुख्य तत्त्व हैं—सहजता, रोचकता, सरसता।

प्र.41. यात्रा-साहित्य का प्रमुख लक्ष्य क्या है?

उत्तर यात्रा-साहित्य का मुख्य लक्ष्य है—किसी यात्रा के अनुभव को सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत करना।

प्र.42. यात्रा-साहित्य के तीन प्रमुख लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर यात्रा-साहित्य के तीन प्रमुख लेखकों के नाम हैं—
(1) मोहन राकेश, (2) विनयमोहन शर्मा, (3) राहुल सांकृत्यायन।

प्र.43. संस्मरण और रेखाचित्र का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर संस्मरण और रेखाचित्र एक-दूसरे से मिलती-जुलती विधाएँ हैं। फिर भी **रेखाचित्र** में चित्र अधूरा या खण्डित हो सकता है, जबकि **संस्मरण** में उसे पूर्ण बनाकर ही प्रस्तुत किया जाता है। रेखाचित्र को संस्मरण का कलात्मक विकास कह सकते हैं।

प्र.44. जीवनी और आत्मकथा का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन का क्रमबद्ध विवरण किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जबकि आत्मकथा में लेखक अपने जीवन की विविध घटनाओं का वर्णन स्वयं करता है।

प्र.45. खड़ीबोली हिन्दी के दो प्रमुख गद्य-गीतकारों के नाम लिखिए।

उत्तर हिन्दी के दो गद्य-गीतकारों (गद्यकाव्य-लेखकों) के नाम हैं—
(1) वियोगी हरि, (2) दिनेशनन्दिनी डालमिया।

प्र.46. हिन्दी के प्रसिद्ध व्यंग्य-लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर सर्वश्री हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अमृतराय, केशव चन्द्र वर्मा, अशोक शुक्ल आदि हिन्दी के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य लेखक हैं।

प्र.47. डायरी विधा का आशय स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **डायरी**—जब लेखक तिथि विशेष में घटित चक्र को यथावत रूप में अपनी संक्षिप्त प्रतिक्रिया अथवा टिप्पणी के साथ लिख देता है तो उसे डायरी विधा कहते हैं।

प्र.48. समीक्षा और आलोचना में क्या अन्तर है?

उत्तर समीक्षा और आलोचना एक-दूसरे के पर्यायवाची अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी साहित्य में व्यावहारिक रूप में इनमें कोई अन्तर नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.49. द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचकों के नाम लिखिए।

उत्तर द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना लेखकों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन आदि थे।

प्र.50. 'संस्मरण' और 'डायरी' में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर संस्मरण किसी घटना या तथ्य को यथार्थ एवं सर्वांगीण रूप में पुन: स्मरण करके शब्दांकित की गई गद्य-विधा है जबकि **डायरी** स्वयं अपने सम्बन्ध में तिथिबद्ध एवं क्रमबद्ध लिखी गई तथ्यात्मक गद्य-विधा है। इसके अतिरिक्त संस्मरण दूसरे व्यक्ति, घटना या विषय से सम्बन्धित होता है; जबकि डायरी लेखक के स्वयं के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित होता है।

प्र.51. डायरी विधा के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर जब लेखक तिथि-विशेष में घटित घटना-चक्र को यथातथ्य रूप में या अपनी संक्षिप्त प्रतिक्रिया अथवा टिप्पणी के साथ लिख देता है तो उसे 'डायरी विधा' की रचना कहते हैं।

प्र.52. छायावादोत्तर युग में विकसित होने वाली प्रकीर्ण गद्य-विधाओं में से दो विधाओं के नाम लिखिए।

उत्तर छायावादोत्तर युग में विकसित होने वाली दो प्रकीर्ण गद्य-विधाएँ निरोतांज एवं भेंटवार्त्ता हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. हिन्दी गद्य में कहानी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

कहानी

कहानी गद्य साहित्य का कोई नया रूप-विधान नहीं है। यह विधा जीवन के किसी एक संक्षिप्त प्रसंग की मार्मिक झलक दिखाने के उद्देश्य के साथ जन्मी और पर्याप्त विकसित हुई। 'एक क्षण में घनीभूत जीवन-दृश्य का अंकन' इसका उद्देश्य बन गया और जीवन के किसी मार्मिक क्षण में संवेदित होकर उसे कलात्मक एवं रोचक ढंग से रूपायित करना कहानीकार का कर्म बन गया। कहानी किसी मार्मिक घटना, मनोगत भावना, अनुभव या सत्य के चयन को अतिरंजन की कलात्मक रीति से संक्षेप में प्रतिबिम्बित करती है। इस प्रकार कहानी जीवन का खण्ड-चित्र है।

प्रसिद्ध समीक्षक बाबू श्यामसुन्दर दास ने कहानी को "एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर रचे गये नाटकीय आख्यान" की संज्ञा दी है। कहानीकार अज्ञेय की दृष्टि में "कहानी एक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र है, जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के रूपक दृश्य खुलते हैं।" इस प्रकार कहानी वह संक्षिप्त कथात्मक गद्य-विधा है, जिसमें जीन की कोई एक भंगिमा या संवेदना या घटना झिलमिलाती हुई दिखाई पड़ती है। यह साहित्य का वह विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक अपनी कल्पनाशीलता के सहारे कम-से-कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा कम-से-कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से अधिक-से-अधिक प्रभाव की सृष्टि करता है।

भारतेन्दु से पहले की हिन्दी कहानियों में इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' की विशेष चर्चा की जाती है। विद्वान् इसे हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं, परन्तु कहानी-कला की दृष्टि से इसे आधुनिक कहानी नहीं कहा जा सकता। भारतेन्दु युग में उत्कृष्ट कहानी सामने नहीं आयी। द्विवेदी युग में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती'; बंग महिला की 'दुलाईवाली' और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानियों को हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी होने का श्रेय दिया जाता है। इनमें 'इन्दुमती' से ही कहानी का जन्म माना जाता है।

द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में प्रसाद और प्रेचन्द्र के आगमन के साथ ही हिन्दी कहानी के क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित हुआ। प्रसाद जी की कहानियों में—'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'ममता', 'मधुआ', 'चित्र-मन्दिर', 'गुण्डा' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में भाव, भाषा और कल्पना का पूर्ण उत्कर्ष दिखाते हुए मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण किया है। इनके साथ ही प्रेमचन्द ने भी सरल व्यावहारिक भाषा-शैली में यथार्थ का मार्मिक चित्रण करने वाली आदर्शोन्मुखी कहानियों की रचना की। इनकी कहानियों में 'शतरंज के खिलाड़ी', 'कफन', 'पंच परमेश्वर', 'मन्त्र', 'ईदगाह' आदि प्रमुख हैं। इसी काल में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी लिखी गयी थी। इसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिना जाता है। इस युग के कहानीकारों में राधिकारमण सिंह, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', ज्वालादत्त शर्मा, विशम्भरनाथ जिज्जा और जी०पी० श्रीवास्तव आदि के

TOUCH 'n PASS

नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी की प्रारम्भिक कहानियाँ इसी काल में प्रकाशित हुई थीं। सन् 1935 ई० से हिन्दी कहानी एक नयी दिशा की ओर मुड़ी। इस युग में सामाजिक चेतना और यथार्थ जीवन को व्यक्त करने वाली कहानियों का श्रीगणेश हुआ तथा सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी गयीं। इस युग के जैनेन्द्र कुमार हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में से एक हैं। इन्होंने हिन्दी कहानी को एक नवीन अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की तथा हिन्दी कहानी के बौद्धिक स्तर को भी ऊँचा उठाया। इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय को जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिकता से प्रभावित कहानी-लेखक कहा जा सकता है। इन लेखकों में मनोविश्लेषण के प्रति इतना आग्रह है कि वे मानसिक रुग्णताओं को ही मानवीय सत्य मानकर अपने पात्रों के कृत्यों का यथातथ्य प्रकृतिवादी आकलन करते हैं। क्रान्ति और भावना का ऐसा सामाजिक विद्रूप हिन्दी में अन्यत्र नहीं मिलता। इस युग के प्रमुख कहानीकार जैनेन्द्र कुमार, सियारामशरण गुप्त, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर आदि है।

प्र.2. प्रेमचन्द युग के पश्चात् उपन्यास को कितने भागों में विभाजित किया गया? टिप्पणी कीजिए।

उत्तर प्रेमचन्द के पश्चात् उपन्यास-काल दो कालों में विभाजित हो गया—स्वतन्त्रता पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यास। इस युग में सामाजिक उपन्यास अधिक लिखे गये। इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का सन्देश देना है। इस युग में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने उपन्यास में मनोविज्ञान का विशेष समावेश किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यास अनेक नयी दिशाओं में विकसित हुआ। इस युग के प्रमुख उपन्यासकार एवं उनके उपन्यास इस प्रकार हैं—जैनेन्द्र (परख, सुनीता, त्यागपत्र आदि); इलाचन्द्र जोशी (जहाज का पंछी, घृणापथ आदि); अज्ञेय (शेखर—एक जीवनी, नदी के द्वीप)। इस युग के अन्य उपन्यासकार हैं—यशपाल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', फणीश्वरनाथ रेणु, राहुल सांकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि।

साठोत्तर वर्षों में हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में जो मोड़ आया, उसमें मध्यम वर्ग की गाथा तो है ही, जीवन के प्रति तीखापन और कटुता का विष भी व्यक्त होता है। इस युग के उपन्यासों में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को महत्ता प्राप्त हुई तथा कथाहीनता व कथायुक्तता दोनों की प्रवृत्तियाँ भी साथ-साथ विकसित होती रहीं। इनके साथ ही प्राचीन कथाएँ भी पुन: संशोधित होकर अथवा समकालीन सन्दर्भों में विश्लेषित होकर श्रेष्ठ उपन्यासों के रूप में सामने आयीं। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार हैं—हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्रीलाल शुक्ल, नरेन्द्र कोहली, 'अज्ञेय', निर्मल वर्मा, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर, शिवानी, शैलेश मटियानी, नागार्जुन, कमलेश्वर, डॉ० देवराज, डॉ० राही मासूम रजा आदि।

समग्रत: हम कह सकते हैं कि उपन्यास आज के गद्य लेखक की केन्द्रीय विधा हो चली है तथा इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। वस्तुत: उपन्यास गद्य साहित्य की वह महत्त्वपूर्ण विधा है, जो मनुष्य को उसकी समग्रता में व्यक्त करने में समर्थ है। हिन्दी उपन्यास का सौ वर्षों का इतिहास उसके द्रुत विकास और उज्ज्वल भविष्य का परिचायक है।

प्र.3. हिन्दी गद्य के प्रमुख नाटकों के परिचयात्मक विवरण दीजिए।

उत्तर

नाटक

भाषा में साहित्यिक नाटक और लोक नाटक की परम्परा प्राचीनतम काल से चली आ रही थी। अश्वघोष, भवभूति, कालिदास आदि के संस्कृत नाटक अपने अनुपम कलात्मक सौन्दर्य के लिए चिरविख्यात हैं। इन साहित्यिक नाटकों के अतिरिक्त भारतीय लोक-परम्परा में लोक नाटकों का व्यापक प्रचलन भी पहले से ही चला आ रहा था, जिसमें 'रास' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। इसीलिए राष्ट्रीय जागरण की प्रात:बेला में जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी लेखक देशवासियों को उनकी दुरावस्था के प्रति सचेत करने के लिए जब गद्य साहित्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए, तो अन्य रूपों के साथ-साथ गद्य साहित्य का यह रूप उन्हें सर्वसुलभ लगा।

भारतेन्दु जी ने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगाली भाषा के नाटकों का गहन अध्ययन किया था। अत: उन्होंने जिन नाटकों की सर्जना की उनमें सामाजिक, राजनैतिक, पौराणिक और प्रेम प्रधान सभी प्रकार के नाटक थे। इन नाटकों के अतिरिक्त इस पीढ़ी के लेखकों ने कतिपय 'प्रहसनात्मक नाटक' भी लिखे, जिनमें व्यंग्य तथा सुरुचिपूर्ण हास्य का पुट देकर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक समस्याओं को उद्घाटित किया जाता है। भारतेन्दु की प्रेरणा और प्रभाव से उस युग के अनेक लेखक नाट्य-रचना में प्रवृत्त हुए। श्रीनिवासदास ने 'रणधीर' और 'प्रेममोहिनी' राधाकृष्णदान ने 'दु:खिनी बाला' और 'महाराणा प्रताप', बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'भारत सौभाग्य', सीताराम वर्मा ने 'विवाह विडम्बन', प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारत-दुर्दशा' आदि नाटक लिखे। इन

नाटकों में भारतेन्दु जी की प्रवृत्तियों का ही अनुकरण हुआ है। प्राय: सभी में समाज-सुधार, देश-प्रेम या हास्य-विनोद की प्रवृत्ति मिलती है। इन नाटकों में गद्य खड़ीबोली में तथा पद्य ब्रजभाषा में लिखा गया है।

हिन्दी नाटक के दूसरे प्रभावशाली लेखक जयशंकर प्रसाद थे। इन्होंने पाश्चात्य और भारतीय नाट्य-कलाओं को मिलाकर एक नवीन शैली का प्रवर्तन किया। इस युग में उच्चकोटि के ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटक लिखे गये। प्रसाद जी ने एक दर्जन से अधिक नाटकों की रचना की। 'सज्जन', 'कल्याण परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'अजातशत्रु', 'एक घूँट', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि इनके प्रमुख नाटक हैं। प्रसाद जी ने देशवासियों में गौरव, उत्साह, बल एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया है। इस युग के अन्य नाटककारों में माखनलाल चतुर्वेदी, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, रामकुमार वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर प्रसाद के बाद जो नाट्य-साहित्य लिखा गया, उसके अनेक रूप हैं। कुछ नाटक तो प्रेमप्रधान हैं, कुछ पौराणिक विषयों को आधार बनाकर लिखे गये हैं, कुछ सामाजिक कुरीतियों से सम्बन्धित हैं तो कुछ ऐसे नाटक भी हैं, जिन्हें समस्याप्रधान नाटक की अभिधा प्राप्त है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रसादोत्तर काल में नाटकों के कथानक में स्वाभाविकता लाने के प्रयत्न किये गये और कथावस्तु को संगठित और सुसम्बद्ध रूप प्रदान किया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी नाटकों का विकास तीव्रतम गति से हुआ। इस युग में नवीन परम्पराओं को धारण करते हुए जिन नाटकों की रचना हुई, उन्हें क्रमश: सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, व्यक्तिवादी चेतना और राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित नाटकों की संज्ञा से सुशोभित किया गया। साठोत्तर वर्षों में सृजित साहित्य जैसे कविता, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में नवीनता व परिवेश-व्यापी यथार्थ को निरूपित करता रहा है वैसे ही नाट्य साहित्य भी। यह यथार्थ की सूक्ष्मतम स्थितियों का प्रस्तुतीकरण करने, व्यक्ति के मन पर पड़े बोझ व दबावों की अभिव्यक्ति में संलग्न तथा बौद्धिकता के विकास के परिणामस्वरूप मानवीय सम्बन्धों में आई रिक्तता, अर्थशून्यता और विसंगत स्थितियों को अभिव्यक्ति देने में सफल दिखाई देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दशाओं में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में रंगमंच के अभाव तथा एकांकी, रेडियो-रूपकों व चलचित्र से प्रतियोगिता के कारण इसके विकास की गति मन्द रही, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इसका विकास द्रुतगति से हुआ है। हिन्दी में नयी कविता की भाँति नया नाटक तो नहीं आया, फिर भी यह कहा जा सकता है कि अपने युग और समाज की नवीनतम स्थितियों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यंजित करने की दृष्टि से हिन्दी का नाटक उसकी अन्य सभी विधाओं की अपेक्षा सर्वाधिक नवीन एवं अधुनातन है, जो लेखकों की व्यापक अन्तर्दृष्टि एवं गम्भीर सामाजिक चेतना को अभिप्राणित करता है। वस्तुत: बिना नूतनता की घोषणा और नयेपन के आन्दोलन के भी किस प्रकार नवीनतम रहा जा सकता है, इसका उदाहरण आज का हिन्दी नाटक साहित्य है। अन्तत: कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटकों के विकास की एक सुदीर्घ परम्परा है, जो अनवरत चलती रहेगी और अपने विकास की चरम सीमा का संस्पर्श करेगी।

प्र.4. नाटक और एकांकी में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर नाटक और एकांकी में अन्तर—दोनों दृश्य काव्य हैं, दोनों में अभिनेता भी है फिर भी दोनों की संरचना प्रक्रिया में मौलिक अन्तर है—

क्र०सं०	नाटक	एकांकी
1.	नाटक में अनेक अंक हो सकते हैं।	एकांकी में एक अंक होता है।
2.	नाटक में आधिकारिक के साथ सहायक और गौण कथाएँ भी होती है।	एकांकी में एक ही कथा घटना रहती है।
3.	नाटक में चरित्र का क्रमश: विकास दिखाया जाता है।	एकांकी में पात्रों के क्रियाकलापों और चरित्रों का संयोजन इस रूप में होता है कि एकांकी होते हुए भी उनके व्यक्तित्व का समूचना बिम्ब मिल जाए।
4.	कथानक की विकास प्रक्रिया धीमी रहती है।	कथानक आरम्भ से ही चरम लक्ष्य की ओर द्रुत गति से बढ़ता है।
5.	नाटक के कथानक में फैलाव और विस्तार रहता है।	एकांकी के कथानक में घनत्व रहता है।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. हिन्दी साहित्य में यात्रा-वृत्तान्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

यात्रा-वृत्तान्त

यात्रा-वृत्तान्त संस्मरण और रेखाचित्र से मिलती-जुलती विधा है। इसमें लेखक अपनी किसी यात्रा का रोचक वर्णन करता है, जिससे जिस स्थान की यात्रा की गई है, उसकी ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से पाठक परिचित होते हैं। सौन्दर्य का बोध और कौतूहल जगाए रखना ये दोनों यात्रावृत्त की खूबियाँ हैं। यात्रावृत्त विषय प्रधान भी हो सकता है, विषयी प्रधान भी। देशकाल के विषय में पाठक की जानकारी बढ़ाना इसका मुख्य उद्देश्य है।

विवरण की प्रधानता यात्रावृत्त की विशेषता है, इसी कारण इसे निबन्ध के अंतर्गत माना जाता था, किन्तु अब इसे स्वतंत्र विधा की संज्ञा प्राप्त है। विवरण का क्रमपूर्वक होना इसकी मूलभूत विशेषता है। यात्रा विवरण में निम्न बातों पर बल दिया जाता है—

1. कोई प्राकृतिक स्थल हो।
2. कोई ऐतिहासिक महत्त्व का स्थल-भवन।
3. यदि भवन है तो स्थापत्य कला।
4. कोई आश्चर्यजनक घटना/वस्तु।
5. क्या स्थान विशेष का ऐतिहासिक/पुरातात्विक, सामाजिक सांस्कृतिक व धार्मिक महत्त्व है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने स्वयं हरिद्वार, बैजनाथ आदि के यात्रावृत्त लिखकर इस विधा की शुरुआत की थी। बालकृष्ण भट्ट लिखित 'कतिकी का नहान' प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलायत यात्रा' इसी कोटि की प्रारंभिक रचनाएँ हैं। इस दिशा में देवेन्द्र सत्यार्थी लिखित 'चाँद सूरज के वीरन' पुस्तकाकार में पहली कृति मानी जा सकती है। राहुल सांकृत्यायन का यात्रावृत्त लेखन की दिशा में किया गया योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा लिखित यात्रावृत्त में प्रमुख रूप से 'मेरी यूरोप यात्रा' एवं 'मेरी तिब्बत यात्रा' हैं। अज्ञेयकृत (अरे, यायावर रहेगा याद), रांगेय राघव (तूफानों के बीच), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बाँधकर), काका कालेलकर (हिमाचल यात्रा), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), दिनकर (देश-विदेश), यशपाल जैन (पड़ोसी देशों में), अमृतराय (सुबह के रंग), यशपाल (लोहे की दीवारों के दोनों ओर) अमृतलाल बेगड़ (सौन्दर्य की नदी नर्मदा) इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। यात्रा वृत्त लेखकों में इनके अतिरिक्त विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र अवस्थी, हिमांशु जोशी, निर्मल वर्मा आदि के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं।

यात्रा साहित्य को विभिन्न शैलियों में संस्मरणात्मक, पत्र शैली, डायरी शैली, आत्मकथात्मक आदि में लिखा जाता रहा है। राहुल सांकृत्यायन ने सर्वाधिक यात्राएँ की और यात्रा वृत्तान्त भी लिखे। उन्होंने घुमक्कड़ शास्त्र की रचना की। यात्रा विवरण से वह स्थान विशेष को पाठक के समक्ष मूर्त रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।

प्र.6. रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

रेखाचित्र

रेखाचित्र मूल रूप से चित्रकला का शब्द है। रेखाओं के द्वारा बना हुआ चित्र रेखाचित्र है। चित्र में रेखाएँ जो काम करती हैं, वही काम साहित्य में शब्द करते हैं। जब लेखक शब्दों के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का इस प्रकार वर्णन करता है कि आँखों के आगे उस व्यक्ति वस्तु या दृश्य का चित्र खिंचता चला जाए, तो इसे रेखाचित्र कहते हैं। रेखाचित्र पूरी तरह से न कहानी है और न निबन्ध किन्तु इन दोनों के तत्त्वों का कुछ-न-कुछ समावेश उसमें अवश्य है। यही कारण है कि रेखाचित्र को निबन्ध की श्रेणी में रख दिया जाता है या उसकी गणना कहानियों में की जाती है।

'रेखाचित्र' का प्रयोग हिन्दी में रेखाओं से बनाए हुए चित्र से होता है। रेखाचित्र के लिए हिन्दी में 'व्यक्ति चित्र, चरित्र लेखन, शब्द चित्र' आदि अनेक शब्द हैं, किन्तु रेखाचित्र ही सर्वाधिक प्रयोग में आता है। हिन्दी रेखाचित्र का विकास दूसरे दशक में प्रारम्भ हुआ जबकि पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जी का पहला रेखाचित्र सन् 1912 में मर्यादा में 'औरंगजेब' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यही कारण है कि पं० बनारसीदास जी को इस विधा का भीष्म पितामह कहा जा सकता है।

रेखाचित्र की विशेषता यह होती है कि इसमें साहित्यकार अपनी कल्पना या अनुभूति का अलग से कोई रंग नहीं भरता, जिस व्यक्ति, वस्तु या दृश्य का वर्णन करना है, उनका हू-बू-हू चित्र अंकित कर देता है। संस्मरण और रेखाचित्र दोनों में ही वर्ण्य विषय काल्पनिक न होकर यथार्थ होता है। पर संस्मरण में आत्मपरकता अधिक होती है और रेखाचित्र में कम।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. संस्मरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

संस्मरण

संस्मरण का अर्थ है सम्यक् (भली-भाँति) स्मरण करना। किसी स्मरणीय व्यक्ति या घटना की यादों को व्यक्त किया जाता है। लेखक का स्मरणीय व्यक्ति के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध होना आवश्यक है। यह आत्मपूरक हुआ करता है। लेखक उत्तम पुरुष (मैं, हम) का प्रयोग करते हुए व्यक्ति या घटना का वर्णन करता है।

'संस्मरण' और 'रेखाचित्र' में कोई सूक्ष्म रेखा खींचना सरल नहीं है जिनका परिगणन एक लेखक ने रेखाचित्र विधा में किया है उसका अन्य व्यक्ति ने संस्मरण विधा में। महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'स्मृति' शब्द जहाँ उस कृति को संस्मरण की ओर ले जा रही है वही रेखाएँ 'रेखाचित्र' की विधा की ओर। दोनों में विशेष रेखाओं का अंकन संभव है, संस्मरण अतीत का हो सकता है और रेखाचित्र किसी भी काल का संभव है। हमारे चेतन में भविष्य की कोई कल्पना स्पष्ट हो तो उसका रेखांकन भी संभव है।

इस विधा का आरम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ। ब्राह्मण पत्रिका में प्रकाशित 'प्रताप चरित्र' से (प्रताप) संस्मरण का आरम्भ माना जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन का 'शांति निकेतन' में संस्मरण का अच्छा उदाहरण है। महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' शीर्षक पुस्तक में अपने समय के साहित्यकारों पर मार्मिक संस्मरण लिखे हैं।

वास्तविक रूप से संस्मरण साहित्य का विकास पद्मसिंह शर्मा के लिखे संस्मरणों से समझना चाहिए। श्रीराम शर्मा के 'सन् ब्यालीस के संस्मरण' इस दौर की उल्लेखनीय रचना है। रामवृक्ष बेनीपुरी के संस्मरण 'माटी की मूरतें' में संकलित हुए हैं। शांतिप्रिय द्विवेदी के संस्मरण 'परिव्राजक की आत्मकथा' और ये 'पदचिन्ह' में संकलित हुए हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के लिखे कुछ महानुभावों के संस्मरण 'संस्मरण' नाम से प्रकाशित हो गए हैं। उनमें संस्मरणों के साथ श्रद्धापूर्ण विवेचन भी है। आपकी 'रेखाचित्र' नाम की पुस्तक में प्रसिद्ध व्यक्तियों के रेखाचित्र के अतिरिक्त संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ भी हैं। स्व. इन्द्र विद्यावाचस्पति ने भी अपनी पत्रकारिता पर संस्मरण लिखे हैं। 'मैं इनका ऋणी हूँ' नाम से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों पर भी आपने लिखा है। डॉ० सुशील नायक की लिखी हुई 'कारावास की कहानी' अनुदित होते हुए भी हिन्दी के संस्मरण साहित्य के लिए बहुत अच्छी देन है। आत्मकथात्मक संस्मरणों में महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' बड़े रोचक और सजीव हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कृत 'भूले हुए चेहरे, दीप जले शंख बजे' देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'रेखाएँ बोल उठीं, क्या गोरी क्या साँवरी, श्रीनारायण चतुर्वेदी के 'मनोरंजक संस्मरण' राहुल सांकृत्यायन कृत 'बचपन की स्मृतियाँ' इलाचंद्र जोशी कृत 'गोर्की के संस्मरण' ललिता शास्त्री कृत 'मेरे पति मेरे देवता' आदि इस विधा में उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। विभिन्न अभिनंदन ग्रंथों में भी अभिनंदनीय व्यक्तियों पर लिखे संस्मरण संकलित रहते हैं। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में भी साहित्यकारों, कलाकारों, राजनेताओं पर संस्मरण प्रकाशित होते रहते हैं।

प्र.8. हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज पर लेख लिखिए।

उत्तर

रिपोर्ताज

हिन्दी गद्य की नवीन विकसित विधाओं में रिपोर्ताज का भी विशेष महत्त्व है। रिपोर्ताज शब्द फ्रांसीसी भाषा से लिया गया है। इसका सम्बन्ध अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' शब्द से भी जोड़ा जाता है, जो बोलचाल की भाषा में 'रपट' हो गया है। 'रिपोर्ट' किसी घटना के यथातथ्य साध्य वर्णन को कहते हैं। 'रिपोर्ट' सामान्य रूप से समाचार-पत्रों में प्रकाशित करने तथा रेडियो अथवा दूरदर्शन पर प्रसारित करने के लिए पत्रकार द्वारा तैयार की जाती है, जिसमें तथ्यों का क्रमबद्ध वर्णन होता है, परन्तु यही कार्य जब सौन्दर्य-चेता साहित्यकार करता है, तो उसमें उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताएँ, प्रतिक्रियाएँ और व्याख्याएँ भी समाहित हो जाती है और इस प्रकार उसके द्वारा विरचित घटना-विवरण 'रिपोर्ताज' कहलाता है।

रिपोर्ताज-लेखक का घटना से प्रथम साक्षात्कार आवश्यक है। इसलिए युद्ध की विभीषिका, अकाल की छाया से पूरे मानव समाज को प्रभावित करने वाली अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं के घटित होने पर पत्रकार और साहित्यकार उस घटना के अनेक सन्दर्भों की प्रथम जानकारी हासिल करते हैं और उन्हें रिपोर्ताज शैली में प्रस्तुत करके पाठक के मन को झकझोर देते हैं।

हिन्दी में इस विधा का सूत्रपात बंगाल के भयानक अकाल (1943 ई०) से माना जाता है। डॉ० रांगेय राघव स्वयं अकालग्रस्त बंगाल गये और वहाँ से जो समाचार भेजे, उन्होंने रिपोर्ताज का रूप धारण कर लिया। उनके ये रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' नाम से प्रकाशित हुए। कुछ विद्वान् डॉ० शिवदानसिंह चौहान विरचित 'लक्ष्मीपुरा' (1938 ई०) को हिन्दी का प्रथम रिपोर्ताज मानते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'स्वराज्य भवन', 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल'; उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की 'पहाड़ों में प्रेममयी संगीति'; रामनारायण उपाध्याय की 'गरीब और अमीर'; भदन्त आनन्द कौसल्यायन की 'देश की मिट्टी बोलती है'; कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की 'एक तस्वीर के दो पहलू', 'क्षण बोले कण मुस्काए' और 'दिल्ली की यात्रा-स्मृतियाँ'; शिवसागर मिश्र की 'वे लड़ेंगे हजार साल'; धर्मवीर भारती की 'युद्ध यात्रा' तथा शमशेर बहादुर सिंह की 'प्लाट का मोर्चा' इस विधा की समर्थ रचनाएँ हैं। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं का इस विधा के प्रसार में पर्याप्त योगदान रहा है। 'हंस के समाचार' और विचार' तथा 'अपना देश' नामक स्तम्भों के अन्तर्गत रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। 'नया पथ', 'ज्ञानोदय', 'कल्पना', 'माध्यम', 'दिनमान', 'धर्मयुग' तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान में समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज विभिन्न स्तम्भों के अन्तर्गत प्रकाशित होते रहे हैं, जिनका महत्तवपूर्ण लेखन डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, फणीश्वरनाथ रेणु, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा प्रभृति लेखकों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि रिपोर्ताज ने हिन्दी में अपने लिए अच्छा खासा क्षेत्र बना लिया है तथा ज्यों-ज्यों पत्रकारिता का विकास होता जा रहा है, यह परम्परा निखरती ही जा रही है।

प्र.9. डायरी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

डायरी

कलाकार अपने हृदय में उत्पन्न विचारों की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न माध्यमों को खोजता है और इसी प्रकार शैलियों की उत्पत्ति होती है। डायरी इसी प्रकार की एक शैली है। डायरी किसी व्यक्ति की नितान्त वैयक्तिक सम्पत्ति होती है, किन्तु प्रकाश में आने पर अपने सार्वजनिक एवं सार्वकालिक महत्त्व के कारण साहित्य-जगत् की सम्पत्ति बन जाती है। यदि डायरी लेखक कोई प्रतिभाशाली अथवा लोक प्रख्यात व्यक्ति है, तो उसकी डायरी और अधिक मूल्यवान बन जाती है।

'डायरी' अंग्रेजी का शब्द है तथा यह लेटिन भाषा के 'डायस' शब्द से बना है। 'डायस' शब्द संस्कृत के 'दिवस' शब्द का समानार्थक है। डायरी लेखन के पर्यायवाची शब्द दैनिकी, रोजनामचा, दैनन्दिनी आदि है। डायरी कुछ महत्त्वपूर्ण तिथियों में घटित घटनाओं को लेकर भी लिखी जा सकती है और क्रमबद्ध रूप में दिनांक, सन्, संवत् आदि का उल्लेख करते हुए रोजनामचे के रूप में भी लिखी जा सकती है। इसका आकार कुछ पंक्तियों तक ही सीमित हो सकता है और कई पृष्ठों तक विस्तृत भी। यह स्वतन्त्र रूप में भी लिखी जा सकती है और कहानी, उपन्यास या यात्रावृत्त के अंग के रूप में भी।

यों तो प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, जो उसमें हर्ष, विषाद, स्फूर्ति, नैराश्य, पीड़ा अथवा वितृष्णा का संचार करती हैं, परन्तु सामान्य व्यक्ति इन घटनाओं पर क्षणिक विचार करने के उपरान्त भूल जाता है। दूसरी ओर कलाकार का संवेदनशील हृदय एकान्त क्षणों में इन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए आतुर हो उठता है। इसी स्थिति ने डायरी-लेखन की शैली को जन्म दिया। वस्तुत: किसी दैनिक घटना के सम्बन्ध में अपने मन की उधेड़बुन व्यक्त करने के लिए 'डायरी' सर्वोत्तम माध्यम है। लेखक के व्यक्तित्व को जानने का यह प्रमाणिक माध्यम भी है, क्योंकि इसमें लेखक के मनोभावों का निश्छल प्रकाशन होता है। विशुद्ध डायरी निश्चय ही इस दृष्टि से कभी नहीं लिखी जाती कि बाद में उसका प्रकाशन होगा।

मोटे तौर पर यह नितान्त व्यक्तिगत होती है तथा अपनी निजी विचारों, भावों, अनुभूतियों को उल्लिखित करने हेतु इसका लेखन किया जाता है। डायरी में वस्तुत: ताजे अनुभवों को मूर्तरूप प्रदान किया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से डायरी में शिल्पगत कलात्मकता, क्रमबद्धता आदि की कमी हो सकती है, परन्तु स्पष्ट कथन, आत्मीयता, निकटता आदि के कारण डायरी की उक्त कमियाँ दूर हो जाती हैं।

हिन्दी में डायरी-लेखन का प्रारम्भ लगभग सन् 1930 के आस-पास माना जाता है। नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ को प्रथम डायरी लेखक माना जाता है। उनकी डायरी ''नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ की जेल डायरी'' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी में डायरी-लेखन-कला का उदय हुआ था। घनश्याम दास बिड़ला द्वारा लिखित 'डायरी के पन्ने', सुन्दर लाल त्रिपाठी द्वारा लिखित 'दैनन्दिनी' तथा धीरेन्द्र वर्मा लिखित 'मेरी कॉलेज डायरी' जैसी कुछ गिनी-चुनी रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। छायावादोत्तर युग में इलाचन्द्र जोशी, रामधारी सिंह 'दिनकर', शमशेर बहादुर सिंह, मोहन राकेश आदि की डायरियाँ प्रकाशित हुई हैं। नये लेखकों में लक्ष्मीकान्त वर्मा, नरेश मेहता, अजित कुमार, प्रभाकर माचवे आदि ने कलात्मक डायरियाँ लिखी हैं।

हिन्दी में गद्य की इस कलात्मक विधा का अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ है, लेकिन यह अपने विकास-पथ पर अग्रसर होती हुई अपने चरणचिन्ह बनाती जा रही है तथा भविष्य में इसके विकसित होने की अत्यधिक सम्भावना है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. हिन्दी साहित्य में आत्मकथा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

आत्मकथा

आत्मकथा और जीवनी में पर्याप्त अंतर है। अपने जीवन की घटनाओं का स्वयं लिखा हुआ विवरण आत्मकथा है, तो दूसरे के द्वारा लिखा हुआ विवरण जीवनी है। आत्मकथा में पूरी ईमानदारी के साथ आत्मचित्रण करना होता है, जो कठिन कार्य है। इसकी एकमात्र कसौटी है कि 'मैं' अपने को कितनी निर्ममता से छील सकता हूँ। यही कारण है कि चरित्रवान तथा शुद्ध निर्मल हृदय के ही मानव आत्मचरित्र लिख सकते हैं। आत्मकथा में लेखक अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन करता है। यथार्थपरकता इसका प्रधान लक्षण है। जहाँ लेखक अपने अतीत और वर्तमान को झाँकता है, वहीं अपने परिवेश से पूरी तरह जुड़ा होता है। चरित्रवान व्यक्ति की आत्मकथा प्रेरणास्रोत भी बनती है। आत्मकथा का प्रारम्भ ही मध्यकाल में जैन साहित्य के समज्ञ विद्वान बनारसीदास जैन की 'अर्द्धकथानक' 1641 ई० से होता है। यह पद्यात्मक आत्मकथा है जिसमें तत्कालीन युग की सम्पूर्ण झाँकी है। पर व्यवस्थित रूप से 'आत्मकथा' का लेखन आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही माना जाना उपयुक्त होगा।

आत्मकथा के लेखन के क्षेत्र में भी भारतेन्दु जी ने 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखकर पहल की थी। ऐसे ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के कई आत्मकथांश 'सरस्वती' के कई अंकों में छपे। श्यामसुन्दर दास कृत 'मेरी आत्म कहानी' इस क्षेत्र में सम्भवत: पहली पुस्तकाकार कृति है। मूलत: गुजराती में लिखी महात्मा गाँधी की आत्मकथा का हिन्दी में अनुवाद बेहद लोकप्रिय हुआ। नेहरू जी की आत्मकथा का हिन्दी में अनुवाद 'मेरी कहानी' भी प्रशंसित रहा।

स्वामी श्रद्धानन्द लिखित 'कल्याण मार्ग का पथिक' एक अच्छी आत्मकथा है। 'कल की बात' नामक कुछ हिन्दी के लेखकों की संक्षिप्त आत्मकथाएँ सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुई है। सेठ गोविन्ददास ने तीन भागों में 'आत्म निरीक्षण' नाम से अलग जीवनी लिखी है। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा मूल रूप में हिन्दी में ही लिखी गई है। इस पर नागरी प्रचारिणी सभा ने 'द्विवेदी पुरस्कार' दिया है। कई और पुरस्कार भी मिले हैं। वास्तव में यह आत्मकथा बहुत सुन्दर है। आचार्य चतुरसेन द्वारा लिखित 'मेरी आत्मकहानी' आत्मकथा की श्रेष्ठ कृति है। इस क्षेत्र में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' उल्लेखनीय कृति है। वृन्दावनलाल वर्मा लिखित 'अपनी कहानी' तथा वियोगी हरि कृत 'मेरा जीवन प्रवाह' अच्छी आत्मकथाएँ हैं। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के तीन भाग प्रकाशित हुए—'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर' और 'बसेरे से दूर'। आत्मकथा के क्षेत्र में बच्चन जी की ये कृतियाँ सर्वाधिक चर्चित रहीं। 'मेरी असफलताएँ' नामक कृति में बाबू गुलाबराय जी के आत्मकथात्मक अंश संकलित हुए हैं। पंत जी का 'साठ वर्ष—एक रेखांकन' भी उल्लेखनीय है।

प्र.11. हिन्दी साहित्य में जीवनी पर लेख लिखिए।

उत्तर

जीवनी

जीवनी में लेखक किसी व्यक्ति का जीवन चरित्र प्रस्तुत करता है। इसमें प्राय: उस व्यक्ति की जन्म से लेकर मृत्यु तक की सभी घटनाएँ होती हैं। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन रहता है। जीवनी न इतिहास है न उपन्यास। पर इन दोनों विधाओं की विशेषताएँ इसमें समाहित हो जाती है।

जीवनी किसी महापुरुष की ही लिखी जाती है। महापुरुषों की जीवनियाँ प्रकाश स्तम्भ की भाँति मार्ग निर्देश करती हैं। जीवनी चरितनायक का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना चाहिए। जीवनी लेखन में तटस्थता का भाव आवश्यक है। जीवनी में सरलता होने से पाठक पढ़ता चलता है और विश्वसनीयता रहने से उसका जीवन अपनाने की चेष्टा करता है।

जीवन में महान ख्याति, सम्मान पाने वालों की जीवनी से परिचित होने की ललक पाठकों में पायी जाती है। पाठकों की इसी ललक को परितोष देने के लिए जीवनी-लेखन का चलन हुआ। प्राचीन हिन्दी साहित्य में गोस्वामी गोकुलनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास की 'भक्तमाल' को जीवनी लेखन का आदि रूप कहा जा सकता है, किन्तु खड़ीबोली गद्य में जीवनी लेखन का प्रारम्भ भारतेन्दु युग में कार्तिक प्रसाद खत्री, देवी प्रसाद मुंसिफ, राधाकृष्णदास से माना जा सकता है। द्विवेदी युग में सुंदरलाल, बल्देव उपाध्याय ने भी इस क्षेत्र में लेखन कार्य किया।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने पं० सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी लिखी है। वह कवि का व्यक्तित्व समझाने में बहुत सहायक हुई है। ब्रजरत्नदास जी ने भारतेन्दु बाबू का बड़ा सुन्दर जीवन-चरित्र लिखा है। हरि रामचन्द्र दिवाकर की लिखी हुई, संत तुकाराम की विचारपूर्ण जीवनी भी अच्छी है। इनके अतिरिक्त गणेशशंकर विद्यार्थी, वीर केसरी शिवाजी, मीर कासिम, महात्माओं के दर्शन आदि कई पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों ने जीवनी साहित्य की आंशिक पूर्ति की है। रामनरेश त्रिपाठी की 'मालवीय जी के साथ तीस दिन' मालवीय जी के श्रीमुख से सुनी हुई उनकी जीवनी है। जीवनी लेखन के इस दौर में मन्मथनाथ गुप्त, मुकन्दीलाल

TOUCH 'n' PASS

वर्मा, छविनाथ पाण्डेय आदि ने अच्छा कार्य किया। निराला पर डॉ० रामविलास शर्मा की लिखी जीवनी साहित्य संसार में सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। विष्णु प्रभाकर कृत शरतचन्द्र चटर्जी पर लिखी 'आवारा मसीहा' तो कीर्ति स्तम्भ मानी जाती है। राही मासूम रजा की शहीद अब्दुल हमीद पर, भगवती प्रसासद सिंह की गोपीनाथ कवि पर, ओंकार शरद की राममनोहर लोहिया पर, शांति जोशी की सुमित्रानंदन पंत पर लिखी जीवनियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। बालोपयोगी जीवनी लिखने के क्षेत्र में श्री व्यथित हृदय का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचन्द की जीवनी–'कलम का सिपाही' भी उल्लेखनीय है।

प्र.12. व्यंग्य से आप क्या समझते हैं?

उत्तर

व्यंग्य

जब कही गई बात का अर्थ कुछ और हो तथा जो किसी विसंगति (यानी जो होना चाहिए, वह न होकर कुछ और हो) पर चोट करता हो—व्यंग्य कहलाता है, जैसे—कहा जाए—"था तो वह एक सरकारी अधिकारी परन्तु काम कर रहा था, वह भी ईमानदारी के साथ।" इसका अर्थ हुआ कि सामान्यत: लोग यह मानते हैं कि सरकारी अधिकारी कोई काम नहीं करते परन्तु यह व्यक्ति इस धारणा को तोड़कर अपना काम ईमानदारी के साथ कर रहा है अर्थात् जैसा माना जाता है उसकी विपरीत दिशा में कार्यरत है।

व्यंग्य में शब्दों की गहरी मार होती है जो ऊपर से नीचे तक व्यक्ति को झकझोर कर रख देती है। व्यंग्य में बात करने का अर्थ है विचारों को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उसका प्रभाव सीधा दिल और दिमाग पर हो, साथ में भिन्न प्रकार की हँसी भी आए और वह हँसी ऐसी करारी चोट पैदा करे कि अगला व्यक्ति तिलमिला कर रह जाए और उस बात पर गहराई से सोचने पर मजबूर हो जाए। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार **श्री कन्हैयालाल नंदन** का कहना है, कि "व्यंग्य का लिखना एक साधना है और व्यंग्य का सहना उससे भी बड़ी साधना है।"

आप अक्सर अखबारों में कार्टून का कोना देखते होंगे। उसमें रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ी किसी-न-किसी घटना को परोक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता है। इसे केवल चित्र न समझकर उस घटना पर टिप्पणी समझनी चाहिए। कार्टून में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित किसी विसंगति या घटना पर कार्टूनिस्ट की दृष्टि छिपी होती है। इसी प्रकार किसी व्यंग्य की विषय-वस्तु सत्य पर आधारित होती है। वह सत्य किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकता है।

व्यंग्य को अंग्रेजी भाषा में 'सटायर' भी कहते हैं जो मूलत: लैटिन भाषा से आया है। इसका अर्थ होता है 'गड़बड़झाला'। गुजराती भाषा में इसे 'कटाक्ष' और उर्दू में 'तंज' कहा जाता है। डॉ० विजय शुक्ल का कहना है कि "व्यंग्य केवल परिहास या मनोरंजन मात्र नहीं है। कुछ और है, जिसे उसका लेखक अपने वैषम्य व बेतरतीब माहौल के बीच पकड़ता है। वह अमृत भी हो सकता है, जहर भी, और कुछ भी जिसे पीकर, अपने आप पर ढालकर, किसी एक संपूर्ण चिंतन का रूप देकर, तब उसे कलात्मक खुशनुमा लिफाफे में रखकर, पाठक के सामने पेश किया जाता है। व्यंग्य मुख्यत: सत्य को सामने लाता है। पाखंड का पर्दाफाश करता है। जीवन की सच्चाई प्रस्तुत करता है। सीधे-सीधे शब्दों का प्रयोग कर अर्थ में चमत्कार पैदा करता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रेमचन्द युग की कहानी पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रेमचन्द युग की कहानी (सन् 1915 से 1936 तक)

हिन्दी कहानी का प्रेमचन्द युग का आरम्भ सन् 1915 ई० से माना जाता है। मुंशी प्रेमचन्द जिस अवधि में कहानियाँ लिख रहे थे उसी अवधि में कई कहानीकारों ने इस विधा को आगे बढ़ाने के लिए अपनी लेखनियाँ उठायी। जिनमें जयशंकर प्रसाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन आदि मुख्य कहानीकार हैं। इसी युग में जिन अन्य कहानीकारों ने हिन्दी कहानी विधा को नई दिशा प्रदान की उनमें श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा, 'कौशिक', आचार्य चतुर सेन शास्त्री, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, श्री शिव पूजन सहाय, श्री वृन्दावन लाल वर्मा, श्री गोपाल राम गहमरी, श्री रायकृष्ण दास, पदुम लाल पुन्नालाल वख्शी, रमाप्रसाद धिल्डियाल पहाड़ी पंडित, ज्वाला प्रसाद शर्मा, श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव आदि का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इन कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुईं, जिससे हिन्दी कहानी के लेखक ही नहीं पाठकों की संख्या में भी वृद्धि हुई, इस युग के जिन मुख्य कहानीकारों की साहित्य सेवा का आंकलन करने के लिए साहित्य के इतिहासकारों ने इन्हें विशेष रूप से सम्मान दिया, वे कहानीकार इस प्रकार हैं—

1. **पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी**—हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकारों में प्रेमचन्द्र युगीन कहानीकार पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का नाम भी बड़े समादर से लिया जाता है। यदि आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से किसी कहानी को हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ

कहानी कहा जाए तो वह है—**उसने कहा था**—यह कहानी यथार्थवादी कहानी है जो एक आदर्श को प्रस्तुत करती है। गुलेरी जी ने इसके अतिरिक्त 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धु का कांटा' दो कहानियाँ और लिखी।

2. **जयशंकर प्रसाद**—प्रेमचन्द युग में ही जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी में कई कहानियाँ लिखी लेकिन इनकी कहानियाँ प्रेमचन्द्र की कहानी शैली से बिल्कुल भिन्न हैं। एक राष्ट्रवादी साहित्यकार होने के कारण इनकी कहानियों में राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रसाद जी ने अधिकांश ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं, जिनकी भाषा संस्कृत निष्ठ, भाव प्रधान, अलंकारिक और काव्यात्मक है। यही नहीं इनकी कहानियों में नाट्य शैली के भी दर्शन होते हैं, इनकी कहानियों में आकाश दीप, पुरस्कार, ममता, इन्द्रजाल, छाया, आँधी, दासी जैसी कहानियाँ आदर्शवादी कहानियाँ हैं तो मधुवा, और गुंडा जैसी कहानियाँ यथार्थवादी कहानी।
3. **मुंशी प्रेमचन्द**—मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी कहानीकार के रूप में संसार के लिए वरदान बनकर आये, इनकी हिन्दी की पहली कहानी पंच परमेश्वर सन् 1915 में प्रकाशित हुई। 'पंच परमेश्वर' प्रेमचन्द जी की एक आदर्शवादी कहानी है जिसमें मनुष्य के अन्दर छिपे दैवत्व के गुणों को उजागार किया गया है। लेकिन इनकी बाद की कहानी यथार्थवादी कहानियाँ हैं जिनमें ग्रामीण और शहरी पददलितों के जीवन में घटने वाली घटनाओं को कहानियों के माध्यम से सार्वजनिक किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं—

   प्रेमचन्द्र, शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे। गरीबों और बेबसों के महत्त्व के प्रचारक थे।

   प्रेमचन्द्र ने अपने युग की सामाजिक बुरी दशा को अपने उपन्यास तथा कहानियों का विषय बनाया। अपने इस कथन साहित्य के माध्याम से प्रेमचन्द्र जी ने स्पष्ट किया था कि हमारे सामाजिक कष्ट के दो ही कारण हैं—एक धार्मिक अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ीवादिता और दूसरा आर्थिक शोषण और राजनीतिक पराधीनता, इनका सारा कथा साहित्य इसी पर केन्द्रीत है। इनकी आरम्भिक कहानियाँ आर्दशवादी कहानियाँ हैं लेकिन धीरे-धीरे इन्होंने यथार्थ से नाता जोड़ा। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के पात्र गरीब, बेबस और दबे-कुचले लोगों को बनाया। इन सबसे अन्दर गुप्त मानवतावाद को एक नया प्रकाश दिया, प्रेमचन्द ने जहाँ अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ीवाद और कुरीतियाँ के दमन के उपाय सुझाए वहाँ राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण के प्रति विद्रोही आवाज उठायी। प्रेमचन्द की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ इनके इसी भावों को प्रदर्शित करती है।

   इनमें मुख्य हैं—'कफन', पूस की रात, शतरंज के खिलाड़ी, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, बड़े भाई साहब, सवा सेर गेहूँ, अलाग्योझा, नमक का दरोगा, पंचपरमेश्वर, ईदगाह, बूढ़ी काकी आदि। इनमें से कुछ यथार्थवादी कहानियाँ हैं तो कुछ आदर्शवादी कहानियाँ।

   भाषा की दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द की भाषा तत्कालीन समाज की बोल चाल की भाषा हैं। जिसे हम लोक भाषा का अनुपम उदाहरण कह सकते हैं। हिन्दी उर्दू शब्दों की यह मिश्रित भाषा वर्तमान में भी उतनी ग्राह्य और भाव बोधक है जितनी कहानियों के लिखे जाते समय थीं।
4. **विश्वम्भर नाथ शर्मा**—प्रेमचन्द के समान ही विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में आदर्श और यथार्थ का समन्वय दिखाई देता है। इनकी कहानियाँ भी घटना प्रधान और वर्णात्मक है। ताई, 'रक्षाबंधन', 'माता का हृदय', कृतज्ञता आदि कहानियों में जहाँ मानवीय भावों की सूक्ष्म व्यंजना हुई है। वहाँ आदर्श के नये रूप के दर्शन होते हैं। श्री कौशिक ने अपने जीवनकाल में तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं, 'मणिमाला', 'चित्रशाला', कल्लौल, कला-मन्दिर, इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।
5. **श्री सुदर्शन**—प्रेमचन्द युगीन कहानिकारों में श्री सुदर्शन का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होंने भी प्रेमचन्द की भाँति अनेक घटना प्रधान कहानियाँ लिखी, इनकी इन कहानियों के पात्र सामान्य कोटि के मजदूर, किसान आदि पात्र हैं जिनका सम्बन्ध ग्रामों और नगरों के सामान्य मध्यमवर्ती मोहल्लों से है। इनकी अनेक कहानियाँ मानवीय संवदनाओं की मार्मिक आर्मव्यक्ति देती है। इनकी कई लोक प्रिय कहानियाँ हैं—जिनमें 'हार की जीत' सलबम, आशीर्वाद, न्याय मंत्री, एथेन्स का सत्यार्थी, कवि का प्रार्यांश्चित, आदि लोकप्रिय कहानियाँ हैं।

   इनकी सभी कहानियाँ पनघट, सुदर्शन सुधा, तीर्थ यात्रा आदि कहानी-संग्रहों में संग्रहित है।

TOUCH 'n' PASS

बाबू गुलाब राय के शब्दों में—प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन, हिन्दी—कहानी साहित्य के प्रेमचन्द स्कूल के वृहद्त्रयी कहलाते हैं—(हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास-बाबू गुलाब राय-पृष्ठ-157)।

प्रेमचन्द के कथा शिल्प और कथ्य को लेकर कहानी लिखने वालों में—वृन्दावनलाल शर्मा—(शरणागत कटा-फटा झंडा, कलाकार का दण्ड जैनावदी वेगम, शेरशाह का न्याय, आदि) आचार्य चतुरसेन की दुखिया में कासे कहू सजनी, सफेद कौआ, सिंहगढ़ विजय, आदि। गोविन्द बल्लभ पंत, सियाराम शरण गुप्त (बैल की बिक्री), भगवती प्रसाद वाजपेयी, मिठाई वाला, निंदियालागी, खाल, बोतल, मैना, ट्रेन पर, हार जीत आदि) रामवृक्ष बेनीपुरी, उषादेवी मित्रा आदि अनेक कहानीकारों की रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हुई।

प्रेमचन्द युगीन कहानियों की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. ये परिमार्जित भाषा वाली कहानियाँ हैं।
2. ये आदर्श और यथार्थ वादी कहानियाँ हैं।
3. ये मानवीय सम्बन्धों का उद्घाटन करने वाली कहानियाँ हैं।
4. ये ग्राम्यजीवन पर प्रकाश डालने वाली कहानियाँ हैं।
5. ये राष्ट्रवादी और देश प्रेम से ओतप्रोत कहानियाँ हैं।
6. ये राजनैतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण में विरुद्ध आवाज उठाने वाली कहानियाँ हैं।
7. ये समाज में व्याप्त रूढ़ीवादी, कुरीतियों और अशिक्षा को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं।

प्र.2. उपन्यास के तत्त्वों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

उपन्यास के तत्त्व

अभी तक आपने उपन्यास के स्वरूप और उसकी विशेषताओं को समझा है। मूल्यांकन की दृष्टि से उपन्यास के कुछ तत्त्व निर्धारित किये गये हैं। तत्त्वों की दृष्टि से विद्वानों ने उपन्यास के छः तत्त्व माने हैं—

1. **कथानक या कथावस्तु**—किसी उपन्यास की मूल कहानी को कथावस्तु कहा जाता है। कथावस्तु तत्त्व उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व हैं। कथा साहित्य में घटनाओं के संगठन को कथावस्तु या कथानक की संज्ञा दी जाती है। जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ घटती रहती है। उपन्यासकार अपने उद्देश्य के अनुसार उनमें एक प्रकार की एकता लाता है और अपनी कल्पना के सहारे इन कथानकों की कल्पना की जाती है।

   कथासूत्र, मुख्य कथानक, प्रासंगिक कथाएँ या अर्न्तकथाएँ, उपकथानक, पत्र, समाचार, लेख तथा डायरी के पन्ने आदि कथानक के उपकरण या संसाधन हैं। जिनका उपन्यासकार अपनी आवश्यकता अनुसार उपयोग करता हैं। अनावश्यक घटनाओं का समावेश कथावस्तु को शिथिल, विकृत और सारहीन बना देता हैं। अतः इस घटना का उदय, विकास और अन्त व्यवस्थित और निश्चित होता हैं। उपन्यास में घटनाक्रम में एकता और संगठन अनिवार्य है यदि इनमें से एक को भी अलग किया तो मूल कथा बिखरी प्रतीत होती है। परन्तु आज के नवीन उपन्यासकारों का मानना है कि सांसारिक जीवन में घटने वाली घटनाओं का कोई भी क्रम नहीं होता, जीवन में घटनाएँ असंबद्ध होकर घटती है इसलिए घटनाओं के प्रवाह को पकड़ा नहीं जा सकता।

   इस विचार से प्रभावित हिन्दी उपन्यासकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'गर्म राख' लक्ष्मीकान्त वर्मा का 'खाली कुर्सी की आत्मकथा', डॉ० धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आदि अनेक उपन्यासों के सामने यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इनमें घटनाओं का क्रम क्या हो? कथानक का चुनाव इतिहास, पुराण, जीवनी, आदि कहीं से भी किया जा सकता है। आज जीवन से सम्बन्धित कथानक को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि उसमें हमारे दैनिक जीवन की स्वाभाविकता रहती हैं। जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण, विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन एवं मानवीय अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति कथानक का गुण हैं। उपन्यास में कथानक को प्रस्तुत करने के तीन ढंग प्रचलित हैं—(1) लेखक तटस्थ दर्शक की भाँति उसका वर्णन करता है। (2) कथावस्तु मुख्य या गौण पात्रों से कहलाई जाती है। (3) पात्रों की शृंखला के रूप में उसका वर्णन होता है। संक्षेप में कह सकते है कि—रोचकता, स्वाभाविकता तथा प्रवाह कथावस्तु के आवश्यक गुण हैं।

TOUCH 'n PASS

2. **चरित्र-चित्रण और पात्र**—कथनाक तत्त्व के पश्चात् उपन्यास का द्वितीय महत्त्वपूर्ण तत्त्व चरित्र-चित्रण अथवा पात्र योजना है। जैसा कि अब आप जानते हैं, उपन्यास का मूल विषय मानव और उसका जीवन होता है। अत: पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार सजीवता, सत्यता और स्वभाविकता के साथ जीवन के इन पहलूओं को समाज के समक्ष रखता है। यो तो उपन्यास के सभी तत्त्व अपना-अपना अलग महत्त्व रखते हैं परन्तु कथानक और पात्र एक-दूसरे की सफलता के लिए अधिक निकट होते हैं। इसलिए इनका पारस्परिक संतुलन अनिवार्य हो जाता है। कथावस्तु के अनुरूप पात्र का चयन होना आवश्यक हैं। इतना ही नहीं वह जिस वर्ग के पात्र का चयन करता है, उसके आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व की सामान्य और सूक्ष्म विशेषताओं, उसकी आकृति, वेशभूषा, वार्तालाप और भाषा-शैली आदि कथावस्तु के अनुरूप होना आवश्यक हैं। अन्यथा दोनों का विरोध रचना को असफल कर देता हैं। इस युग में पात्र सम्बन्धी प्राचीन और नवीन धारणा में पर्याप्त अन्तर आया है। पहले मुख्य पात्र नायक और नायिका पर विशेष बल दिया जाता था। आज अन्य पात्रों को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसका कारण मनोविज्ञान का क्रान्तिकारी अन्वेषण है।

   आज पात्रों के बाहरी और भीतरी व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है जिससे उनके चरित्र में अधिक स्वाभाविकता और यथार्थता आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त आज पात्रों को कठपुतली बनाकर नहीं बल्कि उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पात्रों के चार प्रकार हैं—(1) वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि (टाइप) (2) विशिष्ट व्यक्तित्व वाले (3) आदर्शवादी (4)यथार्थवादी। इसे इस प्रकार समझ सकते हैं—प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' का 'होरी' पहले प्रकार का पात्र है क्योंकि वह एक विशेष वर्ग को दर्शा रहा है। जबकि 'अज्ञेय' के उपन्यास 'शेखर एक जीवन' का शेखर दूसरे प्रकार का पात्र यानि विशिष्टता लिए हुए है। आज वही उपन्यास श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिनके पात्र जीवन की यर्थाथ स्थिति का संवेदनशील और प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण करते हैं।
3. **कथोपकथन**—उपन्यास में यह कथावस्तु के विकास तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होता है। इससे कथावस्तु में नाटकीयता और सजीवता आ जाती है। पात्रों की आन्तरिक मनोवृत्तियों के स्पष्टीकरण में भी यह सहायक होता है। इसका विधान पात्रों के चरित्र, स्वभाव, देश, स्थिति, शिक्षा, अशिक्षा, आदि के अनुसार होना चाहिए। पात्रों के वार्तालाप में स्वाभाविकता का होना अत्यन्त आवश्यक हैं।
4. **देशकाल वातावरण**—पात्रों के चित्रण को पूर्णता और स्वाभाविकता देने के लिए देशकाल या वातावरण का ध्यान रखना जरूरी है। घटना का स्थान समय, तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान उपन्यासकार के लिए आवश्यक है। ऐतिहासिक उपन्यासों का तो यह प्राण तत्त्व है। उदाहरणार्थ यदि कोई लेखक चन्द्रगुप्त और चाणक्य को सूट-बूट में चित्रित करे तो उसकी मूर्खता और ऐतिहासिक अज्ञानता का परिचय होगा और रचना हास्यास्पद हो जाएगी। देशकाल-वातावरण का वर्णन सन्तुलित होना चाहिए, जहाँ तक वह कथा-प्रभाव में आवश्यक हो तथा पाठक को वह काल्पनिक न होकर यर्थाथ लगे। अनावश्यक अंशों की प्रधानता नहीं होनी चाहिए।
5. **भाषा-शैली**—उपन्यास को अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए सरस और सरल भाषा शैली का प्रयोग करना चाहिए। सम्पूर्ण उपन्यास की रचना-शैली एक सी है। प्रारम्भिक सभी उपन्यास रूढ़िगत शैली में ही लिखे गये। तृतीय पुरुष के रूप में वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग प्राय: अधिकांश उपन्यासों में किया गया है।

   बाद में कलात्मक प्रयोगों के फलस्वरूप उपन्यासों में जब विकास हुआ तो सबसे अधिक प्रयोग शैली में उपन्यास लिखे गये। किन्तु धीरे-धीरे कथावस्तु में परिवर्तन से आधुनिक साहित्य की नव विधाओं में शैली तत्त्व का महत्त्व अधिक होने लगा, और सामान्य रूप से कथा शैली-जैसे प्रेमचन्द की रंगभूमि; आत्मकथा शैली-जैसे इलाचन्द जोशी की 'घृणामयी'; पत्र शैली जैसे उग्र का 'चन्द हसीनो के खतूत'; डायरी शैली जैसे 'शोषित दर्पण' प्रचलित हो गई। इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, फ्लैशबैक शैली, नाटकीय शैली, लोक कथात्मक शैली, कथोपकथन शैली, आदि प्रयोग आधुनिक युगीन उपन्यासों में किया जाता हैं।
6. **उद्देश्य**—उपन्यास में उद्देश्य या बीज से तात्पर्य-जीवन की व्याख्या अथवा आलोचना से है। प्राचीन काल में उपन्यास की रचना के प्राय: दो मूल उद्देश्य हुआ करते थे-एक तो उपदेश की वृत्ति, जिसके अन्तर्गत नैतिक शिक्षा प्रदान करना था और दूसरा केवल मनोरंजन, जिसका आधार कौतूहल अथवा कल्पना हुआ करता था। आज उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण होता है। इसलिए उपन्यासकार, जीवन के साधारण और असाधारण व्यापारों का मानव-जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका आकलन करता हैं। अत: सभी उपन्यासों में कुछ विशेष विचार और सिद्धान्त स्वत: ही आ जाते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. कल्पनाश्रित युग के नाटकों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

कल्पनाश्रित युग के नाटकों के प्रकार

इस युग के कल्पना पर आश्रित नाटकों को उनकी मूल प्रवत्ति के अनुसार तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। 1. समस्याप्रधान नाटक, 2. भाव प्रधान नाटक तथा 3. प्रतीकात्मक नाटक।

1. समस्याप्रधान नाटक

समस्याप्रधान नाटकों को प्रचलन में लाने का श्रेय इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों को है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यथार्थवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बुद्धि की दृष्टि से खोजा जाता है। इनमें यौन समस्याओं को ही ग्रहण किया गया है। बाह्य द्वंद्व की अपेक्षा आंतरिक द्वंद्व को अधिक प्रदर्शित किया गया है। स्वागत-भाषण, गीत, काव्यात्मकता आदि का इनमें त्याग कर दिया गया है। विषयवस्तु की दृष्टि से इन्हें भी दो उपभेदों में बाँटा जा सकता है—

(i) **मनोवैज्ञानिक नाटक**—मनोवैज्ञानिक नाटकों में मुख्य रूप से काम सम्बन्धी समस्याओं का विश्लेषण यौन-विज्ञान तथा मनोविश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक इसी कोटि के है।

(ii) **सामाजिक नाटक**—वर्तमान युग एवं समाज की विभिन्न समस्याओं का समाधान आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। इस वर्ग के नाटककारों में सेठ गोविंद दास, उपेंद्र नाथ अश्क, वंदावन लाल शर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी तथा गोविंद वल्लभ पंत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस विधा के प्रमुख लेखकों का वर्णन निम्न प्रकार है—

लक्ष्मी नारायण मिश्र—लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनेक समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' 1931 'राक्षस मंन्दिर' 1931, 'मुक्ति का रहस्य', 1932, 'राजयोग' 1934, 'सिंदूर की होली' 1934, 'आधी रात' 1937 आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं। मिश्र के इन नाटकों में बुद्धि, यथार्थ एवं फ्रायड को प्रधानता दी गई है। इब्सन, बर्नाडसा आदि पाश्चात्य नाटककारों की तरह इन्होंने भी जीवन के प्रति विशुद्ध बौद्धिक दृष्टि अपनाई है तथा पूर्ववर्ती रोमांटिक या रूमानी प्रवृत्ति का विरोध किया है। इनके अधिकांश नाटकों में यौन समस्याओं एवं काम समस्याओं को ही सबसे अधिक नाटक का विषय बनाकर उसे महत्त्व प्रदान किया है।

सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में उपेन्द्र नाथ अश्क, वंदावन लाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, आदि का विशेष स्थान है। गोविंद दास ने ऐतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने अनेक नाटकों में किया है जिनमें 'कुलीनता' 1940 'सेवा पथ' 1940, 'दुख क्यों?' 1946 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' 1938, 'त्याग या ग्रहण' 1943 'संतोष कहाँ' 1945 'पाकिस्तान' 1946, 'महत्त्व किसे' 1946, 'गरीबी और अमीरी' 1946 तथा 'बड़ा पापी कौन' 1948 आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। सेठ ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक राष्ट्रीय समस्याओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—'अश्क' ऐसे नाटककार हैं जिनमें न तो विशुद्ध यथार्थवाद है न ही आदर्शवाद। उनके नाटक यथार्थ आदर्श के मध्य की कड़ी हैं। प्रेमचंद के समान इन्हें भी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कहा जा सकता है। इनकी भावभूमि यथार्थ है जो आदर्श अपनाए हुए हैं। उन्होंने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण जहाँ यथार्थ के स्तर पर किया है वहीं उनकी सुधार या क्रांतिकारी नीति उन्हें आदर्शवादी बना देती है। उनके नाटकों में प्रमुख नाटक 'स्वर्ग की झलक' 1939, 'कैद' 1945, 'उड़ान' 1949, 'छठा बेटा' 1949 तथा 'अलग-अलग रास्ते' 1955 आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने अपने नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वतन्त्रता, विवाह समस्या, संयुक्त परिवार आदि से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक दृष्टिकोण से करारा व्यंग्य किया है। अनेक नाटकों में उन्होंने समाज की वर्तमान स्वार्थपरता, धनलोलुपता, कामुकता, अनैतिकता आदि का यथार्थवादी शैली में चित्रण किया है। अश्क की सर्वप्रमुख नाट्य विशेषता यह है कि वे समस्याओं और समाधानों का प्रस्तुतीकरण उपदेशात्मक प्रणाली या अति गंभीरता से नहीं करते हैं। अपितु वे इसके लिए हास्य व्यंग्यात्मक शैली का चयन करते हैं। जिससे उनके प्रभाव में अधिक तीव्रता एवं तिखाई आ जाती है। रंगमंच एवं नाट्य शैली की दृष्टि से 'अश्क' अतुलनीय है।

TOUCH 'n PASS

वंदावन लाल वर्मा—वंदावन लाल वर्मा का जो स्थान ऐतिहासिक उपन्यासकारों में है वही स्थान सामाजिक नाटकों में है। इस क्षेत्र में इनको अपूर्व सफलता मिली है। इस वर्ग के इनके नाटकों में 'राखी की लाज' 1943, 'बांस की फांस' 1947, 'खिलौने की खोज' 1950, 'नीलकंठ' 1951, 'सगुन' 1951, 'विस्तार, 1956 तथा 'देखा देखी' 1956 आदि प्रमुख हैं। वर्मा ने इन नाटकों में छुआछूत, विवाह, जाति पांति, ऊँच नीच, सामाजिक विषमता तथा नेताओं की स्वार्थ परता आदि से सम्बन्धित विभिन्न प्रवृत्तियों तथा समस्याओं का चित्रांकन किया है।

गोविंद वल्लभ पंत—गोविंद वल्लभ पंत के सामाजिक नाटकों में 'अंगूर की बेटी' 1936 तथा 'सिंदूर की बिंदी' आदि प्रमुख नाटक हैं। 'अंगूर की बेटी' जैसा कि नाम से ज्ञात हो जाता है अंगूर से जन्मी अर्थात् शराब पीने की भयंकरता से अवगत कराते हुए इस व्यवसन से मुक्ति पाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। 'सिंदूर की बिंदी' विवाहिता नारी के सुहाग का प्रतीक हैं। परित्यक्ता का यह सौभाग्य छिन जाता है कि उसे अनेक भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास उन्हीं समस्याओं, सहानुभूतिमय ढंगों से प्रस्तुत किया गया है। पंत के नाटकों में सर्वत्र समाज सुधार की भावना दृष्टिगोचर होती है। कथा की प्रस्तुति इस ढंग से की जाती है कि उसमें रोचकता या कलात्मकता का अभाव नहीं आने पाता।

पृथ्वी नाथ शर्मा—पृथ्वी नाथ शर्मा के नाटकों में 'दुविधा', 'शाप', 'अपराधी' 1939, तथा 'साध' 1944 आदि नाटकों की प्रमुखता है। जिसमें उन्मुक्त प्रेम, विवाह तथा सामाजिक न्याय से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों को प्रस्तुत किया गया है। 'दुविधा' की नायिका स्वच्छंद प्रेम एवं विवाह में से किसी एक का चयन की दुविधा से ग्रस्त दिखाई गई है। यही समस्या 'साण' में भी प्रस्तुत की गई है। इस दृष्टि से पृथ्वी नाथ शर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र के निकटस्थ हो जाते हैं। किन्तु अंतर इतना है कि इनका दृष्टिकोण मिश्र की तरह अति भौतिकतावादी और अति यथार्थवादी नहीं है।

2. भावप्रधान नाटक

कल्पनाश्रित नाटकों का दूसरा वर्ग भाव प्रधान नाटकों का है। शैली की दृष्टि से इस वर्ग को गीति नाटक नाम से भी अभिहित किया गया है। इस वर्ग के नाटकों के लिए भाव की प्रमुखता के साथ-साथ पद्य का माध्यम भी अपेक्षित होता है। आधुनिक युग में रचित हिन्दी का प्रथम गीति नाटक जय शंकर प्रसाद द्वारा रचित 'करुणालय' (सन् 1912 ई०) माना गया है। इसमें पौराणिक आधार पर राजा हरिश्चन्द्र तथा शन: शेष की बलि की कथन का वर्णन किया गया है। प्रसाद के पश्चात् लंबे समय तक गीति नाटकों के क्षेत्र में कोई प्रयास तथा प्रगति नहीं हुई। परवर्ती युग में अनेक गीति नाटकों की रचना हुई। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त—'अनध'—1925, हरिकृष्ण प्रेमी—'स्वर्ण विहान', उदयशंकर भट्ट मत्सयगंधा, विश्वामित्र तथा राधा आदि, सेठ गोविंद दास स्नेह या स्वर्ग—1946 भगवती चरण वर्मा 'तारा' आदि। भाव प्रधान नाटकों के क्षेत्र में सबसे अधिक सफल उदयशंकर भट्ट रहे हैं। उन्होंने अपने पात्रों की विभिन्न भावनाओं एवं उनके अंतर्द्वन्द्व को अत्यधिक सशक्त एवं संगीतात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। इनमें पात्रों के वार्तालाप भी प्राय: लय और संगीत से परिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत 'रजत शिखर' धर्मवीर भारती 'अंधा युग' आदि उल्लेखनीय हैं।

3. प्रतीकात्मक नाटक

प्रतीकात्मक या प्रतीकवाद नाटकों का श्रीगणेश जयशंकर प्रसाद के नाटक 'कामना' (सन 1926 ई०) से हुआ। सुमित्रानंदन पंत—'ज्योत्सना' 1934, भगवती प्रसाद वाजपेयी, 'छलना' 1939, सेठ गोविंददास 'नव रस', कुमार हृदय 'नक्शे का रंग' 1941, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल 'मादा कैक्टस' एवं 'सुन्दर रस' 1959 आदि सुन्दर प्रतकात्मक नाटक हैं। इस वर्ग के नाटकों में विभिन्न पात्र विभिन्न विचारों या तत्त्वों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं—

(i) **सांस्कृतिक**—सांस्कृतिक चेतना से युक्त नाटकों का निर्माण इस युग में हुआ जिसमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—'अशोक' एवं 'सेवा', 'सेठ गोविंद दास'—'शशिगुप्त', उदयशंकर भट्टा 'मुक्तिपथ', सियाराम शरण गुप्त—'पुण्य पाप', लक्ष्मीनारायण मिश्र—'गरुण ध्वज' तथा गोविंद वल्लभ पंत—'अंत: पुर का छिद्र' आदि उल्लेखनीय हैं। इतिहास के आधार पर इनके कथानक का निर्माण किया गया है। लेकिन सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना सब में विद्यमान है। इनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान चेतना की तुलना करने में प्रसाद से बहुत अधिक सभ्य दिखलाई पड़ती है। अंतर इतना है कि प्रसाद में भावुकता, दार्शनिकता भाषागत जटिलता थी किन्तु इन नाटकों में जटिलता नहीं है।

TOUCH 'n PASS

(ii) **समस्यात्मक**—पाश्चात्य नाटककारों मुख्य रूप से इब्सन एवं बर्नाडसा की यथार्थवादी चेतना से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में नाटक लिखने वालों ने समस्यात्मक नाटक लिखने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फ्रायड ने मानों यह घोषणा कर दी थी कि मानव की व्यापक एवं प्रमुख समस्या काम समस्या है। किंचित इसी घोषणा से प्रभावित होकर समस्या नाटकों में यौन समस्या को मुख्य रूप से उभारा गया तथा वासना या काम भावना का प्रमुखता के साथ वर्णन किया गया। वैयक्तिक समस्याओं, उलझनों, मानसिक अंतर्द्वन्द्वों का विवेचन एवं विश्लेषण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। हिन्दी में समस्या नाटक लिखने का श्रेय लक्ष्मी नारायण मिश्र को है। वही समस्या नाटकों के अधिष्ठाता एवं संस्थापक हैं। इस प्रकार परंपरा का श्रीगणेश उन्होंने 'सन्यासी' नामक समस्या नाटक लिखकर किया। उनके अन्य समस्या नाटक 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', तथा 'आधी रात' आदि प्रमुख हैं। इन नाटकों में बौद्धिकता एवं यथार्थवाद का आधिक्य है। प्रेम विवाह एवं काम समस्याओं का चित्रण निडरता से किया गया है। भावुकतावादी रोमांस के मिश्र विरोधी हैं। मिश्र के प्रयासों से नाटक विश्व में नवीनता का समावेश एवं व्यापक प्रयोग किया है।

(iii) **सामाजिक एवं राजनीतिक**—इस युग में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को अनेक नाटकों में आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है। इस दृष्टि से सेठ गोविंददास, उपेंद्रनाथ अश्क, वंदावन लाल वर्मा आदि का योगदान महत्त्वपूर्ण है। गोविंददास के नाटकों में सिद्धांत स्वातंत्र्य, 'सेवा पथ', 'महत्त्व किसे', 'संतोष कहाँ' तथा 'गरीबी और अमीरी' आदि में सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों में 'स्वर्ग की झलक', 'कैद', 'उड़ान', 'छठा बेटा' आदि उल्लेखनीय हैं। 'स्वर्ग की झलक' में नारी-शिक्षा की समस्या को व्यंग्य के माध्यम से उभारा गया है। 'छठा बेटा' स्वप्न नाटक है जिसके द्वारा यह प्रदर्शित करने का यत्न किया गया है कि मानव अपनी जिन इच्छाओं की पूर्ति जाग्रतावस्था में पूर्ण नहीं कर पाता स्वप्न अर्थात् अर्द्ध निंद्रा में उन कामनाओं की पूर्ति की प्रबल कामना करता है। अश्क के नाटकों में नारी शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य, वैवाहिक समस्या तथा संयुक्त परिवार से संबद्ध अनेक सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण करके मानव को उनसे मुक्ति प्राप्त करने हेतु चिंतन के लिए बाध्य कर दिया गया है। मंचन की दृष्टि से अश्क के नाटक सफल हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को आधार रूप में ग्रहण करके कुछ नाटकों की भी रचना हुई है। जिनमें वंदावन लाल शर्मा कृत 'धीरे-धीरे', 'राखी लाज', एवं 'बांस की फांस'। गोविंद वल्लभ पंत कृत 'अंगूर की बेटी', 'सिंदूर की बिंदी', पृथ्वी नाथ शर्मा कृत 'अपराधी एवं साधु' तथा उदय शंकर भट्ट कृत 'कमला' एवं 'क्रांतिकारी' आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में भिन्न-भिन्न परिवेशों एवं समस्याओं का सफल चित्रांकन हुआ है।

इनके अतिरिक्त इस युग में नीति नाटक, एवं एकांकी नाटक भी लिखे गए हैं। डॉ० राम कुमार वर्मा—'स्वप्न चित्र' तथा भगवती चरण वर्मा—'वासवदत्त' का चित्रलेख प्रमुख है।

प्र.4. एकांकी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसके विकास क्रम पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

एकांकी की अवधारणा

एकांकी गद्य की लोकप्रिय विधा है। एकांकी एक अंक का नाटक होता है। आज के व्यस्त जीवन में मानव कम-से-कम समय में मनोरंजन चाहता है। अत; साहित्य ऐसी विधा की कामना करता है जो अपने लघु कलेवर द्वारा मानव की ज्ञान पिपासा और मनोरंजन की भूख को शांत कर सके। एकांकी इस लक्ष्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। हिन्दी में एकांकी विधा का सूत्रपात भारतेन्दु युग से माना जाता है, यद्यपि जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी होने का गौरव प्राप्त है, किन्तु आधुनिक एकांकी का जनक डॉ० रामकुमार वर्मा को माना जाता है।

एकांकी न तो नाटक का संक्षिप्त रूप है न वह नाटक का एक अंक है। यह स्वयं में पूर्ण रचना है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार—"एकांकी में एक ही घटना होती है, वह नाटकीय कौशल से कौतूहल का संचार करते हुए चरम सीमा तक पहुँचती है। उसमें कोई गौण प्रसंग नहीं रहता है। पात्र सीमित होते हैं। कथा-वस्तु भी स्पष्ट और कौतूहल से युक्त रहती है; इसमें विस्तार के लिए अवकाश नहीं होता।"

प्रसाद के बाद एकांकी के क्षेत्र में डॉ० रामकुमार वर्मा का पदार्पण हुआ। 'बादल की मृत्यु' नामक एकांकी 'एक घूँट' नामक एकांकी के समकक्ष माना जाता है। कतिपय विद्वान सन् 1935 में प्रकाशित भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' नामक एकांकी को प्रथम एकांकी की श्रेणी में रखते हैं। विगत अनेक सालों से हिन्दी का एकांकी कलेवर अपने युग के अनुरूप परिवर्तित होता रहा है।

TOUCH 'n' PASS

साठ-पैसठ वर्षों में एकांकीकारों ने पारिवारिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर अंकित किया है। रेडियो रूपक के रूप में भी एकांकी को नवीन दिशा प्राप्त हुई है।

1. **एकांकी उद्‌भव और विकास**—हिन्दी एकांकी का मूल स्रोत है संस्कृत नाटकों में एक अंक वाले व्यायोग, प्रहसन, वीथी, गोष्ठी, नाटिका आदि। वर्तमान हिन्दी एकांकी के स्वरूप में विद्वानों का मत है कि इस पर पाश्चात्य परंपरा का प्रभाव विद्यमान है यद्यपि प्राचीन भारत में एकांकी जैसी रचनाओं की विकसित परंपरा विद्यमान थी अर्थात् एकांकी की आत्मा भारतीय है और कलेवर पाश्चात्य। आधुनिक एकांकी संस्कृत और पाश्चात्य एकांकी के मध्य दोनों के न्यूनाधिक प्रभाव से युक्त है।
2. **हिन्दी एकांकी का विकास क्रम**—हिन्दी एकांकी का विकास क्रम निम्न प्रकार है—
   (i) **भारतेन्दु-द्विवेदी युग (1875 से 1928)**—भारतेन्दु युग एकांकी के विकास की प्रारम्भिक अवस्था का द्योतक है। भारतेन्दु प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875) से हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ माना जा सकता है। इस युग के एकांकीकारों ने समाज में प्रचलित प्राचीन परम्पराओं, कुप्रथाओं पर सामाजिक समस्या प्रधान एकांकी लिखे। जिसमें सामाजिक कुरीतियों पर हास्य-व्यंग्यपूर्ण प्रहार है साथ ही सामाजिक नवनिर्माण के लिए समाज को प्रेरित एवं जाग्रत करने का मंत्र भी। इस काल की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं—भारतेन्दु कृत 'भारत जननी', राधाचरण गोस्वामी कृत 'भारत माता', 'अमर सिंह राठौर' और राधाकृष्ण दास कृत द्वारा 'महारानी पद्मावती'।
   (ii) **प्रसाद युग (1929 से 1937)**—जयशंकर प्रसाद के एकांकी 'एक घूँट' से एकांकी का आरम्भ माना जाता है। भारतेन्दु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली तो उसे पल्लवित पुष्पित करने का कार्य प्रसाद जी ने किया। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखी। पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों की प्रेरणा एवं प्रभाव के बावजूद एकांकी भारतीय मानव जीवन के अधिक निकट है।
   इस युग के एकांकी में रंगमंचीयता, संवादों में सजीवता, संक्षिप्तता एवं मार्मिकता देखने को मिलती है। तत्कालीन समाज की विकृतियों का चित्रण करने वाली एकांकियों की रचना हुई। प्रमुख कृतियाँ हैं—हरिकृष्ण शर्मा का—'बुढ़ऊ का ब्याह', जी०पी० श्रीवास्तव का—'गड़बड़झाला' सेठ गोविन्ददास का—'सूखे संतरे', 'हंगर-स्ट्राइक' आदि।
   (iii) **प्रसादोत्तर युग (1938 से 1947)**—इस काल में एकांकी का यथार्थ वादी रूप उभरकर सामने आया। युद्ध की विभीषिका, बंगाल का अकाल, आजादी की जंग ने चिंतन और कला को प्रभावित किया। एकांकी भी अछूता न थी। शिल्प विधान के आडम्बर से बाहर निकलकर एकांकी में संकलन त्रय अनिवार्य होता गया। प्रमुख एकांकी एवं एकांकीकार हैं—डॉ० रामकुमार वर्मा—'दस मिनट', 'स्वर्ग का तारा'; उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का—'चरवाहे', 'सूखी डाली'; भुवनेश्वर का—'विडम्बना', 'स्ट्राइक'; जगदीश चन्द्र माथुर का—'भोर का तारा', 'खंडहर'; हरिकृष्ण प्रेमी का—'निष्ठुर न्याय' इत्यादि।
   (iv) **स्वातन्त्र्योत्तर युग (1948 से अब तक)**—इस युग एकांकी पर रेडियो का गहरा प्रभाव है। इस युग के एकांकीकारों का दृष्टिकोण बुद्धिवादी प्रगतिशील तत्त्वों से प्रभावित रहा। इनकी रचनाओं में पूँजीवाद विरोध, वर्ग-संघर्ष, सड़ी-गली रूढ़ियों के प्रति अनास्था कृषक एवं मजदूर की दयनीय स्थिति के प्रति असंतोष और सुधारवादी दृष्टिकोण मिलता है। **प्रमुख एकांकी एवं एकांकीकार**—विष्णु प्रभाकर—बन्धन मुक्त, वापसी, हब्बा के बाद; **प्रेमनारायण टंडन**— अजातशत्रु; **उपेन्द्रनाथ अश्क**—अधिकार का रक्षक, सूखी डाली, पापी; **डॉ० रामकुमार वर्मा**—रेशमी टाई, पृथ्वीराज की आँखें, दीपदान, चारुमित्रा; **उदयशंकर भट्ट**—नये मेहमान, नकली और असली; **सेठ गोविन्ददास**—केरल का सुदामा; **भगवतीचरण वर्मा**—सबसे बड़ा आदमी, दो कलाकार; **भुवनेश्वर प्रसाद**—ऊसर, कारवाँ; **जगदीशचन्द्र माथुर**—रीढ़ की हड्डी, भोर का तारा; **अन्य एकांकीकार**—लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दवनलाल वर्मा, विनोद रस्तोगी, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, हरिकृष्ण प्रेमी आदि।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. हिन्दी गद्य साहित्य में आलोचना से आप क्या समझते हैं? इसके विकास क्रम का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

हिन्दी गद्य साहित्य में आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी भी साहित्यिक रचना को अच्छी तरह देखना या परखना, उसके गुण-दोषों का निर्णय करना। आलोचना को समालोचना भी कहते हैं। समीक्षा शब्द भी इसके लिए प्रयोग में लाया जाता है।

आलोचना एक विचार प्रधान गद्य विधा है। जब साहित्य या साहित्यकार का विवेचन इस प्रकार किया जाए कि पाठक उस रचना के विभिन्न पक्षों से परिचित हो सके, उसके गुण-दोषों को समझ सके तथा रचनाकार की दृष्टि को भी जान सके तो यह आलोचना या समालोचना कहलाएगी।

साहित्य की आलोचना लिखने वाले या आलोचना करने वाले मर्मज्ञ व्यक्ति को आलोचक, समालोचक या समीक्षक कहा जाता है। साहित्यिक आलोचना का मुख्य उद्देश्य है किसी साहित्य की उपलब्धियों पर विचार, किसी एक रचना के गुण और दोष का विवेचन, कवियों या रचनाकारों की अलग-अलग विशेषताओं का वर्णन तथा रचना का आकलन या उसका मूल्यांकन करना।

आलोचना के भेद—आलोचना दो प्रकार की होती है—निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक। पद्धति के आधार पर आलोचना के कई प्रकार हो सकते हैं—प्रभाववादी आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना।

हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास

भारतवर्ष में राजशेखर ने अपनी 'काव्य मीमांसा' में समीक्षा या आलोचना का वास्तविक सूत्रपात किया और औचित्यवादियों ने उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। रीतिकाल में टीकारूप में आलोचना का रूप देखने को मिलता है। किन्तु हिन्दी में आलोचना का वास्तविक प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' से ही मानना समीचीन होगा। हिन्दी आलोचना के विकास क्रम को हम निम्न सोपानों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

1. **भारतेन्दु युग (1870 से 1900)**—भारतेन्दु युग में आलोचना का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। 'हिन्दी प्रदीप' में गंभीर आलोचना का प्रकाशन हुआ। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'आनन्द कादम्बनी' पत्रिका (1882) में 'संयोगिता स्वयंवर' के नाट्य दोष का विवेचन। और 'बंग-विजेता' के भाषा सम्बन्धी दोषों की ओर निर्देश कर हिन्दी में आलोचना की नींव रखी। यद्यपि दोष दर्शन ही इस आलोचना के केन्द्र में था। इसके बाद बालकृष्ण भट्ट ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। भट्ट जी की 'नील देवी, ''परीक्षा गुरु'', एकान्तवासी योगी' सम्बन्धी आलोचना महत्त्वपूर्ण है।
   नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) के प्रकाशन से समालोचना को नया बल मिला। भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया किन्तु सूक्ष्म काव्य-सौन्दर्य और रचना में निहित जीवन मूल्यों की समीक्षा का रूप देखने को नहीं मिलता।
2. **द्विवेदी युग (1900 से 1920)**—इस युग के हिन्दी आलोचना की कई महत्त्वपूर्ण पद्धतियाँ प्रचलित हुईं। आलोचना के पाँच रूप लक्षित किए जा सकते हैं—शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक, मूल्यांकन एवं निर्णय, अन्वेषण एवं अनुसंधान परक, परिचयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना। शास्त्रीय आलोचना की प्रमुख कृति जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' की—काव्य प्रभाकर (1910), 'छन्द सारावली'' (1917)। इसकी भूमिका अंग्रेजी में लिखी गई और हिन्दी में अनेक पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी दिए गए।
   इस युग में तुलनात्मक मूल्यांकन समीक्षा की प्रमुखता रही। 1907 ई० में पद्मसिंह शर्मा ने आलोचना को प्रारम्भ किया। अन्वेषणपूरक आलोचना का प्रारम्भ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) के प्रकाशन से हुआ। इस युग में आलोचनात्मक कृतियों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए गए। 1905 में रामचन्द्र शुक्ल ने एडिसन के 'एस्से ऑन इमेजिनेशन' का 'कल्पना का आनन्द' नाम से अनुवाद किया जो उल्लेखनीय कृति है।
   इस युग में आलोचना एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्य हुई।
3. **शुक्ल युग (1921 से 1940)**—महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके समकालीन समीक्षकों द्वारा आरम्भ किए गए आलोचना साहित्य को सम्यक् आकार देने का श्रेय तत्कालीन समालोचकों विशेषकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जाता है। आज आलोचना हिन्दी साहित्य की आवश्यकता बन गई।
   आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी आलोचना में प्रमुखत: दो काम किए। एक प्राचीन काव्यशास्त्र की पुनर्व्याख्या करके उसे फिर से रचनात्मकता के लिए संदर्भवान बनाया। दूसरे अपनी व्यावहारिक आलोचना की प्रक्रिया में उन्होंने अनेक

TOUCH 'n PASS

आलोचना सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों को नई अर्थवत्ता से युक्त किया। अनेक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया। रस विवेचना को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस दृष्टि से 'रस-मीमांसा' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अलावा इस युग के प्रमुख आलोचक हैं—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, बाबू गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, चन्द्रबली पाण्डेय, कृष्ण शंकर शुक्ल, रमाशंकर 'रसाल' आदि हैं।

4. **शुक्लोत्तर युग (1941 से अद्यतन)**—शुक्लोत्तर आलोचना सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में सम्पन्न हुई। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी से प्रभावित होने के बावजूद समीक्षा कार्य में अपनी मौलिक और स्वतन्त्र दृष्टि का परिचय दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नवीन मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की। डॉ० नगेन्द्र ने रसवादी समीक्षा की। स्वतंत्रतापूर्व की समीक्षा पद्धति का अधिक विकसित एवं बहुमुखी रूप स्वातन्त्र्योत्तर युग में देखने को मिलता है। स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी आलोचना का विषय प्रधानत: प्रगतिशील और व्यक्तिवादी आलोचना के द्वन्द्व से हुआ इस प्रकार की आलोचना 'अज्ञेय', लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, डॉ० धर्मवीर भारतीय आदि के लेखों में मिलती है। प्रगतिशील आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, डॉ० रामविलास शर्मा एवं डॉ० नामवर सिंह प्रमुख हैं। डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी, डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय, राममूर्ति त्रिपाठी आदि अन्य उल्लेखनीय आलोचक हैं।

प्र.6. निबन्ध से क्या तात्पर्य है? हिन्दी गद्य साहित्य में इसके विकास क्रम का विवरण दीजिए।

उत्तर

निबन्ध

'निबन्ध' शब्द नि+बन्ध से बना है, जिसका अर्थ अच्छी तरह बँधी हुई परिमार्जित प्रौढ़रचना से है। निबन्ध अपने आधुनिक रूप में 'ऐसे (ESSAY)' शब्द का पर्याय है। अंग्रेजी में इसका अर्थ है प्रत्य, प्रयोग अथवा परीक्षण। अभिप्राय यह है कि किसी विषय का भली-भाँति प्रतिपादन करना या परीक्षण करना निबन्ध कहा जाता है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार—'निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं, जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।'

डॉ० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय—'निबन्ध से तात्पर्य सच्चे साहित्यिक निबन्धों से है, जिनमें लेखक अपने-आपको प्रकट करता है विषय को नहीं। विषय तो केवल बहाना मात्र होता है।'

निबन्ध गद्य की सर्वोत्तम विधा है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'—'संस्कृत की इस प्रसिद्ध उक्ति का विस्तार कर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा—''यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।'' गद्यकार की रचनात्मक क्षमता एवं प्रतिभा की पहचान निबन्ध रचना से ही संभव है। 'निबन्ध' का अभिप्राय है 'किसी वस्तु को सम्यक् रूप से बाँधना।' अर्थात् 'निबन्ध' वह रचना है जिसमें किसी विशिष्ट विषय से सम्बन्धित तर्क संगत विचार परस्पर गुँथे हुए हों।

निबन्ध का उद्भव और विकास

निबन्ध भी गद्य साहित्य की विविध विधाओं की भाँति आधुनिक युग की ही देन है। जिसमें भारतेन्दु जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके विकास क्रम को चार सोपानों में विभक्त कर सकते हैं—

1. **भारतेन्दु युग (1868 से 1900)**—हिन्दी निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से होता है। 'लेवी प्राण लेवी' (1870) नामक रचना से निबन्ध-लेखन की शुरुआत मानी जाती है। भारतेन्दु ने ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्र यथा इतिहास, धर्म, दर्शन, पुरातत्व आदि विषयों पर निबन्ध लिखे। इस युग के अन्य प्रमुख निबन्धकार थे—पं० प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि। इन निबन्धकारों का उद्देश्य, उपदेश, उद्बोधन, आह्वान, व्याख्या, व्यंग्य-हास्य आदि माध्यमों से जनता को शिक्षित करना था। भारतेन्दु युग का निबन्ध-साहित्य विषय-वस्तु तथा रचना-शिल्प दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिका, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबन्ध लिखे गए। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक आदि सभी शैलियों का प्रयोग विषयानुरूप किया गया। जनोन्मुख विषय चयन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति इस युग के निबन्ध की विशेषता रही।

   विभिन्न निबन्ध एवं निबन्धकार हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', ईश्वर बड़ा विलक्षण है', एक अदभुत अपूर्व स्वप्न', 'सूर्योदय', 'पाँचवें पैगंबर', 'कश्मीर कुसुम'; बालकृष्ण भट्ट—'चढ़ती उमर', 'चंद्रोदय', 'बातचीत', 'आँख', 'ईश्वर भी क्या ठठोल है', 'मेला', 'ठेला', 'वकील', 'आशा', 'आत्मनिर्भरता'; प्रतापनारायण

मिश्र—'बुढ़ापा', 'भौं', 'दाँत', 'आप', 'पेट', 'धोखा', 'बात', 'वृद्ध', 'परीक्षा', 'नास्तिक', 'मनोवेग'; बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—'हिन्दी भाषा का विकास', 'उत्साह', 'आलम्बन', ''परिपूर्ण', 'प्रवास'।

2. **द्विवेदी युग (1900 से 1920)**—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का युग हिन्दी निबन्ध विकास यात्रा का महत्त्वपूर्ण सोपान है। स्वयं द्विवेदी जी ने निबन्ध लेखन के साथ-साथ 23 निबन्धों के हिन्दी अनुवाद भी किए। जिसका प्रकाशन 'सरस्वती' पत्रिका में हुआ। 'हंस का नीर-क्षीर विवेक' 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' आदि प्रसिद्ध निबन्ध हैं जिनकी युगान्तरकारी भूमिका है। इतना ही नहीं रचनाकारों के काव्य विषय के निर्धारण में इन निबन्धों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके निबन्धों में उपदेशात्मकता का पुट है।

   द्विवेदी युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्धकार हैं—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—''कछुआ धर्म'', ''न्याय बेटा'', मारेसि मोहि कुठाँव; श्याम सुन्दर दास—'समाज और साहित्य' इत्यादि।

   द्विवेदी युग के अन्य निबन्धकार हैं—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जिन्होंने भाव एवं मनोविकार सम्बन्धी तथा विचारात्मक, चिंतनपरक, तार्किक निबन्ध लिखे। निबन्ध को श्रेष्ठ साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आचार्य शुक्ल को जाता है।

   इस युग में लिखे गए भाषा तथा व्याकरण विषयक निबन्धों ने भाषा को व्यवस्थित रूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन के कारण निबन्धों में निबन्धकार के व्यक्तित्व का समावेश नहीं हो पाया। इस युग में ही **महावीर प्रसाद द्विवेदी**—'प्रतिभा', 'क्रोध', 'लोभ', 'कविता', 'साहित्य सन्दर्भ', 'साहित्य सीकर', 'विचार-विमर्श', 'कवि' और कविता'; **बाबू श्यामसुन्दर दास**—'साहित्यलोचन', 'गद्य कुसुमावली'। **पद्मसिंह शर्मा**—पद्म पराग और 'प्रबंध मंजरी' प्रमुख निसंघ ओर निबन्धकार रहे हैं।

3. **शुक्ल युग (1920 से 1940)**—हिन्दी निबन्ध साहित्य के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के योगदान के कारण इस युग को शुक्ल युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में विभिन्न विषयों में विभिन्न भाव धाराओं के निबन्ध लिखे गए। विचारात्मक, हास्य-व्यंग्य मूलकता, साहित्यिक विषय, भाव परकता, अनुभूति गहनता इस युग के निबन्धों की विशेषता रही है। रामचन्द्र शुक्ल के 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका' समालोचनात्मक निबन्ध इसी युग में लिखे गए।

   बाबू गुलाब राय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, मुंशी प्रेमचन्द्र, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि के निबन्धों ने इस काल को समृद्ध किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाव परक, मनोवैज्ञानिक, विचारात्मक, निबन्धों के सृजन से इस युग का निबन्ध साहित्य कथ्य एवं शिल्प वैविध्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा। यद्यपि इस युग के निबन्धों में वैयक्तिकता की प्रधानता है। कुछ महत्त्वपूर्ण निबन्धकार निम्नानुसार हैं—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'चिंतामणि भाग-1, 2', 'त्रिवेणी'; बाबू गुलाबराय—'फिर निराशा क्यों', 'ठलुआ क्लब', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास'; पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'उत्सव', 'समाज-सेवा', 'विज्ञान', 'प्रबंध परिजात', 'प्रदीप पंचपात्र'; डॉ० रघुवीर सिंह—'जीवन—कण', 'शेष स्मृतियाँ', 'ताज', 'फतेहपुर सीकरी'। सियारामशरण गुप्त—झूठ-सच।

4. **शुक्लोत्तर युग (1941 से अद्यतन)**—यह वह समय है जब निबन्ध विधा अध्ययन-अध्यापन का केन्द्र बनीं। इस युग में निबन्ध के तीन प्रकार देखने को मिलते हैं—1. विचारात्मक निबन्ध। 2. भावात्मक निबन्ध। 3. हास्य-व्यंग्य प्रधान निबन्ध।

   विचारात्मकता, भावात्मकता को सांस्कृति धरातल पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निबन्धों में वाणी दी। सामाजिक विसंगतियों पर श्री हरिशंकर परसाई ने तथा डॉ० नगेन्द्र एवं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने विचारात्मक एवं समीक्षात्मक निबन्ध लिखे। इस युग के महत्त्वपूर्ण निबन्धकार हैं—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी-'हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी'। डॉ० नगेन्द्र-'विचार और अनुभूति', 'आलोचक की आस्था'; सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'-'त्रिशंकु', 'भवन्ति'; आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-'अशोक के फलू', 'कुटज', 'विचार और वितर्क', 'आलोक पर्व', 'कल्पलता'; राहुल सांकृत्यायन-'साहित्य निबन्धावली'; हरिशंकर परसाई-'ठिठुरता हुआ गणतंत्र'; रामविलास शर्मा-'विराम-चिन्ह'; श्री विद्या निवास मिश्र-'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी, चितवन की छाँह'; धर्मवीर भारती-'पश्यंती' इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। ये निबन्धकार विभिन्न भावधारा के हैं। अन्य निबन्धकार हैं-जैनेन्द्र कुमार-'जड़ की बात', 'जैनेन्द्र के विचार', 'साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'सोच विचार', 'मंथन', 'प्रस्तुत दर्शन'। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल-'कला और

TOUCH n PASS

संस्कृति', 'कल्पवृक्ष', 'सांस्कृतिक विरासत और 'संस्कृत'; डॉ० प्रभाकर माचवे-'मुँह', 'गला', 'गाली', 'बिल्ली', 'मकान'

शुक्लोत्तर निबन्ध साहित्य कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से पर्याप्त विविधता भरा है। रचना शैली की दृष्टि से निबन्धों के छः वर्ग है—1. वर्णनात्मकता, 2. विवरणात्मकता, विश्लेषणात्मकता, 3. भावात्मक, 4. विचारात्मक, 5. संस्मरणात्मक, 6. ललित।

शुक्लोत्तर युग में इन सभी वर्षों के निबन्ध प्रचुर मात्रा में लिखे गए।

प्र.7. कहानी के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

कहानी के तत्त्व

अभी तक आपने कहानी की संरचना और उसकी विशेषताओं को समझा। किन्तु कहानी आज के युग में केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है अपितु जीवन मूल्यों की जानकारी, सामाजिक तानेबाने की समझ एवं कठिन परिस्थितियों से जूझने की सामर्थ्य भी हमें कहानी से प्राप्त होती है। मूल्यांकन की दृष्टि से कहानी के कुछ तत्त्व निर्धारित किये गये हैं। समीक्षकों ने कथा साहित्य के रूप में उपन्यास और कहानी को एक समान मानकर मापदण्ड की एक ही पद्धति अपनाई है, और उपन्यास की भाँति कहानी के भी छः तत्त्व माने हैं—

1. **कथानक**—कथानक का अर्थ है कहानी में प्रयोग की गई कथावस्तु या वह वस्तु जो कथा में विषय रूप में चुनी गई हो। कहानी में सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक आदि में से किसी एक विषय को लेकर घटना का विकास किया जाता है। कथानक में स्वाभाविकता लाने के लिए उसमें यथार्थ, कल्पना, मनोविज्ञान आदि का समावेश यथोचित रूप में किया जाता है। कथानक के विकास की चार स्थितियाँ मानी गई है—आरम्भ, विकास, चरमोत्कर्ष और अन्त।

   कहानी का आरम्भ रोचक ढंग से होना चाहिए ताकि पाठक के मन में आगे की घटनाओं के लिए जिज्ञासा उत्पन्न हो सके। जिससे पाठक कहानी में इस कदर डूब जाए कि उसके मन में कहानी को शीघ्रतिशीघ्र समाप्त करने का लालच आ जाए। विकास अथवा आरोह में घटना क्रम में सहजता और पात्रों के स्वाभाविक मन—स्थिति का विकास दिखाया जाना चाहिए। जिससे पाठक को कथानक समझने में आसानी एवं सम्पूर्ण कथानक उसके मन-मस्तिष्क में एक चलचित्र की भाँति चलने लगे। तीसरी स्थिति चरमोत्कर्ष वह अवस्था है जहाँ पर कहानी की रोचकता में क्षणभर के लिए स्तब्धता आ जाती है। पाठक कहानी का अन्तिम फल जानने के लिए उत्तेजित हो उठता है एवं वह अनायास ही कयास लगाने लगता है। कहानी के अन्त में परिणाम निहित रहता है, जिससे पाठक को सकून की अनुभूति प्राप्त होती है। अतः कहानी का उद्देश्य एवं कथानक स्पष्ट होना चाहिए। यह न तो विस्तृत होना चाहिए और न ही बिलकुल संक्षिप्त होना चाहिए।

   हिमांशु जोशी की कहानी 'तरपन' का कथानक मधुली नामक विधवा स्त्री के घर से प्रारम्भ होता है, जिसका पति की सरकारी सुरंग निर्माण के दौरान मृत्यु हो जाती है। उसकी तेरहवीं पर मृतक की आत्मा की शान्ति के लिए तरपन; तर्पणद्ध करने के लिए मधुली के पास धनाभाव होता है जिसके लिए वह दर दर भटकती है। अंततः वह कोसी के तट पर मिट्टी की गाय बना अपने पति का तर्पण स्वयं करती है।

   कहानी का अन्त पाठक की समस्त जिज्ञासुओं को शान्त कर देता है परन्तु बदलते परिवेश एवं लेखन में आये बदलाव में आजकल कुछ कहानीकार परिणाम को अस्पष्ट रखकर पाठको को मनन की स्थिति में छोड़ देते हैं।

2. **पात्र एवं चरित्र-चित्रण**—किसी भी कहानी में कथानक के बाद पात्रों का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। कहानी में पात्रों की कम संख्या अपेक्षित है। कथानक को पात्र ही गति देता है अन्यथा कथानक निरर्थक हो जाता है। कहानीकार कथानक के मुख्य भाव को पात्रों के माध्यम से ही प्रस्तुत करता है। कहानी में मुख्य रूप से तीन प्रकार के पात्र होते हैं—मुख्य पात्र, सहायक पात्र एवं गौण पात्र। कहानी वैसे तो मुख्य पात्रों के इर्द-गिर्द घुमती रहती है परन्तु सहायक एवं गौण पात्रों के माध्यम से लेखक कहानी में रोमांच, रहस्य एवं हास्य आदि भावों का पुट देता रहता है। पात्रों के सटीक चरित्र चित्रण से कहानी ज्यादा मोहक, प्रभावशाली एवं शिक्षाप्रद हो जाती है। कहानी के मुख्य पात्र समाज के लिए प्रेरणा स्रोत एवं बच्चों के आदर्श बन जाते हैं, तथा वे जीवन में वैसा ही बनने का प्रयास करते हैं।

   तरपन कहानी की मुख्य पात्र मधुली है और समस्त कथानक उसके आस-पास ही घूमता है। इसके अतिरिक्त कहानी में उसका पति तुलसा, साहुकार कंसा, ब्राह्मण आदि सहायक पात्र हैं जो कहानी को गतिशीलता प्रदान करते हैं।

TOUCH 'n' PASS

3. **कथोपकथन**—कहानी में कथा विकास और चरित्र विकास के लिए कथोपकथन सहायक होते हैं। पात्रों के आपसी संवाद या वार्तालाप को कथोपकथन कहा जाता हैं। कहानी में कथोपकथन से एक ओर घटना-क्रम को बढ़ाया जाता है तो दूसरी ओर पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को दिखाया जाता है। संवाद में रोचकता, सजीवता और स्वाभाविकता का गुण आवश्यक होता है। इसके साथ ही संवाद की भाषा पात्रों के अनुकूल, परिवेश के अनुरूप, आकार में छोटे और प्रभावशाली होनी चाहिए। किसी भी कहानी में कथोपकथन उसकी अभिव्यक्ति एवं आम पाठक के बीच पैठ बनाने में सहायक होता है।

   'तरपन' नामक कहानी में पात्रों के संवाद मन को छू लेतें हैं। एक जगह मधुली तर्पण करने हेतु आये पंडित से कहती है, "बामणज्यू गरूण पुराण की सामर्थ्य मेरी कहाँ, मेरे पास तो जौं तिल बहाने के पैसे भी नहीं हैं, गौ गारस के लिए आटा नहीं है और बच्चे तीन दिन से भूखे हैं।" ये कथन मानव मन को उद्वेलित कर देते हैं।

4. **वातावरण**—कहानी को सहज और स्वाभाविक रूप प्रदान करने के लिए उसके वातावरण का विशेष महत्त्व होता है। वातावरण से तात्पर्य है कहानी में प्रयोग किये गये विषय-वस्तु के आस-पास का परिवेश अर्थात् देश और काल का वर्णन करना। इसमें कहानीकार सामाजिक कहानियों में अपने युग का और ऐतिहासिक-पौराणिक कहानियों में पुरातन युग के इतिहास, भूगोल, समाज आदि का चित्रण करते हैं। कहानी में घटना, स्थान, पात्र, पात्रों की भाषा-वेशभूषा इत्यादि देश और काल के अनुसार ही की जाती है। कहानी जब दृश्य एवं श्रव्य माध्यम से समाज के सामने आती है तो उस देश, काल, परिस्थिति, भाषा-शैली, पहनावा तथा रहन-सहन से सभी परिचित हो जाते हैं। उदाहरणस्वरूप वर्तमान में अधिकांश धारावाहिकों में राजस्थान का चित्रण किया जा रहा है, इससे पूरा देश वहाँ की संस्कृति से परिचित हो रहा है। साथ ही बाल विवाह जैसी कुप्रथा के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी है।

5. **भाषा-शैली**—यहाँ आप कहानी में शैलीगत तत्त्व को जानने से पहले शैली के शाब्दिक अर्थ को समझेंगे। शैली का अर्थ है कथन पद्धति। सामान्य अर्थ में कहें तो कहने का एक अंदाज यानि ढंग, तरीका जो उसे दूसरों से भिन्न दिखाये **शैली** है। भाषा शैली का सम्बन्ध कहानी के सभी तत्त्वों के साथ रहता है। कहानी की भाषा शैली सरल, सुबोध, सरस और धाराप्रवाह होनी चाहिए। भाषा शैली में शब्द-चयन, सुसंगठित वाक्य-विन्यास, लक्षणा-व्यंजना आदि का प्रयोग उसकी महत्ता को बढ़ा देता है। कहानी की कई शैलियाँ है, जैसे कहानी में वर्णनात्मक, संवादात्मक, पात्रात्मक, आत्मकथात्मक और डायरी शैली में से किसी एक या एक से अधिक भाषा शैलियों को स्थान दिया जा सकता है।

   कहानी की रचना में भाषा का अत्यंत महत्त्व होता है कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुग्राही होनी चाहिए। यदि भाषा अधिक क्लिष्ट होगी तो ना तो यह साधारण पाठक को लुभा पायेगी और ना यह कहानी के उद्देश्य को ग्रहण कर पायेगी। अत: कहानी में भाषा ऐसी हो जो सुग्राही, कथानक एवं पात्रों के अनुरूप हो और जिसका प्रभाव व्यापक एवं गहरा हो।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

हिन्दी उपन्यास : गबन–प्रेमचन्द

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रेमचन्द जी का असली नाम क्या था?

उत्तर प्रेमचन्द जी का असली नाम धनपतराय था।

प्र.2. छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में प्रेमचन्द जी किस नाम से लिखते थे?

उत्तर छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में प्रेमचन्द जी 'नवाबराय' नाम से लिखते थे।

प्र.3. प्रेमचन्द जी का देहान्त कब हुआ?

उत्तर प्रेमचन्द जी का देहान्त 8 अक्टूबर, 1936 में हुआ।

प्र.4. प्रेमचन्द जी के अधूरे उपन्यास का नाम क्या था?

उत्तर प्रेमचन्द जी के अधूरे उपन्यास का नाम मंगलसूत्र था।

प्र.5. प्रेमचन्द जी के प्रमुख उपन्यास कौन-से हैं?

उत्तर प्रेमचन्द जी के प्रमुख उपन्यास हैं—गोदान, गबन, रंगभूमि, सेवासदन तथा निर्मला आदि।

प्र.6. प्रेमचन्द के जीवन दर्शन का मूलतत्व क्या है?

उत्तर प्रेमचन्द के जीवन दर्शन का मूलतत्व है—मानवतावाद, जिसका धरातल भौतिक है, व्यावहारिक है।

प्र.7. गबन उपन्यास में जालपा को किसके प्रति प्रेम आकर्षण है?

उत्तर गबन उपन्यास में जालपा को गहनों के प्रति प्रेम आकर्षण विरासत में मिला है।

प्र.8. गबन उपन्यास किन खण्डों में विभाजित है?

उत्तर गबन उपन्यास पूर्वार्ध और उत्तरार्ध खण्डों में विभाजित है।

प्र.9. गबन उपन्यास किस सन् में लिखा गया?

उत्तर गबन उपन्यास सन् 1931 में लिखा गया है।

प्र.10. रमानाथ के पिता कौन हैं और वह कहाँ रहते हैं?

उत्तर रमानाथ के पिता दयानाथ हैं जो इलाहाबाद में रहते हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. क्या गबन उपन्यास समस्यामूलक है?

उत्तर

गबन समस्यामूलक उपन्यास

'गबन' प्रेमचंद जी का श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है। इसमें नायक रमानाथ द्वारा गबन किए जाने की घटना की नींव पर पूरे उपन्यास का भवन खड़ा किया गया है। 'गबन' की घटना के लिए रमानाथ की मजबूरी के साथ जालपा की आभूषण प्रियता को भी एक कारण दिखाया गया है। कहानी रमानाथ और जालपा के चारों ओर घूमती है—अत: उनके गुण-अवगुणों का विश्लेषण भी इसमें आया है। इन सब बातों से कुछ लोग इस उपन्यस को चरित्रप्रधान उपन्यास मानते हैं। एक ओर पाठक देखते हैं कि नारी की आभूषणप्रियता के साथ-साथ, विधवा विवाह, अनमेल ब्याह, पुलिस के हथकण्डे तथा मध्यवर्ग के जवानों का पाश्चात्य संस्कृति

TOUCH 'n' PASS

की ओर झुकाव ढेर सारी समस्याएँ इसमें आती हैं। यह सब देखकर तो कहना पड़ता है कि 'गबन' 'चरित्रप्रधान समस्यामूलक' उपन्यास है।

प्र.2. गबन उपन्यास की समस्या चित्रण की विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

समस्या चित्रण की विशेषताएँ

1. प्रेमचन्द एक तरफ 'गरम दल' के पक्ष में मत देते हैं—उसका समर्थन देते हैं परन्तु अपने उपन्यासों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता की लड़ाई का खुला चित्रण नहीं करते। असहयोग, शराबबन्दी, आन्दोलनों के चित्र खींचकर अप्रत्यक्ष रूप में स्वदेशी आन्दोलन का चित्रण करते हैं—देश की परतंत्रता का जिक्र करते हैं।
2. सभी सरकारी संस्थाओं के कार्यों की वे आलोचना करते हैं। शिक्षण संस्थाएँ, अदालतें, पुलिस आदि इसके उदाहरण हैं।
3. हिन्दुस्तान की आजादी के प्रश्न से वे बेचैन थे। अपने साहित्य सृजन की मन्शा व्यक्त करते हुए उन्होंने जीवन के बचे कुचे साल 'देश की आजादी' को लक्ष्य मानकर लेखन करना बताया था। उनके 'गबन' उपन्यास में कई प्रसंग सीधे स्वाधीनता आन्दोलन का चित्रण करते हैं। ब्रिटिश शासन की शोषण नीति से पैदा किसानों की खस्ता हालत, कर्ज में डूबे किसान, उनकी स्थायी सम्पत्ति महाजनों के हाथ चली जाने पर उन्हीं किसानों का 'मजदूर' में बदल जाना, जमींदार का चंदा, बेगारी वसूल करना आदि बातें ब्रिटिश शासन का परिणाम मात्र थी। इसका अत्यन्त यथार्थ सजीव और रोमांचकारी अंकन प्रेमचन्द ने 'गोदान' में किया है। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई साहित्य कृतिद्वारा लिखित दस्तावेज बनी है।
4. साम्प्रदायिकता को बरकरार रखकर ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान को कमजोर रखना चाहती थी। प्रेमचन्द ने इस विचारों की संकीर्णता को हटाकर हिन्दु-मुसलानों में ऐक्य बना रहे इसी पवित्र (शिव) विचार से तथा जातिपाँति के भेंदों को दूर किया जाए इस विचार के लिए उन्होंने समाज के ऐसे पात्रों का चयन अपने उपन्यासों में किया। (गबन)

मूल प्रश्न यह है कि प्रेमचन्द 'समस्यामूलक उपन्यास' लिखने क्यों बैठे? इसका सरल और एकमात्र उत्तर है 'समस्याओं के प्रति प्रेम' उपन्यास के बाकी तत्त्वों को भी पीछे हटाकर प्रेमचन्द जी के उपन्यास यूँ बुने जाते हैं उसका प्रमुख कारण भी प्रेमचन्द जी का समस्याओं के प्रति गहरा आकर्षण है। उनके सारे सामाजिक उपन्यास समस्याओं के साथ ही हैं।

प्रेमचन्द अपनी कला का उपयोग भारतीय जीवन में परिवर्तन लाने के लिए करना चाहते थे। इसीलिए शायद चरित्रांकन करते समय भी पहले समस्या को प्राधान्य देते हैं बाद में चरित्रांकन को!

प्र.3. उपन्यास साहित्य की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

उपन्यास साहित्य की विशेषताएँ

उपन्यास साहित्य की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. इस युग में उपन्यास साहित्य का बड़ा विस्तार हुआ। अनेक उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना हुई।
2. यथार्थ मानव जीवन से साहित्य का रिश्ता जोड़ा गया। उपन्यास पढ़ना, उसको स्वीकृत करना, अपनाना, सहजता से हुआ।
3. सामाजिक समस्याओं को समाज के सामने प्रस्तुत करने का साधन साहित्य बना।
4. महात्मा गाँधीजी के दर्शन का प्रभाव काफी गहरा साबित हुआ।
5. भारतीय पराधीनता का एहसास रेखांकित किया गया।
6. स्वदेश प्रेम—नवजागरण के भावों की जागृति कराने में साहित्य का सहयोग।
7. लेखकों ने एक तरह से देशसेवा की। साहित्य सृजन ही देशसेवा बनी।
8. उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता को आधार बनने की दृष्टि इसी युग में दिखाई दी।
9. ग्रामीण समाज, ग्रामीण जीवन और ग्रामीण परिवेश को अधिकांश उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला।
10. शोषित और शोषक वर्ग के संघर्ष का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया।
11. शिल्प की दृष्टि से इस युग के उपन्यास साहित्य को विशेष स्तर मिला है। इनकी भाषा बोलचाल की हिन्दी ही रही है।
12. मानवमन की अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए इस युग में उपन्यास को माध्यम बनाया गया।
13. इस युग के उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में वैविध्य दिखाई देता है। वहीं उपन्यास की प्रौढ़ता, विकास एवं समृद्धि का द्योतक है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रेमचन्द जी का जीवन-परिचय दीजिए।

उत्तर

जीवन-परिचय

प्रेमचन्द जी का असली नाम धनपतराय था। वे उत्तर प्रदेश के एक सरकारी विद्यालय में शिक्षक थे। जाति के कायस्थ थे। कायस्थों को मुंशी कहा जाता था, इसलिए वे 'मुंशी प्रेमचन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुए। धनपतराय का जन्म काशी के पास लमही नामक गाँव में 31 जुलाई, 1880 में हुआ था। धनपतराय के पिता का नाम अजायब लाल था। वे डाकखाने में नौकरी करते थे। वह एक सज्जन पुरुष थे। भगवत्गीता का नियमित पाठ करते थे। वे विचारशील व्यक्ति थे। माता आनन्दीदेवी पढ़ी लिखी और समझदार औरत थी। उन्हें लिखने-पढ़ने का शौक था पर उन्होंने जो कुछ लिखा, प्रकाश में नहीं आया। जब इनका देहान्त हुआ, धनपतराय मात्र आठ-नौ साल के थे। उनके पिता ने दूसरा विवाह किया। धनपतराय के शब्दों में "मेरे पिता जीवन-पथ पर बहुत सँभलकर चले पर अन्तिम दिनों लड़खड़ा गए।" उनकी दूसरी शादी सचमुच एक बड़ी भूल थी। इससे भी बड़ी भूल उन्होंने यह की कि अपनी नयी पत्नी के दबाव में आकर धनपतराय का विवाह मात्र सोलह वर्ष की अवस्था में कर दिया। धनपतराय के विवाह के एक वर्ष के अन्दर पिता का स्वर्गवास हो गया। धनपतराय पर अपनी पत्नी, विमाता और उनके दो बच्चों तथा एक भाई के भरण पोषण का भार आ पड़ा। उस वक्त वे नौवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। विकट परिस्थिति में पड़ गए। ट्यूशन का सहारा लेकर अपनी पढ़ाई जारी रखी। बीस साल की आयु में उन्हें बहराइच के एक सरकारी विद्यालय में नौकरी मिली। इसी बीच उनमें लिखने का शौक पैदा हो गया और वह 'नवाबराय' के नाम से छोटी-मोटी पत्रिकाओं में अपनी रचनाएँ प्रकाशित करने लगे।

प्रथम विवाह से प्रेमचन्द जी सुखी नहीं थे। पत्नी कर्कशा स्वभाव की, झगडालू औरत थी। सन् 1906 में झगड़कर पत्नी मायके चली गई जो वापस कभी नहीं आई। प्रेमचन्द जी कई साल तक उसे रुपये भी भेजते रहे, पर दोनों की मुलाकात फिर कभी नहीं हुई। दूसरी शादी विधवा औरत, शिवरानी देवी से की जो सफल रही। शिवरानी देवी स्वयं लेखिका थी। उनका दांपत्य जीवन सुखी रहा, अत: शिवरानी देवी ने अंततक प्रेमचन्द जी की सेवा की, साथ निभाया।

प्रेमचन्द जी ने इर्द-गिर्द रहने वाले समाज के रूपों को दिल से देखा था, जाना था। खुद मध्यवर्ग के प्रतिनिधि रहे अत: इस वर्ग की नस-नस से वे परिचित थे। नौकरी, लेखन, सिनेमावालों से सम्पर्क में बंबई निवास, अमीरों के साथ मेल-जोल आदि के कारण समाज के सभी वर्गों के दर्शन उन्हें हुए थे। एक सजग, सहृदय, सक्षम कलम के सिपाही को बस खुली आँखों से जो भी देखा जाता था उनके मन में प्रेम, विवाह, नारी-स्वतंत्रता, परिवार, समाज आदि के बारे में कई तरह के सवाल उठ रहे थे। जब कभी मौका मिलता अपने दोस्तों, समविचारी गुटों के सामने वे इन सवालों को रखते थे। उन पर चर्चा करके अपने विचारों को और मजबूत तथा सशक्त निकोप बना लेते थे। जब इरादा पक्का हो जाता, मन की बेचैनी बढ़ जाती तो कलम हाथ में आ जाती थी। लगता है इस प्रकार की गठनक्रिया हर क्रांतिकारी सामाजिक विचारों के पीछे रही होंगी। तभी तो बेफिक्र होकर उनकी कलम लगातार लिखती रही। अपने चिारों के प्रति दृढ़ आत्मविश्वास उन्हें निर्भय बना सका। एक-एक व्यक्ति से लेकर समाज के सभी स्तर, सभी वर्ग, जाति, स्त्री-पुरुष साथ में देश की स्वतंत्रता, से जुड़े अनेक विचारों की गुथ्थियाँ लेकर इनकी जिंदगी चल रही थी। जाहिर है उनकी हर कलाकृति में इनके दर्शन अटल बने। न धन का, आधिक्य था, न सेहत का साथ था परन्तु दुर्गम्य इच्छा थी मन में समाज को बदलने, देश को खुशहाल देखने की। इस इच्छा को प्रेरणा मिली गांधीवादी विचारों से, समाजवादी विचारों से और पाठकों के सामने आया एक विस्तृत साहित्य-कहानीरूप में, उपन्यासों के रूप में। अपने मन से देशसेवा की साधना प्रेमचन्द जी ने 'कलम का सिपाही' बनकर पूरी की।

प्रेमचन्द जी की लोकप्रियता और पाठकों द्वारा किए गए उनके साहित्य के प्रशंसकों की बढ़ती संख्या को देखकर कुछ आलोचक उनके दुश्मन भी बने। आलोचना करते समय उन्होंने प्रेमचन्द जी को 'ब्राह्मण विरोधी' 'साहित्यिक चोरी करने वाला' 'विदेशी उपन्यासों और कहानियों के आधार पर उपन्यास-कहानी लिखकर मौलिक कथाकार होने का दावा करने वाला लेखक' सिद्ध करने की कोशिश की। तो बुद्धिमान आलोचक रामचन्द्र शुक्ल, रामदास गौड, जनार्दन प्रसाद झा, 'द्विज' आदि ने प्रेमचन्द जी के साहित्य की भरपूर प्रशंसा की।

प्रेमचन्द एक पारिवारिक आदमी थे। अपने परिवार से उन्हें गहरा लगाव था। परिवार को छोड़कर कहीं बाहर घूमने जाना उन्हें बिलकुल ही पसंद न था। अमृत राय कहते हैं 'मुंशी जी के प्राण अपने लड़कों में बसते थे। इसी प्रेम की डोर से उन्होंने हर लड़के को अपने संग बाँध लिया था।'

उन्हें तत्कालीन राजनीति में गहरी दिलचस्पी थी। अपने गहरे दोस्त दयानारायण निगम साहब की लड़की की शादी में केवल इसलिए शरीक नहीं हुए कि वहाँ पर कुछ अंग्रेज दोस्तों को न्योता दिया गया था।

उनके मन में स्वाभिमान, देशप्रेम, हिन्दुस्तान की स्वाधीनता की चेतना जगती थी। वे कांग्रेस के दफ्तर में भी जाते पर सक्रीय राजनीति में कभी नहीं कूदे। घर की – पारिवारिक जिम्मेदारियाँ शायद इसक कारण रहा था।

अमृत राय इस बात पर टिप्पणी करते हैं—'उनका जीवन 'कलाकार का नहीं, किसान का था पर उसके हाथ में कुदाल की जगह कलम थी।' इन्द्रनाथ मदान को लिखे पत्र में वे लिखते हैं—''मुझे काम करने में मजा आता है, जिंदगी का मतलब मेरे लिए हमेशा एक ही रहा है—काम ... काम और काम!''

उस समय साहित्य में भी देशप्रेम की बात करना राजद्रोह समझा जाता था। उनकी 'सोजेवतन' नाम से कहानी संग्रह सन् 1908 में प्रकाशित हुआ, जिसकी वजह से वे संकट में आ गए थे। लेकिन डिप्टी इन्स्पेक्टर उनसे स्नेह करते थे, जिन्होंने मामला सँभाल लिया। अत: उस दिन से 'मुंशी प्रेमचन्द' ने इस नए खुफिया नाम से लिखना प्रारम्भ किया। सन् 1920 में गाँधीजी के प्रभाव में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया तथा एम०ए० करने का इरादा भी छोड़ दिया। जून, 1922 में एक मारवाड़ी हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक पद का कार्यभार ग्रहण किया। कुछ समय बाद वह नौकरी भी छोड़ दी। बंबई जाकर फिल्म कम्पनी में भी काम करने की कोशिश की परन्तु अपने तत्त्वों को वहाँ मरोड़ते वह देख नहीं सके। अत: फिल्म लोक से विदा लेकर काशी आकर उपन्यास 'गोदान' लिखा।

बंबई में प्रेमचन्द जी को कई नयी बातों की प्रेरणा मिली। उसमें से एक थी, विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों की एकता। फलस्वरूप 'भारतीय साहित्य परिषद्' का जन्म हुआ। परिषद् की बैठक महात्मा गाँधीजी की अध्यक्षता में हुई। प्रेमचन्द जी ने 'हंस' को साहित्य परिषद् का मुखपत्र बनाने का प्रस्ताव रखा। बाद में वे 'हंस' पत्रिका के सम्पादक बने। पर अब उनकी सेहत बिगड़ी गई। उसी वक्त 'हंस' पत्रिका में राजद्रोहात्मक नाटक प्रकाशित होने के कारण सरकार ने 'हंस' पर एक हजार रुपये की जमानत की माँग की। पैसे तो भर दिए लेकिन 'हंस' का प्रकाशन भी बंद करना पड़ा। इससे प्रेमचन्द जी व्यथित हो गए, उन्हें मानसिक तनावों का सामना करना पड़ा, जिससे सेहत और भी बदतर हो गई। प्रेमचन्द जी – जिन्होंने एक पत्रकार के रूप में दलित लोगों, स्त्रियों, किसानों और हरिजनों की दारूण व्यथा को वाणी दी और देश की स्वतंत्रता के लिए जिन्होंने अविरत संघर्ष किया – 8 अक्टूबर, 1936 को परलोक सिधार गए। उन दिनों वे 'मंगलसूत्र' नामक उपन्यास की रचना कर रहे थे, जो अंतत: अधुराही रह गया। प्रेमचन्द जी का हर उपन्यास पढ़कर पाठक यदि उसको गहराई से जानना चाहे तो नि:संशय हर डूबकी के साथ विचार की भावना के नए रत्न को पा सकते हैं।

प्र.2. प्रेमचन्द जी के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रेमचन्द जी का जीवन-दर्शन

उनके उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में—

संसार में प्राचीन काल से आजतक ऐसे महापुरुषों का अविर्भाव हुआ है, जिनके जीवनदर्शन ने समसामायिक समाज के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्रदान की है। इससे जनसाधारण भी प्रभावित होते रहे हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में से प्रेमचन्द ऐसे महाचेता हैं, जिन्होंने अपने जीवनदर्शन द्वारा युग साहित्य को प्रभावित किया है। भावी साहित्यकारों के लिए महान आदर्श उपस्थित कर रखे हैं। प्रेमचन्द जी सच्चे अर्थ में जनवादी कलाकार थे, अपनी साहित्यकला को लोकमंगल के हेतु जनसेवा में जुटाना उनका प्रयोजन था, उनके जीवनदर्शन का मेरुदण्ड था।

प्रेमचन्द जी के जीवनदर्शन का मूलतत्त्व है मानवतावाद, जिसका धरातल भौतिक है, व्यावहारिक है। उनकी व्यापक सहानुभूति के कारण उनके साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, विशद है। वे साहित्य को जीवनवादी दृष्टि से देखने के काबिल थे। अत: जीवन में जहाँ कहीं सत्यं, शिवं, सुंदरम् का आविष्कार है, प्रेमचन्द जी साहित्य में उसकी पुष्टि करते हैं। प्रेमचन्द जी साहित्य के द्वारा मनुष्य में देवत्व का निरूपण करना चाहते हैं और यही उनके जीवनदर्शन की महान उपलब्धि है।

प्रेमचन्द जी के जीवनदर्शन के निर्माण में प्रथम और महत्त्वपूर्ण योगदान है उनके जीवन का, समृद्ध एवं सच्चे जीवनानुभवों का। बचपन से लेकर मृत्यु तक उनका पूरा जीवन संघर्षमय था। परन्तु उन्होंने कभी हार नहीं मानी, प्रत्युत उसे सार्थक बनाने के लिए जी–तोड़ मेहनत करते रहे। 'रंगभूमि' के सूरदास के मुख से वे अपनी ही बात कहते हैं कि, ''जीवन तो एक खेल है। सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं; धक्के पर धक्के सहते हैं, पर मैदान में डटे रहते हैं। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती।''

प्रेमचन्द जी परिश्रमी एवं कर्मठ थे। परन्तु विचारों में उच्च और रहन-सहन में सादगीपूर्ण थे। उनका मानव पक्ष बड़ा सशक्त था और विकसित था, अत: उनकी संवेदना और सहानुभूति अत्यन्त व्यापक थी। समाज के दलित, पीड़ित, दीन-दुखिया लोग, शोषित मजदूर, भोले-भाले किसान, सामाजिक व्यवस्था के शिकार स्त्री-पुरुष मध्यवर्ग के नौकरीदार और व्यवसायी, अधिकारी, जमींदार सभी के लिए उनके साहित्य में यथोचित स्थान मिलता है। यहाँ तक कि समाज की दृष्टि से वेश्या जैसी भ्रष्ट नारी तक का भी वे चित्रण करने जाते हैं। क्योंकि उन्हें पाप से घृणा थी पापी से नहीं।

प्रेमचन्द जी की व्यापक सहानुभूति का परिचय हमें 'रंगभूमि' में मिलता है। अहिर से लेकर मन्दिर के पुजारी तक; ताड़ी बेचने वाले से लेकर खोमचे वाले तक; पान वाले से लेकर भीखमँगे तक—निम्न स्तर के भिन्न जाति और व्यवसायों के लोग उनकी विशेषताओं के साथ हमें मिलते हैं। इन सब में सूरदास अलग है, निजी स्वार्थ की बात वह सोच भी नहीं सकते, ना ही किसी से द्वेष या बैर है। निर्धन होते हुए भी उसे पैसे का लालच नहीं। हर बात को वह साफ मन से देख व स्वीकार कर सकते हैं। उसकी बाह्यदृष्टि बंद है पर अंतदृष्टि खुली हुई है। बस्ती वाले उसकी यह असाधारण ऊँचाई अनुभव तो करते हैं पर उसका विश्लेषण नीं कर सकते। अत: वे सूरदास पर किसी देवता का इष्ट है ऐसा मानते हैं। प्रेमचन्द जी निरिश्वरवादी थे, कर्मयोगपर विश्वास करते थे, धर्म के कर्मकाण्डो आडम्बरों के विरोधी थे। समीक्षकों के मत से प्रेमचन्द जी ने अपने जीवनविषयक विचार सूरदास के जरिए हमारे सामने प्रस्तुत किए हैं। सूरदास कहता है, "संसार में कौन है, जो कहें कि मैं गंगाजल हूँ।" जब बड़े-बड़े साधू-संन्यासी मोह-माया में फँसे हुए हैं, तो हमारी क्या बात है। "खेलना तो इस तरह चाहिए कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबराए नहीं, ईमान को न छोड़े।"

प्रेमचन्द जी के स्वभाव की सरलता, सादगी एवं ऋजुता के कारण उन्हें जीवन में किसी प्रकार की कृत्रिमा या आडम्बर से घृणा थी। संघर्षमय जीवन के प्रति सजग रहते हुए भी मानवधर्म से मुँह मोड़ने के बजाय उसी की पूर्ति में शक्ति लगाना उन्हें अभीष्ट था। 'गोदान' के प्रो० मेहता के निम्नलिखित विचारों में प्रेमचन्द के ही जीवनदर्शन का कुछ-कुछ परिचय मिलता है। वे कहते हैं—मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उससे प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ, जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डाला है।" जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है। मैं भूत की चिंता नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सबकुछ है। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है, भूत का मार हमारी कमर तोड़ देता है। हमारे जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फँसा देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। ... जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानवधर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में भाईचारे में—वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने में भेंट हो जाती है।

प्रेमचन्द जी के मतानुसार समाजसुधार तभी सम्भव हो सकता है जब साज में ऊँचे स्थान पर स्थित नेताओं के व्यवहार में कथनी और करनी में अन्तर ना हो। उनके चरित्र समाज के लिए आदर्श हों। स्वयं प्रेमच्न्द जी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी ईमान को तत्त्व को खूब निभाया है। अपने विचारों का उद्‌घाटन 'गोदान' में डॉ० मेहता द्वारा किया है—"मुझमें और आप में अन्तर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूँ उस पर चलता हूँ। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। आपकी जबान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती। खेद यही है कि, सब कुछ समझते हुए भी आप अपने विचारों को व्यवहार में नहीं लाते।"

प्रेमचन्द जी मानवजीवन को दो अतिरिक्त आयाम जोड़कर पूर्णता प्रदान करना चाहते थे। पहला आयाम है—कालसापेक्षता का विवेकी मान और दूसरा है प्राकृतिक दुर्गुणों से मनुष्य की मुक्ति। मनुष्य के प्राकृतिक स्वरूप को स्वीकार कर उसको मानवधर्म की पूर्णतातक पहुँचाने वाली यह प्रेमचन्द की जीवनदर्शन-यात्रा है।

उनकी राय में मानवजीवन की घटनाओं में ईश्वरीय विधान का स्थान नहीं है। वे निरिश्वरवादी थे, परन्तु धार्मिक प्रकृतियों का अनादर नहीं करते थे। धर्म का कर्मकाण्डी आडम्बरपूर्ण स्वरूप उन्हें अस्वीकार था। इसके स्थान पर धर्म के मूलतत्त्व सेवा, समता, सत्य, त्याग, कर्मयोग आदि को वे अधिक महत्त्व देते हैं। उन्होंने बताया है—"प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच में जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक बना सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है।

प्रेमचन्द जी ने स्पष्ट कहा है—"सिर्फ रुपया कमाना ही आदमी का उद्‌देश्य नहीं है। मनुष्य को ऊपर उठाना और मनुष्य के मन में ऊँचे विचार पैदा करना भी उसका कर्त्तव्य है। अगर यह नहीं है तो आदमी और पशु दोनों बराबर है।" गोदान में मिल मालिक मि० खन्ना की मिल जल जाती है, बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान होता है, उस वक्त उनकी सांत्वना करते हुए गोविन्दी कहती है, "तो तुम दिल इतना छोटा क्यों करते हो? धन के लिए—जो सारे पाप की जड़ है? सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते। वह देखते हैं, तुम क्यो हो, अगर तुममें सच्चाई है, न्याय है, त्याग है, पुरुषार्थ है तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे। जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं।" प्रेमचन्द जी ने निजी आयुष्य में भी धन को कभी महत्त्व नहीं दिया। गांधीजी के आदर्श का पालन करते हुए सरकारी नौकरी से इस्तिफा दे दिया। धनसम्पन्न जीवन उन्हें नसीब नहीं हुआ परन्तु उन्होंने अपने आदर्शों का रास्ता कभी नहीं

छोड़ा। मनुष्य में अवशिष्ट कुछ पशु—सुलभ प्रवृत्तियों, उसकी कमजोरियों और दुर्बलताओं से वे भली–भाँति परिचित थे, तथापि उन्हें यह भी स्वीकार था कि वर्षों की साधना से मनुष्य ने अपने भीतर त्याग, तप, सेवा, परोपकार, दया, क्षमता, सौंदर्यभावना जैसे सद्‌गुणों का भी विकास कर लिया है। इसी कारण उनके उपन्यासों तथा कहानियों के चरित्रों में साधारण से असाधारण की ओर उन्हें ले जाने वाले इन गुणों के दर्शन होते हैं। ''सेवासदन'' की सुमन और गजधर पांडे; 'रंगभूमि' के सूरदास, विनय और सोफिया, 'गबन' की जालपा, रमानाथ और देवीदीन; 'गोदान' के होरी, धनिया, प्रो० मेहता जैसे चरित्र अपनी चरित्रगत दुर्बलताओं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए आदर्श की ओर अग्रसर होते हैं।

मानव–मानव को समान देखने तथा मानव–हित को सर्वोपरि मानने के दृष्टिकोण के कारण ही वे समाज–जीवन से शोषक–शोषितों के संघर्ष को मिटा देना चाहते थे। उनके साहित्य का अधिकांश इसी मानव प्रेम से अनुप्रणित है। मानववाद और मानवतावाद उनके जीवन के मूलाधार है और वे ही उनके समस्त विचारों के लिए उत्तरदायी है।

प्रेमचन्द जी साहित्य को जीवन की आलोचना या व्याख्या मानते हैं। उसके द्वारा वे मानवीय चरित्र व जीवन पर प्रकाश डालना चाहते हैं। साहित्य को वे केवल बहलाव की चीज नहीं मानते, बल्कि उसे लोकमंगल का सशक्त सामाजिक साधन समझते हैं। उनका विचार था कि, ''साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीनता बनाता है। दूसरे शब्दों में उसी की बदौलत हमारे मन का संस्कार होता है। यही उसका उद्‌देश्य है।'' इसी हेतु प्रेमचन्द जी की दृष्टि से साहित्य ऐसा चाहिए कि, ''जिस में उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे।'' इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द जी साहित्य को व्यक्ति एवं समूह एवं समूह दोनों की उन्नति, विकास के साधन के रूप में देखना चाहते हैं।

सामाजिक कलाकार के नाते उनका साहित्य समाजसुधार के हेतु निर्मित था। उसमें प्रारम्भिक युग में भले ही आदर्श का आकर्षण रहा हो, धीरे–धीरे वह यथार्थ की ओर उन्मुख हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द जी ने जीवन को अनुभव की आँखों से देखा था और उसी के बल पर अपने साहित्य सिद्धन्तों का निर्माण किया था। उन्होंने कहा है, ''अपने मार्ग, अपने अध्ययन, अपनी फिलासफी के बिना कोई सच्चा कलाकार नहीं हो सकता। अपनी आँखों से जीवन देखो, अपने अनुभव से उसे जाँचो। जैसा पावो वैसा लिखो।'' प्रेमचन्द जी का यह दृष्टिकोण उनके साहित्यसृजन की प्रेरणा है। इसी के फलस्वरूप हमें प्रेमचन्द साहित्य में युगजीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है।

अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण के बावजूद प्रेमचन्द अपने जीवनादर्शों द्वारा साहित्य को लोकमंगल के काम में लगाना चाहते थे। मानवीय प्रेम उनके साहित्य का प्राणभूत तत्त्व है जो मनुष्य के भीतर सत्य एवं शिव की खोज करता है। वह मनुष्य के भीतर की भव्य प्रवृत्तियों और आत्मिक गुणों का विकास करना चाहता है। अपने साहित्य द्वारा वे जीवन के कलूष का निराकरण कर मनुष्य में सत्य, शिव और सौन्दर्य की अभिरुचि बढ़ाना चाहते थे, जो जीवन को ऊपर उठाए। साहित्य के प्रति अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—''साहित्यकार मानवता, दिव्यता, भद्रता का बाना बाँधे है। जो दलित, पीड़ित और वंचित है, व्यक्ति या समूह, उसकी वकालत और हिमायत करना उसका फर्ज है।'' उनके अधिकांश साहित्य पर यह उपेक्षा उठायी जाती है कि उस साहित्य में चित्रित जीवन यथार्थ का नहीं है। परन्तु प्रेमचन्द जी के जीवनदर्शन के सिद्धान्तों को समझ लेने पर स्पष्ट हो सकता है कि उन्होंने आदर्श को इतनी प्रधानता क्यों दी? वास्तव में यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रेमचन्द जी ने आदर्श को यथार्थ के धरातल पर ही खड़ा किया है। और उनकी आखरी रचनाओं में तो आदर्श की अपेक्षा यथार्थ का चित्रण अधिक है। 'गोदान' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

मानवजीवन के गम्भीर अध्येता एवं जानकार प्रेमचन्द जी जहाँ मनुष्य की कमजोरियों से परिचित थे। वहीं वे मनुष्य को उसके सामान्य धरातल से ऊपर उठाया चाहते थे। आदर्श के बहाने उसके जीवन में आस्था, आशावाद और मानवता को ऊँची प्रतिष्ठा देना चाहते हैं। उनके आखरी साहित्य में आदर्श और यथार्थ का सुन्दर समन्वय मिलता है। जो आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम से प्रख्यात है। उन्होंने व्यावहारिक धरातल पर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है, सच्चे कलाकार के रूप में नैतिक और ऊँचे जीवनदर्श प्रस्तुत किए हैं और समाज को मनुष्य के देवत्व की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया है। सेवाभावना के बारे में प्रेमचन्द कहते हैं—''सतयुग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी। त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से पर इस कलयुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा।'' (सेवासदन)

सच्चे साहित्यकार की कलात्मक ईमानदारी के साथ वर्तमान की व्याख्या करते हुए उन्होंने मानवधर्म का महान आदर्श साहित्य में उपस्थित किया। उनके जीवनदर्शन का वह सुन्दर प्रतिफलन है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'हिन्दी साहित्य' में प्रेमचन्द जी के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए उसके इसी जीवनदर्शन का गौरव किया है। वे लिखते हैं—''प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित और कृषकों की आवाज थे, पर्दे में अपमानित कैद, पद–पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे,

गरीबों और बेबसों के महत्त्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, सुख-दु:ख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिला सकता झोंपड़ियों से महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक; गाँव से लेकर धारासभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़कर मेंड़ों पर गाते हुए किसान को, अंत:पुर में मान किए प्रियतम को, कोठे पर बैठी हुई वार-वनिता को, रोटियों के लिए लचकते भिखमँगों को, कूट परामर्श में लीन गोयंदो को, ईर्षापरायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को, साहस परायण चमरिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीशाच अमीरों को देख सकते हैं और निश्चित होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा, वह गलत नहीं है। उनसे अधिक सच्चाई से जीवन की विविधता को दिखा सकने वाले परिदर्शक को अभी हिन्दी-उर्दू की दुनिया नहीं जानती। परन्तु सर्वत्र ही आप एक बात लक्ष्य करेंगे, जो संस्कृतियों और सम्प्रदायों से लद नहीं गए हैं, जो अशिक्षित और निर्धन है, जो गँवार और जाहिल है, वे उन लोगों की अपेक्षा अधिक आत्मबल रखते हैं और न्याय के प्रति अधिक सम्मान दिखाते हैं, जो शिक्षित हैं, जो सुसंस्कृत हैं, जो सम्पन्न हैं, जो चतुर हैं, जो दुनियादार हैं, जो शहरी हैं। यहीं प्रेमचन्द का अपना जीवनदर्शन है।

प्र.3. हिन्दी गद्य साहित्य में प्रेमचन्द युग का विस्तृत विवरण कीजिए।

उत्तर

प्रेमचन्द युग और उपन्याससम्राट प्रेमचन्द

प्रेमचन्द युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेषकर हिन्दी उपन्यास और कहानी के इतिहास को 'प्रेमचन्द युग' माना गया है। पहले उर्दू और बाद में हिन्दी में लेखन करने वाला यह साहित्यिक इतना महत्त्वपूर्ण था कि इतिहासकारों को उनके नाम पर एक-एक युग का हिस्सा करना पड़ा। कहानी और उपन्यास दोनों क्षेत्र में प्रेमचन्द जी का योगदान इतना अहम् इतना सजीव और परिणामकारक रहा कि हिन्दी साहित्य के विकास का कारण बन गया। उनके इस साहित्य की कुछ विशेषताएँ रही जो पाठकों को निरंतर आकर्षित करती रही और रुचिकर लगीं। वास्तविकता या यथार्थता एक ऐसी खूबी थी जिसने सामान्य पाठकों को अपनी ओर खींचा। सामान्य होकर भी सम्भवनीय कथाएँ, गलती करने वाले फिर भी निष्कपट चरित्र, सामान्य तथा निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले ढेर सारे पात्र, निजी अनुभवों की सच्चाई से ओत-प्रेत घटनाएँ ये सभी बाते उस काल के साहित्य की विशेषताएँ बनीं। नि:संदेह इसमें काफी बड़ा हिस्सा प्रेमचन्द जी के साहित्य का था।

प्रेमचन्द जी का पहला कहानीसंग्रह 'सोजेवतन' (1908) और पहला प्रौढ़ उपन्यास 'सेवासदन' प्रसिद्ध हुआ। इसके पहले साहित्य या उपन्यास केवल मनोरंजन करता था। अबकी बार वह लोकरंजक के साथ-साथ 'लोकरक्षक' बनने लगा। सत्य के साथ शिव और श्रेय भी पहचाने जाने लगा।

उन्नीसवीं सदी को पार करके बीसवीं सदी की शुरुआत में ही हिन्दी उपन्यास साहित्य की मजबूत नींव बनी। सामान्य नागरिकों की तरह कवि और लेखक भी स्वतंत्रता के सपने देखने लगे उनको वास्तव बनाने के लिए पाठकों के मन में स्वतंत्रता की उर्मि जगाने की चेष्टा करने लगे। समाज की खामियाँ यों ही अनदेखी न रही अब उनको स्वर मिला-व्यक्त रूप मिला-उपन्यासों के जरिये और कहानी या कभी कविता के रूप में।

'हंस' जैसी मासिक पत्रिकाएँ चलाना, 'भारतीय साहित्य परिषद्' का निर्माण होना, गांधी, नेहरू, तिलक जैसे नेता लोगों के भाषण से नवचेतना जगाना—ये सभी बातें एक जैसा माहौल तैयार कर सकीं जो भारत को आजादी के मार्ग पर अग्रसर कर सकीं। उसी समय हिन्दी उपन्यासों में उन्होंने पहली बार मनुष्य की प्रतिष्ठा की। हँसने-रोने वाला, परिस्थिति से प्रभावित होने वाला - उसे प्रभावित करने वाला मनुष्य। प्रेमचन्द जी के साहित्य का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उनसे पहले कोई पाठक हिन्दी उपन्यास की तरफ मुँह उठाकर देखता भी नहीं था वही आज हिन्दी उपन्यासों को पढ़ने के लिए बाध्य हुआ—तैयार हुआ। उसे पढ़ने में आनन्द प्राप्त करने लगा। प्रेमचन्द साहित्य ने हिन्दी में एक युगान्तर उपस्थित किया।

साहित्य जगत में कहानीकार जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर कौशिक, सुदर्शन जी के साथ-साथ जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय' आदि लेखक उभरकर आए तो इन्हीं के साथ उपन्यासों में प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल शर्मा, सियारामशरण गुप्त आदि उपन्यासकार भी बहुत लोकप्रिय रहे।

साहित्य के इस माहौल का सर्वाधिक श्रेय तो प्रेमचन्द जी ही पा सके। उनका योगदान सर्वाधिक तो था ही जबकि एक ठोस धरातल पर भी खड़ा था।

TOUCH 'n PASS

मन में विश्वमंगल की कामना लेकर चले इस लेखक ने सैकड़ों कहानियाँ, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि, सेवासदन, गोदान, निर्मला जैसे सशक्त उपन्यास लिखें। तीन तपों की साहित्यसेवा तथा साहित्य निर्माण से उन्होंने उपन्यास साहित्य को एक कड़ी प्रदान की। उस कड़ी ने उन्नीसवीं सदी की आखरी कड़ी से एक तरफ जोड़ किया तो दूसरी तरफ आने वाले काल के लिए पृष्ठभूमि तैयार करके रखी। इस काल में हिन्दी साहित्य में उपन्यास का विकास हो गया। यही काल 'प्रेमचन्द युग' नाम से पुकारा गया।

उपन्याससम्राट प्रेमचन्द

समयोचित लोकप्रिय, मशहूर, सशक्त और प्रभावकारी उपन्यास लिखकर प्रेमचन्द ने हिन्दी को समृद्ध किया। केवल समृद्ध ही नहीं किया बल्कि हिन्दी के व्यावहारिक और साहित्य भाषा को इतना अभिन्न व एकरूप मिलाप किया कि दोनों में अन्तर ही नहीं रहा। उन्नीस सौ से लेकर चार दशकों का सामाजिक इतिहास मानो उन्होंने अपने उपन्यासों में बंदिस्त कर दिया। हिन्दी को यथार्थ की धरापर चलना सिखाया। हिन्दी साहित्य को गतिमान किया। इसी गति को लेकर हिन्दी अपना विकास कर सकी।

विविध वर्गों में अपनी विशेषताओं के साथ बसे समाज का हुबहू चित्रण प्रेमचन्द जी के साहित्य का अविभाज्य अंग बना। समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों के साथ मानवी मन के अन्तर्विरोध के भी दर्शन उनके साहित्य में हुए हैं। आपसी सम्बन्ध, बदलते हुए उनके रूप, आपसी रिश्तों की उलझने, पाश्चात्य संस्कृति का आकर्षण, अमीरी गरीबी का खींचा–तनाव–आर्थिक असमतोल इसी में अशिक्षा, अंधविश्वास का बोलबाला परिणामत: समाज का बना व्यामिश्र स्वरूप प्रेमचन्द जी ने समाज के ही सामने साहित्य के जरिए खुला किया। उपन्यास लेखकों के सामने नयी राहें तैयार की, उनका पथप्रदर्शन किया।

हिन्दी साहित्य में रहे मौलिक उपन्यासों के अभावों को प्रेमचन्द जी के उपन्यासों ने दूर किया।

इसके लिए गबन, गोदान, सेवासदन, निर्मला, कर्मभूमि जैसे उपन्यासों की निर्मिति हुई। समस्त भारतीय जनता के प्रति खास करके 'सामान्य' के लिए मन में असीम सहानुभूति लेकर उनकी कलम क्रियाशील बनी। दलित–पतितों, गरीब किसानों, पीछड़े वर्ग के अनाड़ी कामगारों के साथ–साथ उपेक्षित नारियों के प्रश्न–उनकी समस्याएँ भी उन्हें इशारा करके बुलाने लगीं। बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतिनिधियों को भी उन्होंने अंतर्मुख किया, जागरूक किया।

इसी कारण सामान्य किसान होरी, मिलमजदूर अंधा सूरदास, मजबूर वेश्या सुमन, असहाय नारी निर्मला निर्माण हुई। भारतीय संस्कृति के मूलाधार को पकड़े रहकर ये चरित्र सामाजिक मूल्यों को सँभालते रहे। लेखक 'प्रेमचन्द' ने उन्हें इसके काबिल बनाया। यह प्रेमचन्द जी के सशक्त कलम की सामर्थ्य और महिमा है।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में कुछ कमियाँ देखने वालों को लगता है कि उन्होंने मानसिक विकृति तथा स्त्री–पुरुष सम्बन्धों से निर्मित प्रश्नों का उहापोह नहीं किया – या कम किया। कुछ बोझिलपन महसूस कराते हैं। उनकी लेखन शैली विस्तृतता के कारण कहीं–कहीं नीरस बनी है – बड़े–बड़े लम्बे वाक्य तथा मुहावरेदार भाषा में एक बात को स्वीकारना पड़ेगा कि ऐसे उपन्यासों के या कहानियों के पात्र चुनते समय उन्होंने साहित्य की कलात्मकता की अपेक्षा यथार्थ को चुना। रोजमर्रा जिंदगी के प्रश्न, उलझनें उन्हें अधिक महत्त्वपूर्ण लगी।

कुल ग्यारह उपन्यास लिखकर क्या शहरी क्या देहाती, सभी जगहों के सभी वर्गों के चित्र उनमें पाए जाते हैं। एक बहुत बड़े साहस के साथ समुचे भारत का चित्र प्रेमचन्द जी ने पाठकों के सामने रखा। समय की माँग के अनुसार एक लेखक का देशसेवक का जिम्मा भी निभाया। उनकी कलम उनका शस्त्र बनी। पर इस शस्त्र ने कत्ल की जगह जागरण किया। दिल को छू लेने वाली, क्रियाशील बनाने वाली इस उपन्यास सृष्टि ने ही उनको 'उपन्याससम्राट' बना दिया।

प्र.4. गबन उपन्यास के कथानक का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

गबन उपन्यास के कथानक

'गबन' प्रेमचन्द जी के श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यासों में से एक है। महाशय दीनदयाल की जालपा यह इकलौती बेटी है। उसका बचपन मैके में लाड प्यार में बीता है। उसके पिता गुड़िया–खिलौनें के बजाय, कभी प्रयाग जाते तो कोई न कोई आभूषण ले आया करते थे। माता मानकी को भी गहनों से लगाव है। अत: जालपा को गहनों के प्रति प्रेम आकर्षण विरासत में ही मिला है। मुंशी दयानाथ कचहरी में नौकर हैं जिनका बड़ा बेटा रमानाथ है, जो दो महीने कॉलेज जाकर पढ़ाई छोड़ घर बैठा है। उसी के साथ जालपा की शादी तय होती है। शादीं के वक्त मुंशी दयानाथ चढ़ावे में भेजने के लिए गहने बनवाते हैं, उनकी कीमत उधार रखतें हैं। चढ़ावे में आए गहनों के बीच चन्द्रहार न पाकर जालपा बहुत दुखी हो जाती है। सारे गहने जैसे क्षुद्र लगते हैं – चेहरे में एक आँख न होने से जैसे चेहरा विद्रूप लगेगा – जालपा को बाकी के गहने जैसे अर्थशून्य महसूस होते हैं। वह उदास बन जाती है। जब उधार चुकता नहीं कर पाते तो सराफ को गहने लौटाने का वादा करते हैं। नयी बहू से उसके गहने वापस माँगे भी नहीं जा सकते। अत:

रमानाथ गहने चोरी होने का नाटक रचता है। खुद ही जालपा के गहने उठाकर सराफ को दे आता है। लेकिन जालपा को यह बताया जाता है कि गहने चोरी हो गए। जालपा की उदासी बढ़ जाती है।

अब जालपा की इच्छाएँ पूरी करने के लिए रमानाथ को नौकरी ढूँढ़ना आवश्यक हो जाता है। म्युन्सिपल बोर्ड के हेडक्लर्क रमेश बाबू की पहचान से रमानाथ तीस रुपये माहवार की नौकरी पाता है। परन्तु पत्नी की नजरों में बने रहने के लिए वेतन बढ़ा चढ़ाकर बता देता है। अपने पिता दयानाथ की खस्ता हालत होते हुए भी जालपा से यही कहता है कि उनके नामपर बैंक में हजारों रुपये जमा हैं। जालपा भी अपने ससुराल तथा पति की आर्थिक स्थिति सम्पन्न है, – इस भ्रम में रहती है। गहने ना होने की वजह से जालपा कहीं बाहर आना जाना भी छोड़ देती है। रमानाथ उसके नए गहने बनवाने के लिए मजबूर हो जाता है। लेकिन तीस रुपये माहवार की नौकरी में वह करे भी तो क्या क्या? अत: गहने फिर से उधार ही लाने का सिलसिला शुरू होता है।

इसी बीच जालपा और रमानाथ की पहचान हाईकोर्ट के वकील पं० इन्दुभूषण और उनकी पत्नी रतन से होती है। उनके अमीरी तौर तरीके रमानाथ और जालपा को और महँगी खरीदारियाँ करने के लिए उद्युक्त करते हैं। जालपा भी अब नए आभूषण पहनकर मुहल्ले की स्त्रियों के साथ आए दिन सैर सपाटे के लिए निकलती है। रमानाथ भी उसे खर्चे के लिए पैसे देने से नहीं कतराता। इन सब खर्चों का परिणाम यहीं होता है कि रमानाथ के सिरपर उधार और कर्ज का बोझ बढ़ जाता है, जिससे गला छुड़ाने के लिए उसे नौकरी में गबन करना पड़ता है।

पुलिस के डर से वह घर छोड़ कर कलकत्ता भाग जाता है। रेल के सफर में उसका परिचय देवीदीन से होता है, जो उसे टिकट के पैसे बड़े विश्वास से देता है। देवीदीन जो पहले डाकिया था कलकत्ते में शाक भाजी की दुकान है। बाद में रमानाथ उसी के पास ठहरता है। देवीदीन और उसकी पत्नी जग्गो उसे अपने बेटे की तरह पालते हैं। रमानाथ उनके घर कई महीने रहता है। पर एक दिन पुलिस के हाथों में आ जाता है। उस वक्त वह बहुत घबरा जाता है, उसे लगता है कि उसने किए हुए गबन के कारण पुलिस उसकी तलाश में थी और अब उसी गुनाह के लिए वह अब पकड़ा गया है। असलियत यह होती है कि रमानाथ के नाम पर किसी गबन का केस दर्ज ही नहीं होता। रमानाथ के घर से निकलते ही उसके पीछे जालपा गहने बेचकर पैसे ऑफिस में जमा कर देती है। किन्तु लज्जावश रमानाथ घर से कोई सम्पर्क नहीं रखता और अपने बेगुनाही से अनजान ही रहता है। पुलिस उसके इस अज्ञान का फायदा उठाकर उसे एक डकैती के केस में झूठी गवाही देने के लिए सरकारी गवाह बना देते हैं। केस खत्म होने तक उसे एक बंगले में पुलिस की हिरासत में ही रखते हैं।

जालपा रमानाथ को खोजती हुई कलकत्ते आती है। अपनी सहेली रतन से पता चलने पर जालपा रमानाथ को ढूँढ़ निकालती है। इसके लिए वह रमानाथ के शतरंज खेलने के शौक का बड़ी खूबी से उपयोग करती है। जब उसे रमानाथ की सरकारी गवाह बनने की खबर मिलती है, वह उसकी खूब भर्त्सना करती है। तथा उसके नाम पर कोई गबन नहीं है इसकी जानकारी भी देती है। पुलिस की हिरासत में रहे रामनाथ से सम्पर्क करना आसान नहीं रहता। इस काम में भी देवीदीन उसकी मदद करता है। जालपा देवीदीन के ही घर में रहती है। देवीदीन जग्गों के साथ उनकी बेटी बनकर रहती हैं। रमानाथ न्यायालय में पुलिस के खिलाफ जाकर सच्ची गवाही देने का धैर्य नहीं जुटा पाता। अत: उसकी झूठी गवाही पर चौदह बेगुनाह व्यक्तियों को सजा मिलती है। जिनमें एक को तो फाँसी की सजा सुनायी जाती है। रमानाथ की इस कायरता पर जालपा बहुत क्रोधित होती है और उससे अपने सम्बन्ध तोड़ देती है। फाँसी की सजा हुए दिनेश के घर की जिम्मेदारी वह उठाने लगती है। बहुत कष्ट उठाती है। पुलिस के लिए काम करने वाली जोहरा नाम की वेश्या से जालपा की पूरी जानकारी रमानाथ को मिलती है, जिससे उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह न्यायाधीश से मिलकर अपनी झूठी गवाही का बयान देता है। पुलिस कर्मियों के गलत हथखण्डे भी स्पष्ट हो जाते हैं। मुकदमा फिर से चलता है और न्याय सच्चाई को मिलता है। सभी निरपराधियों को छोड़ा जाता है। किन्तु झूठी गवाही देने का केस रमानाथ पर होता है। न्यायालय में जालपा की गवाही का विशेष असर होता है और रमानाथ भी बरी हो जाता है।

जोहरा जो विशेष सहायता रमानाथ और जालपा को करती है, अन्त में अपना कुमार्ग छोड़कर उनके साथ हो लेती है। देवीदीन और रमानाथ प्रयाग के समीप जमीन लेकर खेतीबाड़ी करते हैं, गाय भैंसे पालते हैं। उनके साथ रमानाथ के माता-पिता भी रहते हैं। जालपा की सहेली रतन और जोहरा भी है। रतन की दीर्घ बीमारी से मृत्यु हो जाती है। रतन की बीमारी में जोहरा उसकी बहुत सेवा करती है। जोहरा गंगानदी में एक दुर्घटना में डूबकर मर जाती है। उसकी स्मृति के सहारे जालपा और रमानाथ अपना आगे का जीवन व्यतीत करते हैं।

गबन उपन्यास पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो खण्डों में विभाजित है। पूर्वार्ध में रमानाथ के घर की पारिवारिक समस्या को चित्रित करके रमानाथ द्वारा दफ्तर में गबन करने तक की कथा का समावेश है। जालपा का आभूषण प्रेम उसके साथ रमानाथ-जालपा की प्रदर्शन भावना मिथ्या गौरव की प्रवृत्ति, कर्जखोरी, समाज मान्यता के ढकोसले आदि तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का वर्णन

इसमें आता है। परन्तु उत्तरार्ध की शुरुआत रमानाथ के इलाहाबाद से कलकत्ता पहुँचने से होती है। कथा में एक दिलचस्प मोड आता है। प्रेमचन्द जी रमानाथ की कहानी लिखते–लिखते उसका रूख राजनीतिक बन जाता है। क्रांतिकारियों के खिलाफ गवाही देने के लिए उसे मजबूर किया जाता है। यह सब घटना –पूर्वार्ध से उत्तरार्ध का जोड़ इतना स्वाभाविक कुशलतापूर्वक बना दिया गया है कि जोड़ का पता ही नहीं चलता।

दरअसल बात यह है कि प्रेमचन्दजी एक सहृदय कलम के सिपाही रहे। समाज में स्थित चेतना का एहसास प्रेमचन्द जी को इतना जबरदस्त था कि उनकी साहित्यिक कृतियाँ उस चेतना से सम्बन्धित घटना दखलअंदाज न कर सकीं। 20 मार्च, 1229 के आस–पास ब्रिटिशों द्वारा बहुत लोगों की जो धर–पकड़ हुई उन पर झूठे मुकदमे चलाए गए, क्रांतिकारियों की सरगर्मियाँ बढ़ी इन सभी बातों ने प्रेमचन्द जी को प्रभावित किया।

'गबन' उपन्यास की कथावस्तु में दिखाई देने वाला सुन्दर जोड़ इसी कारण 'बेजोड़' बनकर सम्भवनीय तथा विश्वासाही बना है।

प्र.5. प्रेमचन्द जी के गबन उपन्यास की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में समस्याएँ

समस्यामूलक उपन्यासकार को कला का उपयोगितावादी दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है। उसका उद्देश्य सामाजिक रहा है। समस्या को आधार मानकर उपन्यासकार वस्तु की रचना करता है। जीवन की घटनाओं का वह इस तरह संकलन करता है कि समस्या पाठकों के सामने धीरे–धीरे आती जाए और आगे चलकर पूरे उपन्यास पर छा जाए। इस क्रिया में सामाजिक व राजनीतिक परिपार्श्व की बड़ी अपेक्षा रहती है। समस्यामूलक उपन्यास में कथा का विकास विशिष्ट दृष्टिकोण लेकर होता है।

उपन्यासकार का यह उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना नहीं होता। उसे तो यथार्थ की कठोर भूमि पर खड़े होकर अपनी कृति का निर्माण करना होता है। जिस समस्या को लेकर वह चलता है और जो उस समस्या को देखने का दृष्टिकोण होता है उसी की पूर्ति भावना को सामने रखकर वह कथा सामग्री एकत्र करता है।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में यही 'समस्या' उनका बलस्थान है। उनके प्राय: सभी उपन्यासों में कोई–न–कोई प्रमुख समस्या मिलती है। प्रमुख समस्या के साथ–साथ अन्य समस्याओं की झलक भी प्रत्येक उपन्यास में विद्यमान है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्दयुग एक ऐसा युग आया जब देश को भयावह परिस्थितियों से गुजरना पड़ रहा था। इस युग में देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति असंतोषजनक और विषमता से परिपूर्ण थी। इस विदारक स्थिति में प्रेमचन्द जी हृदय व्याकुल होकर तत्कालीन जीवन और युग का चित्रण आपने साहित्य में प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण तत्कालीन समाज में स्थित समस्याओं का उद्घाटन हमें उनके उपन्यासों में मिलता है। समाज के हर स्तर की, समस्याओं को उन्होंने अपने साहित्य में स्वर दिया है।

सन् 1931 में लिखा गया 'गबन' प्रेमचंद जी का ऊँचे दर्जे का सामाजिक उपन्यास है। इसमें हमें कला एवं दृष्टिकोण की परिपक्वता देती है। पं० नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार, ''इसमें प्रेचमंद जी ने सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को साथ–साथ प्रदर्शित किया। मध्यवर्गीय परिवारों में जो दिखावा अथवा ढकोसाला पाया जाता है वह गबन में बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है।''

मध्यवर्गीय भारतीय नारी में परंपरा से चली आ रही गहनों की लालसा कहानी के प्रथम भाग में केन्द्र बनी है। गबन की नायिका जालपा को बचपन से ही गहनों का अधिक शोक है। रमानाथ और जालपा नवविवाहित दम्पति है। रमानाथ जालपा से अत्याधिक प्रेम करता है पर वह उससे अपनी आर्थिक स्थिति को सदैव छिपाए रहता है यह उपन्यास का मनोवैज्ञानिक प्रेरणा–सूत्र है। पत्नी की संतुष्टि के लिए अपनी सामर्थ्य के बाहर जाकर वह गहने लाता है। उन गहनों की उधारी चुकाने के लिए ऐसे उपायों का आश्रय लेता है जो उसे अधिकाधिक कठिन परिस्थितियों में डाल देते हैं।

जालपा का आभूषण प्रेम उसकी बाल्यावस्था से सम्बन्ध रखता है क्योंकि वह ऐसे ही वातावरण में पली जहाँ गहने की स्त्रियों के सर्वस्व हैं। उसके पिता उसे खेलने के लिए खिलौने न लाकर गहने ही लाते हैं। बचपन में जब जालपा अपनी माँ का चंद्रहार देखती है तब अपने लिए भी बनवाने का आग्रह करती है। उस वक्त उसकी माँ उसे, 'तेरे लिए चंद्रहार तेरे ससुराल से आयेगा' कहकर संतोष दिलाती है। बचपन में मिले इस संस्कार के कारण ही जालपा ससुरालवालों से या अपने पति से गहनों की सदैव अपेक्षा करती रहती है। म्युन्सिपल ऑफिस में लगी मामुली सी नौकरी में अपने पति की आमदनी क्या होगी यह सोचना वह जरूरी नहीं समझती। रमानाथ भी अपनी सुंदर नवविवाहिता को प्रसन्न रखने के लिए 'ऊपरी आमदनी' उस पर लुटाता रहता है तथा अपनी सही स्थिति का ज्ञान जालपा को कभी होने नहीं देता। 'गबन' उपन्यास का हर स्त्री पात्र गहनों की लालसा का शिकार है। जालपा (नायिका) बचपन से गहनों के साथ खेलती पली–बड़ी हुई है। रतन की 'कंगन' की हवस ही रमानाथ को आकर्षित करती है गबन के लिए खटीक देवीदीन की पत्नी जग्गो का आभूषण प्रेम ही देवीदीन को मनिऑर्डर का पैसा 'गबन' करने के लिए मजबूर बनाता है।

गृहस्थि में अपनी सीमित आय में अपने खर्चों को भी सीमित रखना अनिवार्य होता है। परन्तु युवावर्ग में मनोरंजन, फैशन तथा विलासी रहन-सहन पर अपनी हैसियत से अधिक खर्चा करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। गबन में प्रेमचंद्र जी ने जालपा और रमानाथ के द्वारा इसी विवेकहीन प्रकृति पर प्रकाश डाला है। आमदनी अठ्ठनी खर्चा रुपया अर्थात् आय से अधिक व्यय करेंगे तो यह फर्क पूरा करने के लिए गबन का सहारा लेना पड़ेगा। रमानाथ कोई सटा हुआ बदमाश नहीं है। इसीलिए पहली बार थोड़ी सी रकम का गबन करते हुए भी वह घबराकर गाँव छोड़कर भाग जाता है। उसकी बदनसीबी में वह पुलिस की गिरफ्त में आ जाता है और पुलिस रमानाथ की स्थिति का गलत फायदा उठाते हुए उसे झूठी गवाही देने के लिए सरकारी गवाह बना देती है। उसकी झूठी गवाही से स्वतंत्रता आंदोलन के बेगुनाह सहयोगी को मृत्युदंड या उमरकैद की सजा मिलने की व्यवस्था होती है। इसके उपरान्त जालपा का कलकत्ते आना, रमा की विवेकबुद्धि जागृत कर उसे झूठी गवाही न देकर सच्ची गवाही देने के लिए बाध्य करना, पुलिस के चंगुल से छुड़ाने की कोशिश करना आदि महाभारत 'गबन' के उत्तरार्ध में आता है। वह पढ़ते हुए पाठक के मन में बार-बार यही विचार आता है—काश! अगर रमानाथ ने अपनी पत्नी के सामने पहले ही अपनी स्थिति का सही बयान किया होता और अपनी आय देखकर ही खर्चे किये होते तो इतनी सारी जब्त उठाने की नौबत ही उसपर ना आती। उपन्यास पढ़ते हुए ऐसे विचार मन में आना, यही इस उपन्यास की सफलता है। मध्यवर्ग की अपनी झूठी शान दिखाने का दंभ, उसका खोखलापन यही दर्शाना प्रेमचंद्र जी चाहते थे।

गबन में इस प्रकार के खोखले दंभ का शिकार केवल रमानाथ ही नहीं है, उसके माता-पिता भी इसी व्यवस्था के शिकार हैं। रमानाथ की शादी के समय उधार लाये हुए गहने चढ़ावे में देना तथा उधारी चुकाने का कोई मार्ग नहीं है यह देख कर अपनी ही बहु के गहने चोरी होने का स्वांग रचा कर गहने लौटा देना। उनके ये कारनामे उनकी आयु को शोभ नहीं देते। उनके चरित्र से भी प्रेमचंद जी अपनी दांभिक परंपराओं तथा कुरीतियों पर व्यंग कसते हैं। देवीदीन जैसे समझदार वृद्ध के मुँह से इन गहनों की लालसा पर मार्मिक वक्तव्य रचते हैं—"जहाँ देखे—हाय गहने, हाय गहने, गहने के पीछे जान दे दे, घर के आदमियों को भूखे मारे, घर की चीजें, और कहाँ तक कहूँ अपनी आबरू तक बेच दे। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सबका यही रोना लगा हुआ है।"

प्रेमचंद जी ने 75 साल पूर्व लिखा यह उपन्यास जिस समस्या का उद्घाटन करता है, उसे वर्तमान परिप्रेक्ष में रख कर देखे तो यही समस्या आज भी उसी प्रकार चुभती नजर आती है। आजकल घर, मोटर तथा घर की आरामदायी वस्तुओं के लिए बड़ी सहजता से कर्ज मिलता है। लेकिन कर्ज की किश्तें और ब्याज चुकाते वक्त आदमी बेहाल हो जाता है। आराम की चीजों के लिए सुख चैन, हराम हो जाता है।

स्थल-काल की सीमा से परे होकर भी अपना प्रभाव कायम रखे तो वह कलाकृती महान कहलाती है। इसीलिए गबन जैसा उपन्यास पाठकों को आज भी प्रभावित करता है।

गबन की समस्याएँ

गबन में तात्कालिन धार्मिक स्थिति के संकेत भी मिलते हैं। बड़े-बड़े सेठ दिनभर कारखानों में मजदूरों पर अत्याचार करके धन कमाते थे और संध्या के समय कम्बल, रोटी आदि का दान करके पुण्य प्राप्त करने का प्रयास करते थे। देवीदीन के शब्दों में 'यदि साल मे दो-चार हजार दान न कर दें तो पाप का धन पचे कैसे?'

'गबन' में तद्युगीन समाज का चित्रण भी अत्यंत व्यापक रूप में किया गया है। मध्यवर्गीय समाज का आभूषण प्रेम, मिथ्यादर्शन, विधवा-विवाह, अनमेल ब्याह, रिश्वत आदि अनेक समस्याएँ अत्यंत मुखर रूप में प्रस्तुत की गई हैं। मध्यवर्ग का अंतर्विरोध बहुत ही स्पष्टता से वर्णन किया है। भारत का नेतृत्व भविष्यकाल में यही वर्ग करेगा इस विचार से रमानाथ के पात्र को उन्होंने चितारा है। मध्यवर्ग की खामियाँ वह अभी जान ले तो संभाव्य भूमिका भी पहचान सकेगा, खुद में सुधार ला सकेगा। शायद इसी समस्यापूर्ण वातावरण का चित्रण 'गबन' में आया है।

अभावग्रस्त जिंदगी से शायद छुटकारा पाएगा इसलिए वह रिश्वत लेना तक पसंद करता है। श्वित से मनुष्य स्वाभिमानहीन बन जाता है। ईमान तथा कर्त्तव्य को भूलकर उसका लालच बढ़ जाता है। महत्त्वकांक्षाएँ बढ़ जाती हैं। एक से जुड़ा दूसरा फिर तीसरा .... चौथा—हर आदमी इसी मार्ग को अपना लेता है। बेशर्मी बढ़ जाती है—फिर स्वाभिमान का ह्रास .... समाज के आरोग्य के लिए बहुत बड़ा खतरा था। प्रेमचंद जी ने द्रष्टा वैद्य बन कर इसका निदान किया। इस समसया को विस्तृत कॅनव्हास पर चितारा।

औरतों की हालत—एक विवाहित स्त्री हो या विधवा हो—सभी काल में—बहुत ही शोचनीय, दुखभरी थी। घर की औरतें किसी तरह सम्पत्ति में हकदार न थी—रतन के पति तो वकील थे पर उन्होंने रतन के लिए वसिहतनामे में कुछ भी नहीं छोड़ा था।

TOUCH 'n PASS

प्र.6. गबन उपन्यास के पुरुष पात्रों के चरित्र का विवरण दीजिए।

उत्तर

गबन उपन्यास के पुरुष पात्र

1. रमानाथ

रमानाथ नायिका जालपा का पति—'गबन' का महत्त्वपूर्ण पात्र है। यह दयानाथ का बड़ा बेटा है। तत्कालिन मध्यवर्ग की अगली पीढ़ी का प्रतिनिधि। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त रमानाथ का 'स्व' केवल खुदतक सीमित है। उसमें दिखावा और नुमाईश दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रमानाथ मध्यवर्गीय एक सामान्य युवक है। आदमी में पाए जाने वाले गुण–अवगुण, अच्छाइयाँ–बुराइयाँ हम उस में पाते हैं। शायद इसीलिए प्रेमचंद जी का यह नायक हमें सच्चा लगता है।

अच्छे रूपरंग का, आकर्षक व्यक्तित्व का यह युवक टेनिस और शतरंज में निपुण है। उपन्यास के आरम्भ में वह कॉलेज की पढ़ाई छोड़ कर दोस्तों के साथ समय बरबाद करते हुए हमें दिखाई देता है। विलासी रहन–सहन उसे बहुत पसंद है। मगर नौकरी का कोई ठिकाना नहीं। इन कमियों के बावजूद एक गुण उसमें है—उसकी सच्चाई। अपनी पत्नी, जालपा से सच्चे मन से प्यार करता है। अत: जालपा के कहने से ही नौकरी करने के लिए तैयार हो जाता है। नौकरी पाते ही जालपा को खुश रखने के लिए उधार में ही गहने खरीद लाता है। उस पर रोब जमाने के लिए उससे अपनी तथा अपने पिता की झूठी शान दर्शाता है। इस प्रकार झूठ बोलने का तथा उधार में चीजे लाने का बोझ उसके मन पे लगा रहता है। किन्तु अपनी पत्नी का खिला हुआ चेहरा देख कर वह सब परेशानियाँ भूला देता है। नौकरी में भी 'ऊपरी' आमदनी का लालच उस पर झट सवार होता है। पत्नी को लेकर आए दिन थिएटर जाना, इसके लिए रिस्टवॉच, सैण्डल जैसी गैरजरूरी चीजों पर पैसा बरबाद करना यह शौक उसे लगते हैं। महिना तीस रुपये आमदानी पर रमानाथ सैकड़ों की उधारी करता है। परिणाम स्वरूप नौकरी के पैसे में गबन करना पड़ता है। केवल तीन सौ रुपये के लिए यह गलत काम वह करता है और बाद में पकड़े जाने के डर से यह सीधा सादा युवक घर, गाँव छोड़कर भाग जाता है। उसने गुनाह तो किया है किन्तु वह कोई छटा हुआ बदमाश नहीं है। अत: कलकत्ते में भी एक दिन उसके इसी भोलेपन के कारण वह पुलिस की पकड़ में आ जाता है। रमानाथ समझता है कि उसने किए हुए गबन के कारण पुलिस ने उसे पकड़ा है। चालबाज पुलिस उसे एक डकैती के केस में झूठ–मूठ का सरकारी गवाह बनाती है। उसे सरकारी नौकरी का लालच दिया जाता है। कोर्ट में केस चलने तक पुलिस उसे ऐषो आराम से रखती है। इतना ही नहीं उसके मनोरंजन के लिए जौहार नामक वेश्या का भी प्रबंध किया जाता है।

यहाँ पर प्रेमचंद जी रमानाथ के मनोभावों का चित्रण बड़ी गहराई से करते हैं। रमानाथ एक तरफ से झूठी गवाही देने के इस नीच कर्म से कतराता है, तो दूसरी तरफ स्वयं किए गुनाह से बचना भी चाहता है। पुलिस हीरासत का ही सही मगर यह विलासी जीवन उसे आकर्षित करता है। जालपा के सामने वह कबूल करता है कि 'क्यों मुझे उस ऊँचाई पर चढ़ाना चाहती हो, जहाँ पहुँचने की शक्ति मुझ में नहीं हैं।' निश्चय की दृढ़ता न होने के कारण रमानाथ इस तरह भटक जाता है। किन्तु जब जालपा उसकी तीखें शब्दों में निर्भर्त्सना करती है, उससे रिश्ता न रखने की बात करती है, रमानाथ की आँखे खुल जाती हैं। वह सन्मार्ग पर आता है। न्यायाधीश से जाकर असलियत बता देता है, अब उसे सजा का भय नहीं हैं। अपनी संकोचवृत्ति के कारण अस्थिर एवं डाँवाँडोल और दुर्बल है। उसमें आवश्यक व्यावहारिक बुद्धि का अभाव है। वह अकर्मण्य, सुखापेक्षी, परान्नभोगी है। वह स्वयं उलझन में पड़ता है, अपने मित्रों को भी उलझन में डालता है। अव्यवहारी, स्वयं पुलिस के हाथों में फँस जाता है।

यह सच है कि रमानाथ के द्वारा प्रेमचंद जी एक हाड–मांस का इसी धरातल का एक नायक प्रस्तुत करते हैं। थोड़ा निठल्लू, भोग विलास की तरफ शीघ्र आकर्षित होने वाला परन्तु पत्नी से सच्चा प्यार करने वाला, देवीदीन–जग्गो तथा जोहरा के उपकारों को न भूलने वाला यह नायक पूरे उपन्यास पर छा जाता है।

2. देवीदीन

देवीदीन साठ साल का बूढ़ा है। जाति से खाटिक है और उसकी कलकत्ते में साग–भाजी की दूकान है। रमानाथ प्रयाग से भाग निकलता है तब देवीदीन रमानाथ की मदद करता है। रेलगाड़ी से लेकर उपन्यास के अंत तक वह रमानाथ का मददगार बनता है। साग–भाजी की दूकान वाला निम्न स्तर का आदमी सामान्य जीव नहीं है। उसके मन में देशभक्ति की ललक है। स्वदेशी के अभियान का वह सच्चा अनुयायी है। उसके दोनों बेटे इस स्वदेशी अभियान में शहीद हो गए हैं; इस बात का उसे गर्व है। इतना साहस, इतना धैर्य एक अनपढ़ छोटे आदमी में देख कर पाठक दंग रह जाता है। उस वक्त के दांभिक नेताओं पर भी देवीदीन ताने कसता है। बाहर स्वदेशी का नारा लगाने वाले अपने घर में दियासलाई से लेकर मोटर कार तक विदेशी वस्तुओं का उपयोग करते

TOUCH 'n PASS

हैं। उनकी कथनी और करनी का अंतर देवीदीन को चोट पहुँचाता है। वह कहता है, ''अभी तो तुम्हारा राज नहीं हैं, तब तो तुम भोग विलास पर इतना मरते हो, तुम्हारा राज आ जाएगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।'' 1931 में लिखे गए इस उपन्यास में प्रेमचंद जी ने भविष्य की यथार्थ अटकल लगायी थी।

देवीदीन पहले रमानाथ की हर तरह से मद्द करता है। पुलिस की हीरासत में उसके चले जाने के बाद उसी तरह वह जालपा की भी मद्द करता है। मानो हर युवा में वह अपने बेटों की छवि देखता है और उन्हें अन्याय से जुझने में हर संभव मद्द करता है। अंत में प्रयाग के पास एक देहात में जमीन लेकर खेती करता है। उसने अपने साथ रमानाथ के परिवार को रखा है और रतन तथा जोहरा को भी आश्रय दिया है। जोहरा की पिछली जिंदगी के बारे में लोगों के मन में शंका न उठे इसलिए वह बड़े मन से उसे अपनी बेवा बहु मानता है। इस प्रकार प्रेमचंद जी देवीदीन खाटीका का चरित्र एक ऊँचाई पर ले आते हैं। पाठकों के लिए अपने साहित्य में छोटे-से-छोटे आदमी का भी आदर्शपाठ बना देते हैं।

3. दयानाथ

प्रेमचंद जी उपन्यास को मानवी चरित्र का चित्र समझते थे तथा मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यासकार का जिम्मा समझते थे। इसके लिए विविध पात्रों की योजना करते हुए 'गबन' उपन्यास में उन्होंने दयानाथ का सृजन किया। 'दयानाथ' 'गबन' उपन्यास के नायक रमानाथ के पिता हैं। इलाहाबाद में रहते हैं।

मुन्शी दीनदयाल के पहचान के होने से वे अपनी बेटी जालपा का ब्याह दयानाथ के बेटे रमानाथ से कराते हैं। उन्हें ज्ञात है कि दयानाथ कचहरी में पचास रुपये माहवार पाने वाले नौकर थे।

ऊँचे आदर्शोंवाले दयानाथ रिश्वत लेना हराम की बात मानते थे। समझदार व्यक्ति थे। अपने आस-पास रिश्वतखोरी के घोर परिणाम देख कर उनकी यह धारणा बनी थी कि रिश्वत का पैसा यूँ ही चला जाता है।

खुद सज्जन और सहृदय व्यक्ति है और मध्यवर्ग के प्रतिनिधि। कोई आदर्शवाद को लेकर चलने वाले नहीं परन्तु मध्यवर्ग की सतर्कता जागरुकता उनमें थी। शायद इसी कारण रमानाथ की शादी करने के लिए वे तैयार नहीं हैं क्योंकि अभीतक वह कुछ कमाने नहीं लगा है। दीनदयाल का प्रस्ताव और रामेश्वरी की इच्छा के सामने 'ना' कहने की जगह वे इस विवाह में शरीक होना पसंद करते हैं। विवाह का खर्चा उठाने की बात आती है तो एक बार फिर वे ना हाँ कहते हैं ना-ना कहते हैं। कर्जा लेना भी नहीं चाहते और ना ही अपनी आँखों के सामने होते खर्च पर पाबंदी लगा सकते हैं। प्रेमचंद जी के शब्दों में 'अपनी हार को छिपाने का उनके पास यही साधन था।'

दयानाथ का यह सामान्य होना, परास्त होना उनका स्वभाव बन गया है। रामेश्वरी तथा रमानाथ के मुँह से रिश्वत की बात निकलती है तब भी वे कह उठते हैं, 'जो बात जिंदगी भर नहीं की वह अब आखिरी वक्त नहीं कर सकता।'

बेटे की शादी में होनेवाली टिम टाम, बाद में लेनदार के तगादों से चिंतित जरूर होते हैं। गहने वापस करने की सलाह देते हैं। यहाँ एक बार फिर वे हार जाते हैं। गहने वापस नहीं किए जाते—चुराए जाते हैं।

वास्तव में रमानाथ का पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण, अंग्रेजी रिवाजों की नकल करना दयानाथ को बिलकुल पसंद नहीं है। इसके लिए वे रमा के साथ रमेश जो उसके दोस्त है—को भी दोषी मानते हैं।

दयानाथ का बाह्य व्यवहार और अंतर्मन अभिन्न है इसलिए वह मानसिक द्वंद्व से मुक्त है।

इस प्रकार पाठक देखते हैं कि दयानाथ प्रेमचंद कालीन मध्यवर्ग के प्रतिनिधित्व सही मायने में करते हैं जिसे पढ़ कर पाठक इस वर्ग की स्थिति का अंदाजा लगा सकते हैं।

प्र.7. गबन उपन्यास के नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर

गबन उपन्यास के नारी पात्र

1. जालपा

प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में जिस परंपरावादी नारी-जीवन को लिया है उसे अत्यंत ऊँचे स्तरपर उठाने का प्रयास किया है। यथार्थ धरातलपर खड़ी नारियाँ जीवन के अनुभवों की अग्निपरिक्षा में उज्वल से उज्वलतर होती है। 'गबन' की जालपा जो प्रारम्भ से आभूषणप्रिय थी, अपनी स्थिति से अनभिज्ञ थी, समय आने पर अपूर्व साहस का परिचय देती है। वैसी तो कहा जाता है कि, जालपा की आभूषणप्रियता रमानाथ को ले डुबी। परन्तु रमानाथ का स्वभाव ही उसे ले डूबा है, शीघ्र मोहवश होनेवाला उसका स्वभाव ही उसे ले डूबा है, जालपा की आभूषणप्रियता नहीं। उसने जालपा के सामने घर की सत्य आर्थिक स्थिति रख दी होती और उसके बाद भी जालपा आभूषणों के लिए हाय-हाय मचाती तो दोष जालपा के सिर मढ़ा जा सकता था। परन्तु बचपन से ही

TOUCH 'n' PASS

चंद्रहार के प्रति उसके मन में एक आकर्षण भर दिया है, उसी की उसे लालसा है। वह मानती है कि, ससुराल वाले चंद्रहार बनाने की शक्ति रखते हुए भी चंद्रहार नहीं बनाते, इसीलिए उसका मन कूढ़ता है। घर की वास्तविक आर्थिक स्थिति उससे छिपाई जाती है। धनी ससुराल में बहु की आभूषण लालसा स्वाभाविक ही है। इसीलिए जालपा का प्रारंभिक रूप भी स्वाभाविक नारी–स्वभाव का द्योतक है। सत्य परिस्थिति का ज्ञान उसकी आँखें खोल देता है, और उसके चरित्र में प्रखर तेज भर देता है। उसके चरित्र में परिवर्तन लाता है।

चंद्रहार पर जालपा जान देती है। लेकिन पति पर आये संकट को दूर करने के लिए वही चंद्रहार वह तुरंत सराफ को बेच आती है। गहने तो परंपरानुसार उसे प्रिय है किन्तु पति के सामने उन गहनों को वह तुच्छ समझती है। वह रमानाथ से कहती है, "पुरुष मन का हो तो स्त्री उसके साथ उपवास करके भी प्रसन्न रहेगी।" रमानाथ ही उसे समझने में गलती करता है और उससे अपनी आर्थिक स्थिति छुपाए रखता है।

2. जोहरा

प्रेमचंद जी के बारे में कहा जाता है, कि वह संत स्वभाव के लेखक थे। उन्होंने अपने साहित्यद्वारा मनुष्य के सद्‌गुणों की प्रतिष्ठापना की। 'पाप' की घृणा की परन्तु 'पापी' की नहीं। 'पापी' को भी सहानुभूति से देखा और उसे सुधारने का अवसर दिया। 'गबन' की 'जोहरा' का हृदयपरिवर्तन कर उसे उन्होंने महानता प्रदान की।

'गबन' में जोहरा एक वेश्या है। पुलिस उसे रमानाथ की सेवा करने के लिए लाती हैं। जोहरा से रमानाथ का दिल लगा रहे तथा वह भागने की कोशिश न करे–इस हेतु से उसे लाया गया है। जोहरा को रमानाथ का सच्चापन, अपनी पत्नी के प्रति प्यार और विश्वास भा जाता है। रमानाथ के लिए वह जालपा की खोज करती है। जालपा से मिलने पर तो वह पूर्ण रूप से बदल जाती है। उसे अपनी विलासी जीवन की घृणा आती है। तथा अपना जीवन–मार्ग छोड़कर जालपा के आश्रय में जाने की ठान लेती है। वह पुलिस से भी नहीं डरती। समाचारपत्रों में अपनी मुलाखत देकर पुलिस का भंडाफोड करती है। उपन्यास के अंत में जालपा की सहेली रतन से उसका स्नेह होता है। प्रेमचंद जी लिखते है, "इस स्नेह में उसके वंचित हृदय ने पति–प्रेम और पुत्र–स्नेह दोनों को ही पा लिया।" रतन की लंबी बीमारी में वह उसकी दिनरात सेवा करती है। अपनी जीवन यात्रा का समापन वह गंगा में डूबने वालों को बचाते हुए करती है।

प्रेमचंद जी नारी की आंतरिक शक्ति में विश्वास रखते थे। जोहरा के रूप में उन्होंने नारी के दुर्दम्य इच्छाशक्ति का दर्शन कराया है।

3. रतन

प्रेमचंद जी के हर उपन्यास में बेमेल विवाह का एक न एक उदाहरण हमें मिलता ही है। बेमेल विवाह की कुरीति पर आघात करने के लिए वे हर उपन्यास द्वारा पाठकों को जगाते थे।

रतन हाइकोर्ट वकील पंडित इन्दुभूषण की पत्नी है। वकीलसाहब की उम्र साठ से ऊपर है। उनकी पहली पत्नी की मृत्यु पैंतीस साल पहले ही हुअी है। परन्तु पाँच साल पहले उनका एकलौता जवान बेटा नहीं रहा। इसलिए इस उम्र में वकीलसाहब ने जवान रतन से शादी की है। रतन का विवाह बूढ़े व्यक्ति से होने का कारण भी हम रतन और जालपा की बातचीत से जान जाते हैं। रतन के माँ–बाप नहीं हैं, उसके मामा ने यह विवाह कराया है। रतन को संदेह है कि, इस विवाह से मामा ने अपना फायदा कर लिया है। लेकिन रतन एक ऐसी स्त्री है जो कभी अपने दुखड़े नहीं रोती। वह वकीलसाहब के स्वभाव की तारीफ करती रहती है। जालपा–रमानाथ जैसे स्नेही जनों को घर बुलाकर पार्टियाँ करती हैं, अपने लिए नए–नए गहने बनवाती है और खुश रहती है। किन्तु ऐसी खुशमिजाज स्त्री के भाग्य में ज्यादा देर तक खुशियाँ नहीं लिखी हुअी। वकीलसाहब की मृत्यु हो जाती है। वकील होने के बावजूद रतन के पति ने वसियतनामा लिखा हुआ नहीं है। इस बात का फायदा उनका भतीजा उठाता है। रतन कई वकीलों से मिलती है पर वसियतनामा न होने से वह कुछ नहीं कर सकती। रतन का भतीजा उसके बंगले पर तथा पैसों पर हक जताता है। रतन भी आत्मसम्मान के साथ सबकुछ त्याग कर चली जाती है। आज तक रतन जालपा और उसके परिवार की मद्‌द किया करती थी। आज उसी घर वह आश्रय लेने जाती है।

रतन ऐसी बदनसीब स्त्री है, जिसे उसके ही रिश्तेदारों ने एक बूढ़े के हाथों बेच दिया और पति की मृत्यु के बाद उसे न कानून से सहायता मिली न रिश्तेदारों से। जालपा रमानाथ जैसे स्नेहीजन ही उसे अंतसमय तक अपने परिवार में रखते हैं। पति की धनदौलत से रतन वंचित होती है परन्तु अपना आत्मसम्मान खोने नहीं देती।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

हिन्दी कहानी

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रेमचन्द जी के माता-पिता का क्या नाम था?

उत्तर प्रेमचन्द्र जी के माता-पिता का नाम क्रमशः आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था।

प्र.2. पंच परमेश्वर कहानी किस पत्रिका में प्रकाशित हुई?

उत्तर पंच परमेश्वर कहानी सरस्वति पत्रिका में प्रकाशित हुई।

प्र.3. आरम्भ में पंच परमेश्वर कहानी का मूल नाम क्या था?

उत्तर आरम्भ में पंच परमेश्वर कहानी का मूल नाम 'पंचायत' था, जिसे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बदलकर 'पंच परमेश्वर' रखा।

प्र.4. पंच परमेश्वर कहानी के मुख्य पात्र कौन-से है?

उत्तर पंच परमेश्वर कहानी के मुख्य पात्र जुम्मन शेख और अलगू चौधरी हैं।

प्र.5. कहानीकार यशपाल जी का जन्म कहाँ हुआ था?

उत्तर कहानीकार यशपाल जी का जन्म 3 दिसम्बर, सन् 1903 में पंजाब प्रान्त की फिरोजपुर छावनी में हुआ था।

प्र.6. यशपाल की पाँच कहानियों के नाम लिखिए।

उत्तर यशपाल जी पाँच कहानियाँ हैं—परदा, समय, चार आन्ने, फूल की चोरी तथा धर्मयुद्ध।

प्र.7. 'परदा' कहानी में किसका विवरण दिया गया है?

उत्तर 'परदा' कहानी में मध्यवर्गीय समाज की विडंबनाओं का विवरण दिया गया है।

प्र.8. 'परदा' कहानी का केन्द्रीय चरित्र कौन-सा है?

उत्तर 'परदा' कहानी का केन्द्रीय चरित्र पीर बख्श है

प्र.9. 'परदा' कहानी के चरित्र चित्रण की क्या विशेषता है?

उत्तर 'परदा' कहानी के चरित्र चित्रण की विशेषता यह है कि लेखक ने पात्रों के बाहरी व्यक्तित्व और स्वभाव के साथ-साथ अंतरग चित्र को भी बड़ी संजीवता से अंकित किया है।

प्र.10. जैनेन्द्र कुमार का बचपन का क्या नाम था?

उत्तर जैनेन्द्र कुमार का बचपन का नाम आनंदीलाल था।

प्र.11. जैनेन्द्र कुमार को किसका प्रवर्तक माना जाता है?

उत्तर जैनेन्द्र कुमार को हिन्दी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परम्परा के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है।

प्र.12. 'सुखदा' एवं 'परख' किसके उपन्यास है?

उत्तर 'सुखदा' एवं 'परख' जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास हैं।

प्र.13. तपो भूमि उपन्यास को जैनेन्द्र कुमार ने किसके साथ सह लेखन किया?

उत्तर ऋषभचरण जैन के साथ सन् 1932 में।

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. 'पाजेब' कहानी का मुख्य पात्र कौन है?

उत्तर 'पाजेब' कहानी का मुख्य पात्र 8 वर्ष का बालक आशुतोष है।

प्र.15. कहानी 'तीसरी कसम' अन्य किस नाम से प्रसिद्ध है?

उत्तर कहानी तीसरी कसम 'मारे गए गुलफाम' शीर्षक से है।

प्र.16. फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म कहाँ हुआ?

उत्तर फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 में औराटी हिंगना नामक गाँव, जिला अररिया, बिहार में है।

प्र.17. फणीश्वरनाथ रेणु के मुख्य कहानियों के नाम लिखिए

उत्तर मुख्य कहानी 'सुमरो' अग्नि, अग्निखोर, अच्छे आदमी आदि हैं।

प्र.18. धरती अब भी घूम रही है कहानी का विषय क्या है?

उत्तर नारी का शोषण, मनुष्य की पशु प्रवृत्ति और सामाजिक विडम्बनाओं की पृष्ठ भूमी को केन्द्र बिन्दु रखकर विष्णु प्रभाकर ने 'धरती अब भी घूम रही है' की रचना की थी।

प्र.19. कमल और नीना के पिता कितने रुपये की रिश्वत के जुर्म में सजा काट रहे है?

उत्तर "उन्होंने बीस रुपये की रिश्वत ली थी।" इस रिश्वत के जुर्म में, कमल और नीना के पिता सजा काट रहे हैं।

प्र.20. कहानीकार विष्णु प्रभाकर ने कौन-सी कहानी लिखिए?

उत्तर 'अर्द्धनारीश्वर', 'आवारा मसीहा', 'क्षमादान' तथा 'पंखहीन' (आत्मकथा) आदि।

प्र.21. विष्णु प्रभाकर का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

उत्तर विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 को मीरापुर, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ।

प्र.22. गंगा प्रसाद विमल का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर गंगा प्रसाद विमल का जन्म सन् 1939 में उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी में हुआ।

प्र.23. हिन्दी साहित्य में अकहानी आंदोलन के जनक के रूप में किसे जाना जाता है?

उत्तर हिन्दी साहित्य में अकाहनी आंदोलन के जनक के रूप में गंगा प्रसाद विमल को जाना जाता है।

प्र.24. गंगा प्रसाद विमल का प्रथम कहानी संग्रह कौन-सा है?

उत्तर गंगा प्रसाद विमल का प्रथम कहानी संग्रह 'कोई भी शुरुआत' सन् 1967 में आया।

प्र.25. गंगा प्रसाद विमल का आखिरी उपन्यास कौन-सा है?

उत्तर गंगा प्रसाद विमल का आखिरी उपन्यास 'मानुसखोर' सन् 2013 में आया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुंशी प्रेमचंद के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

मुंशी प्रेमचंद : जीवन परिचय

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 को उत्तर प्रदेश के जनपद वाराणसी के लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था जो लमही में डाक मुंशी थे। उनका वास्तविक नाम धनपत राय श्रीवास्तव था। प्रेमचंद (प्रेमचन्द) की आरम्भिक शिक्षा फारसी में हुई। प्रेमचंद के माता-पिता के सम्बन्ध में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि—"जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पन्द्रह वर्ष के हुए तब उनका विवाह कर दिया गया और सोलह वर्ष के होने पर उनके पिता का भी देहान्त हो गया।" इसके कारण उनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय रहा। प्रेमचंद के जीवन का साहित्य से क्या सम्बन्ध है इस बात की पुष्टि रामविलास शर्मा के इस कथन से होती है कि—"सौतेली माँ का व्यवहार, बचपन में शादी, पण्डे-पुरोहित का कर्मकाण्ड, किसानों और क्लर्कों का दुखी जीवन-यह सब प्रेमचंद ने सोलह साल की उम्र में ही देख लिया था। इसीलिए उनके ये अनुभव एक जबरदस्त सच्चाई लिए हुए उनके

TOUCH 'n' PASS

कथा-साहित्य में झलक उठे थे।'' उनकी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। 13 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिर्जा हादी रुस्वा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया। उनका पहला विवाह पंद्रह साल की उम्र में हुआ। सन् 1906 में उनका दूसरा विवाह शिवरानी देवी से हुआ जो बाल-विधवा थीं। वे सुशिक्षित महिला थीं। जिन्होंने कुछ कहानियाँ और 'प्रेमचंद घर में' शीर्षक पुस्तक भी लिखी। उनकी तीन सन्ताने हुईं—श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। सन् 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। उनकी शिक्षा के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा लिखते हैं कि—''सन् 1910 में अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इण्टर किया और सन् 1919 में अंग्रेजी, फारसी और इतिहास लेकर बी०ए० किया।'' सन् 1919 में बी०ए० पास करने के बाद वे शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। प्रेमचंद सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी के सरकारी नौकरी छोड़ने के आह्वान पर इंस्पेक्टर पद से 23 जून को त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने लेखन को अपना व्यवसाय बना लिया। मर्यादा, माधुरी आदि पत्रिकाओं में वे संपादक पद पर कार्यरत रहे। इसी दौरान उन्होंने प्रवासीलाल के साथ मिलकर सरस्वती प्रेस भी खरीदा तथा हंस और जागरण निकाला। प्रेस उनके लिए व्यावसायिक रूप से लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ। सन् 1933 में अपने ऋण को पटाने के लिए उन्होंने मोहनलाल भवनानी के सिनेटोन कम्पनी में कहानी लेखक के रूप में काम करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। लेकिन फिल्म नगरी प्रेमचंद को रास नहीं आई। वे एक वर्ष का अनुबन्ध भी पूरा नहीं कर सके और दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस लौट आए। उनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता गया। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर, 1936 को उनका निधन हो गया।

प्र.2. पंच परमेश्वर कहानी के कथानक एवं पात्र व चरित्र चित्रण का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

पंच परमेश्वर कहानी के तत्त्व

कथानक—पंच परमेश्वर कहानी के प्रमुख पात्र जुम्मन शेख और अलगू चौधरी है। दोनों में गाढ़ी दोस्ती है। दोनों के परिवार में अंतरंगता अत्यधिक दिखायी पड़ती है। एक बार अलगू चौधरी गाँव के समझू साहू के हाथों अपना बैल उधार बेच देते हैं। समझू साहू एक क्रूर बनिया है। वह बैल से अत्यधिक काम लेता है किन्तु उसकी यथोचित सेवा नहीं करता है। अचानक एक दिन बैल मर जाता है। समझू साहू और सहुआइन दोनों अलगू चौधरी को भद्दी-भद्दी गालियाँ देते और कहते कि निगोड़े ने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म भर की कमाई भी लुट गयी और खुद बैल भी मर गया। बैल के मरने के कुछ दिनों बाद अलगू चौधरी ने समझू साहू से अपने बैल की कीमत माँगी। समझू साहू और उनकी पत्नी दोनों झुंझल्लाकर अलगू चौधरी पर बरस पड़े और दोनों पक्षों में हाथापाई की नौबत भी आ गयी। गाँव के लोग हल्ला सुनकर इकट्ठे हो गए। उन लोगों ने दोनों को समझाया कि पंचायत द्वारा फैसला करवा लो। अंत में दोनों ने पंचायत कराने का फैसला किया और गाँववालों की बात मान ली।

एक निश्चित समय में तीसरे दिन पंचायत बैठी। गाँव भर के लोग जमा हुए थे। दोनों पक्षों के लोग दल बनाकर पंचायत में जुटे थे। पंचायत बैठने पर रामधन मिश्र ने कहा कि दोनों पक्षों को सुनो! अब देरी क्या है? आप लोग अपना-अपना पंच चुनिए। अलगू चौधरी ने दीन भाव से कहा—समझू साहू ही पंच चुन लें। समझू साहू ने गर्व से खड़ा होकर अपनी ओर से जुम्मन शेख को पंच चुन लिया। खालाजान और जुम्मन की पंचायत में अलगू चौधरी ही पंच बने थे और उन्होंने खाला के पक्ष में न्याय सुनाकर जुम्मन से दुश्मनी मोल ले ली थी। अलगू और जुम्मन दोनों बचपन के मित्र थे। दोनों में पारिवारिक अंतरंगता भी थी। पंचायत के बाद अलगू और जुम्मन में खटपट हो गयी। मित्रता दुश्मनी में बदल गयी। आज वही दिन अलगू चौधरी के लिए बुरे दिन के रूप में आ गया।

पंचायत में जुम्मन शेख के पंच चुनते ही अलगू चौधरी शंका में पड़ गए। उनका दिन धक्-धक् करने लगा। जुम्मन शेख के मन में पंचायत में सरपंच के सर्वोच्च आसन पर बैठते ही जिम्मेवारी का भाव जग उठा। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठ हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा वह देववाणी सदृश है, और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं। दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करते हुए जुम्मन शेख ने फैसला सुनाया-अलगू चौधरी और समझू साहू दोनों कान खोलकर सुन लो। पंचों का न्याय है। समझू साहू बैल का पूरा दाम अलगू चौधरी को दे दें क्योंकि जिस समय बैल खरीदा गया था, उस समय वह बीमार नहीं था। अत्यधिक काम लेने एवं सेवा नहीं करने के कारण बैल असमय ही मर गया। अत: इसके लिए समझू साहू दोषी है। अत: बैल की कीमत वे अलगू चौधरी को दें। न्याय से अलगू चौधरी फूले न समाए। वे उठ खड़े हुए और जोर से बोले-पंच परमेश्वर की जय। प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति की सराहना करते हुए कहने लगे-पंच में परमेश्वर निवास करते हैं। यह उन्हीं की महिमा है, पंच के सामने खोटे को कौन-कौन खरा कह सकता है। इसे कहते हैं—न्याय। थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू चौधरी के पास आए और गले से लिपटकर बोले—भैया!

TOUCH 'n' PASS

जब तुमने मेरी पंचायत की थी तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था परन्तु आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जुबान से खुदा बोलता है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण—पात्रों की दृष्टि से भी प्रेमचंद की यह उत्कृष्ट रचना है। इस कहानी के प्रमुख पात्र हैं। जुमराती शेख, जुम्मन मियाँ, खालाजान, अलगू, करीमन, रामधन मिश्र और समझू साहू। खालाजान अपनी सारी संपत्ति जुम्मन मियाँ को दे देती हैं। इसके साथ खाला के भरण-पोषण की शर्तें जुड़ी हुई हैं। दूसरी तरफ समझू साहू अलगू चौधरी से एक बैल उधार लिया था। अत्यधिक काम लेने के कारण बैल असमय ही मर जाता है। दूसरी तरफ खाला जान की सेवा प्रारंभिक दौर में तो होती है किन्तु जमीन रजिस्ट्री हो जाने के बाद व्यवहार में अंतर आ जाता है। दोनों पक्षों की तरफ से बारी-बारी से न्याय के लिए पंचायतें होती हैं। जिसमें सरपंच के आसन पर बैठकर अलगू चौधरी और जुम्मन शेख दोनों एक-दूसरे के द्वारा आयोजित पंचायत में नीतिपूरक न्याय की घोषणा करते हैं। मित्रता न्याय करने में बाधक नहीं बनती। दोनों न्यायोपरांत तो कुछ दिनों के लिए एक-दूसरे का दुश्मन बन जाते हैं किन्तु विवेक जगने पर किए गए न्याय को उचित ठहराते हैं। सारा द्वेष, वैमनस्य को भूलकर अलगू चौधरी और जुम्मन शेख में पुनः पूर्व की तरह मित्रता प्रगाढ़ हो जाती है और दोनों एक-दूसरे के प्रति पुनः विश्वसनीय बन जाते हैं। इस प्रकार पंच परमेश्वर कहानी के द्वारा कहानीकार ने कथानक, पात्र, परिवेश एवं उनके मानसिक स्थितियों का सम्यक् चित्र खींचा है। यह एक अद्वितीय कहानी है जो आदर्शोन्मुख विशेषताओं को प्रकट करती है।

प्र.3. पंच परमेश्वर कहानी में मुंशी प्रेमचन्द ने किस प्रकार के कथोपकथन या संवाद उपयोग किया है?

उत्तर

मुंशी प्रेमचन्द द्वारा उपयोग कथोपकथन या संवाद

कथा-वस्तु के साथ पात्रों की स्थिति और सुरुचि पर ध्यान भी दिया है। इनकी कहानियों में कथोपकथन में सुसम्बद्धता भी पायी जाती है। प्रेमचंद की पंच परमेश्वर कहानी में कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक है। अनुभूतियाँ भी रचनाशील भावना में अनुगुंजित होकर कहानी बन जाती है। प्रेमचंद की दृष्टि में सर्वाधिक उत्तम वही कहानी है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो। प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसका परिवेश भारतीय गाँव से जुड़ा हुआ है। इसके पात्र भी ठेठ गाँव के लोग हैं। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद जी ने यह दिखाने का काम किया है कि पंच के पद पर बैठने वाला व्यक्ति अन्यायपूर्ण निर्णय नहीं दे सकता। आसन ग्रहण करते ही वह विवेकी बन जाता है और सगे सम्बन्धों को नकारते हुए न्याय का पक्ष लेता है। न्याय के आसन पर बैठकर वह ईश्वर का प्रतिरूप बन जाता है। उसके भीतर विवेक जग जाता है और पारिवारिक सामाजिक सम्बन्ध न्याय के बीच दीवार बनकर खड़े नहीं होते।

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। जुम्मन शेख और उनकी खाला के बीच संपत्ति एवं सेवा को लेकर कुछ खटपट हो गई। खाला ने अलगू चौधरी को पंचायत में सरपंच मनोनीत कर दिया। न्याय के आसन पर बैठकर अलगू चौधरी का विवेक जाग उठा और जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की प्रगाढ़ मित्रता न्याय में बाधक नहीं बन सकी। जुम्मन ने पंचायत में कहा कि पंचों का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। पंच ईश्वर की वाणी को अभिव्यक्ति देकर दूध का दूध और पानी को पानी कर देता है। पंचापयत में अलगू चौधरी ने खाला का पक्ष लिया और न्याय खाला के पक्ष में लिया तथा खाला की सेवा का माहवारी खर्च बाँध दिया। इस न्याय से, पंचों की गाँव के लोगों के द्वारा पूरी प्रशंसा की गई और कहा—इसी का नाम पंचायत है। दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी है, नहीं तो कब की रसातल को चली जाती।

प्र.4. पंच परमेश्वर कहानी के क्या उद्देश्य हैं?

उत्तर

पंच परमेश्वर कहानी के उद्देश्य

प्रस्तुत कहानी 'पंच परमेश्वर' में दो दृश्य उपस्थित कर जिसमें जुम्मन शेख, खालाजान, अलगू चौधरी, समझू साहू के माध्यम से न्याय के विजय को पुनर्स्थापित किया है और यह सिद्ध कर दिया है कि पंच में परमेश्वर का वास होता है। उसमें मित्रता कहीं भी बाधक नहीं होती है। जैसे जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की खानदानी मित्रता उस पर खालाजान के साथ होने वाली घटना में अलगू चौधरी ने जिस तरह पंचायत में फैसला दिया वह मित्रता की जगह न्याय का पक्ष लेकर पंच में परमेश्वर का वास है, उसको सिद्ध करता है। दूसरे दृश्य में अलगू चौधरी और समझू साहू की अनबन में पंचायत में जुम्मन शेख का पंच होना, जो अलगू चौधरी से खार खाए बैठा है उसका भी दुश्मनी को त्याग कर न्याय का पक्ष लेना पंच में परमेश्वर का वास है उसकी पुष्टि करता है। प्रेमचंदजी की कहानी कला की सबसे बड़ी विशेषता है—आदर्श और यथार्थ का समुचित समन्वय। अपनी इस कहानी में प्रेमचंद

जी ने इसका समुचित निर्वाह किया है। प्रेमचंद की दृष्टि में कहानी का उद्देश्य नैतिक पतन नहीं वरन् नैतिक उत्थान करना है। यथार्थवाद आदर्शवाद दोनों का समुचित समन्वय इस कहानी में हुआ है। इस कहानी की समाप्ति आदर्शात्मक ढंग से की गयी है। इस कहानी में समस्या का समाधान निकालकर न्याय पक्ष की प्रबलता और अनिवार्यता को कहानीकार ने प्रदर्शित किया है। प्रेमचंद का व्यक्तिगत विश्वास है कि प्रत्येक कहानी में एक ऊँचा नैतिक संदेश होना चाहिए। ऐसा न करने से समाज तथा साहित्य का कोई लाभ नहीं होगा और हमारा समाज पथभ्रष्ट हो जाएगा। उपरोक्त बातों का चित्रण पंच परमेश्वर में सम्यक् रूप से हुआ है। पंच परमेश्वर कहानी में आदर्शोन्मुख विचारों का प्रतिपादन किया गया है। इस कहानी की दूसरी विशेषताएँ-मनोविज्ञान की अनुमति। प्रेमचंद जी ने अपनी इस कहानी में मनोवैज्ञानिक चरित्रों की सृष्टि करने की चेष्टा की है।

प्र.5. पंच परमेश्वर कहानी के देशकाल एवं वातावरण पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

उत्तर

पंच परमेश्वर कहानी के देशकाल और वातावरण

'पंच परमेश्वर' कहानी प्रेमचंद जी की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद जी ने ग्रामीण परिवेश की स्थितियों का सही चित्रण किया है। यह कहानी गाँवों में निवास करने वाले किसानों के जीवन से सम्बन्धित है। प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। इस कहानी में आदर्श और यथार्थ का उचित समन्वय दृष्टिगत होता है। इन्होंने अपनी कहानी में बेजुबान ग्रामीणों का जितना स्वाभाविक चित्रण किया है, वैसा चित्रण दूसरे किसी कहानीकार की रचना में नहीं मिलता। पंच परमेश्वर कहानी की वस्तु प्लॉट ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ है। दैनिक जीवन की दिनचर्या के साथ पारिवारिक एवं सामाजिक बनावट का भी चित्रण सम्यक् रूप से हुआ है। गाँवों में निवास करने वाले सीधे-सादे किसानों, मजदूरों का जीवन, आपसी सम्बन्धों का सफल एवं यथार्थ चित्रण कर कहानीकार ने अपनी कला को उत्कृष्टता प्रदान किया है। यह कहानी भारतीय गाँव की ठेठ कहानी है। इसमें जुम्मन शेख, खालाजान, अलगू चौधरी के बीच के आत्मीय एवं पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण हुआ है। घरेलू समस्याओं को लेकर यह कहानी रची गयी है। इसमें तीनों के बीच पनप रहे प्रेम, द्वेष, स्वार्थ की सूक्ष्म व्याख्या प्रेमचंद ने की है। न्याय के आसन पर बैठकर कोई किसी का न मित्र होता है और न दुश्मन। इस कहानी में न्याय के प्रति मनुष्य का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, प्रेमचंद ने अपने विचारों को पात्रों के माध्यम से प्रकट किया है। प्रेमचंद ने स्थान, पात्र एवं समाज की सही तस्वीर खींचने का प्रयास किया है। जीवन, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा आदि पर सम्यक् प्रकाश डालते हुए सभी स्थितियों का सुंदर चित्रण किया है।

प्र.6. कहानीकार यशपाल जी के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

यशपाल जी का जीवन परिचय

प्रेमचन्दोत्तर युग के सुप्रसिद्ध यथार्थवादी एवं प्रगतिशील कहानीकार यशपाल जी का जन्म 3 दिसम्बर, 1903 में पंजाब प्रान्त की फिरोजपुर छावनी में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में हुई, जहाँ के देशभक्ति युक्त वातावरण के परिणामस्वरूप इनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना जागृत हुई। नेशनल कॉलेज, लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान में) से इन्होंने माध्यमिक व उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसी समय सुखदेव और भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों से इनका सम्पर्क हुआ। राजद्रोह का आरोप लगाते हुए अंग्रेजी शासकों द्वारा इन्हें कठोर कारावास का दण्ड दिया गया और कारागार में ही ये स्वाध्याय तथा साहित्य-सृजन का कार्य करते रहे। लखनऊ आकार इन्होंने 'विप्लव' नामक मासिक-पत्र सम्पादित व संचालित किया। ये आजीवन साहित्य साधना में लगे रहे। साहित्य का यह साधक 26 दिसम्बर, 1976 में चिर-निद्रा में लीन हो गया। यथार्थता यशपाल जी की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। सामाजिक कुरीतियों, कुसंस्कारों पर इन्होंने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं आदि की इन्होंने कटु आलोचना की है। यशपाल जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी-संग्रह—फूलों का कुर्ता, पिंजड़े की उड़ान, उत्तमी की माँ, तर्क का तूफान, भस्मावृत्त, मेरा चेहरा रौबीला है, बीवी जी कहती हैं, अभिशप्त, तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ, चिनगारी आदि।

कहानियाँ—परदा, समय, चार आन्ने, कर्मफल, फूल की चोरी, मक्रील, पाँव तले की डाल, वर्दी, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

उपन्यास—देशद्रोही, दादा कामरेड, अमिता, मनुष्य के रूप, दिव्या, तेरी-मेरी उसकी बात, झूठा सच आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

यात्रावृत्त—लोहे की दीवार के दोनों ओर, राहबीती। निबन्ध, संस्मरण आदि साहित्यिक विधाओं की भी इन्होंने अपनी लेखनी से श्रीवृद्धि की है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर 'परदा' कहानी का कथानक एवं पात्रों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

परदा कहानी के तत्त्व

कथानक—परदा कहानी के कथानक की जब हम बात करते हैं तो यह कहानी चौधरी पीरबख्श के पारिवार की है जिनके दादा अपने समय में चुंगी के दरोगा थे और उन्होंने अपना मकान भी बनवाया था, किन्तु दो ही पीढ़ियों में उनके वंशज पीरबख्श अत्यंत निर्धन हो गए। कहानी का आरम्भ पीरबख्श के परिवार से होता है। उसके पश्चात् जीवन की विषय परिस्थितियों से जूझते हुए पीरबख्श के चरित्र के रूप में कथानक का विकास होता है। खान से लिया गया उधार न चुका सकने के कारण स्थिति और भी गंभीर हो जाती है जो भयानक का रूप धारण करती है। इसे कहानी को विकास की अवस्था की दृष्टि से संघर्ष की अवस्था कहा जा सकता है। परदा कहानी में चरम सीमा की अवस्था तब आती है जब पीरबख्श के द्वारा कर्ज का पैसा न लौटाने पर खान क्रोध से पीरबख्श के घर की ड्योढ़ी पर लटका हुआ टाट का फटा पुराना, गला हुआ पर्दा तोड़कर आंगन में फेंक देता है। उस समय का मार्मिक और प्रभावशाली दृश्य पाठक पर गहरे अवसाद की अमिट छाप छोड़ देता है। इस प्रकार कहानी का कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। चौधरी पीरबख्श एक अच्छे घराने के आदमी हैं परन्तु धीरे-धीरे बहुत तंगी में आ जाते हैं घर की इज्जत ढकने के लिए किवाड़ों पर पर्दा लगाए रखते हैं, एक बार मुसीबत में आकर वे एक खान से थोड़े से रुपये कर्ज ले लेते हैं, लेकिन वे समय पर कर्ज चुका नहीं पाते क्योंकि परिवार के बढ़ने से धीरे-धीरे पीरबख्श की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ जाती है। घर में खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। घर की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु धीरे-धीरे घर के गहने और दूसरी बहुमूल्य वस्तुओं को बेच दिया जाता है। घर की महिलाओं को घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं थी, इसलिए आसपास के लोगों को पीरबख्श की माली हालत की कोई खबर नहीं थी। पीरबख्श की खानदानी इज्जत को घर की ड्योढ़ी पर पड़ा परदा बचाये रखता है लेकिन जब खान क्रोध से किवाड़ों पर टंगे परदे को खींचता है तब पर्दा हट जाने से लोगों के सामने उनकी वास्तविक स्थिति सामने आ जाती है और यह वास्तविक स्थिति इतनी भयावह होगी इसकी पाठक ने भी कल्पना नहीं की होगी।

पात्र और चरित्र—परदा कहानी में अधिक पात्र नहीं हैं। संपूर्ण कहानी का केंद्रीय चरित्र पीरबख्श है। उसका दूसरा विरोधी चरित्र है—खान का। खान के माध्यम से लेखक ने चौधरी पीरबख्श के चरित्र की विषमताओं को अधिक उभारने का प्रयास किया है। खान की कठोरता, निर्भयता, सूदखोरी की आदत तथा वाणी की कटुता एक प्रकार से समाज के संपूर्ण शोषक, पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। चौधरी पीरबख्श का चरित्र चित्रण बहुत ही सजीव हुआ है, उनका चरित्र किस प्रकार अपने घर परिवार के संस्कार से प्रभावित होता है और वह अपनी इज्जत की झूठी भावना से परेशान होते हैं। इसका बहुत ही वैज्ञानिक चित्रण इस कहानी में खींचा गया है। वस्तुत: पीरबख्श का चरित्र भारतीय समाज के करोड़ों निम्न मध्यवर्गीय लोगों की दीन-हीन दिशा की ओर संकेत करता है। परदा कहानी के पात्र व्यक्तिगत न होकर वर्गगत हैं। इस कहानी के चरित्र चित्रण की यह विशेषता है कि लेखक ने पात्रों के बाहरी व्यक्तित्व और स्वभाव के साथ-साथ अंतरग चित्र को भी बड़ी सजीवता से अंकित किया है।

प्र.8. देश काल, वातावरण और भाषा शैली के आधार पर परदा कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर

परदा कहानी का मूल्यांकन

यशपाल समाज के यथार्थ चित्रण करने के चेहरे के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत कहानी में उन्होंने आधुनिक युग के समाज की स्थिति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी उन दिनों की है, जब भारत स्वाधीन नहीं हुआ था परन्तु उन दिनों हमारे निम्न मध्यम, निम्न वर्गीय समाज की जो स्थिति थी, आज भी लगभग वैसी ही है। आज भी सफेदपोश वर्ग अपने ऊपर ईशान के नाम पर असलियत को स्वीकार नहीं कर पाता और चौधरी पीरबख्श की भाँति आर्थिक संकट में पड़ा रहता है। लेखक ने इस कहानी में गरीबों की कच्ची और गंदी बस्ती के वातावरण का सजीव चित्र निम्न पंक्तियों में स्पष्ट किया है। आसपास गरीब और कमीने लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचों-बीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती जिसके किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियाँ उड़ते रहते।

भाषा शैली—परदा कहानी की सफलता का रहस्य यह है उसकी सहज स्वाभाविक भाषा है। भाषा की स्वाभाविकता के कारण ही कहानी यथार्थ के अधिक निकट और मार्मिक बन पड़ी है। कहानी की पृष्ठभूमि मुसलमानी जीवन से सम्बन्धित है, अत: लेखक ने कथा का वर्णन करते समय और वातावरण का चित्रण करते समय स्थिति और पात्रों के अनुकूल ही मुसलमान परिवारों में प्रयोग होने वाली उर्दू शब्दावली का अर्थात् भाषा का प्रयोग किया है। जैसे—महकमा, ओहदा, माहवार, कुनबा, इज्जत आदि भाषा प्रयोग में यशपाल में पात्रों की अनुकूलता का भी विशेष ध्यान रखा है। पीरबख्श की बातों में नम्रता और गंभीरता है जबकि खान की भाषा में पठानों के स्वभाव के अनुकूल अटपटी और बिगड़ी हुई शब्दावली की अधिकता है जिसमें कठोरता और उद्दंडता स्पष्ट

दृष्टिगोचर होती है। कहानी की शैली वर्णनात्मक और चित्रात्मक है यद्यपि कथात्मक शैली नीरस होती है किन्तु भाषा की सरलता स्वाभाविकता के कारण परदा कहानी की शैली मर्मस्पर्शी बन गई है।

प्र.9. जैनेन्द्र कुमार के जीवन परिचय पर एक लेख लिखिए।

उत्तर

जैनेन्द्र : जीवन परिचय

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेन्द्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। वह हिन्दी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परम्परा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेन्द्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहित की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल मिलता है। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं।

जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी, 1905, में अलीगढ़ के कौड़ियागंज गाँव में हुआ। उनके बचपन का नाम आनंदीलाल था। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी हैं। एक साहित्य विचारक के रूप में भी इनका स्थान मान्य है। इनके जन्म के दो वर्ष पश्चात् इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनकी माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामा ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। वहीं जैनेन्द्र की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्था में हुआ। सन् 1912 में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूप से मैट्रिक परीक्षा में बैठने की तैयारी के लिए वह बिजनौर आ गए। सन् 1919 में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौर से न देकर पंजाब से उत्तीर्ण की। जैनेन्द्र की उच्च शिक्षा काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में हुई। 1921 में उन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से दिल्ली आ गए। कुछ समय के लिए ये लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में भी रहे, परन्तु अंत में उसे भी छोड़ दिया।

सन् 1921 से 23 के बीच जैनेन्द्र ने अपनी माता की सहायता से व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परन्तु सन् 23 में वे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन माह के बाद छूट गए। दिल्ली लौटने पर इन्होंने व्यापार से अपने को अलग कर लिया। जीविका की खोज में ये कलकत्ते भी गए, परन्तु वहाँ से भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरम्भ किया। 24 दिसम्बर, 1988 को उनका निधन हो गया। जैनेन्द्र की प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

उपन्यास—'परख' (1929), 'सुनीता' (1935), 'त्यागपत्र' (1937), 'कल्याणी' (1939), 'विवर्त' (1953), 'सुखदा' (1953), 'व्यतीत' (1953), 'जयवर्धन' (1956) और 'मुक्ति-बोध इत्यादि।

कहानी संग्रह—'फाँसी' (1929), 'वातायन' (1930), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'एक रात' (1934), 'दो चिड़ियाँ (1935), 'पाजेब' (1942), 'जयसंधि' (1949) तथा 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (सात भाग)।

निबंध संग्रह—'प्रस्तुत प्रश्न' (1936), 'जड़ की बात' (1945), 'पूर्वोदय' (1951), 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (1953), 'मंथन' (1953), 'सोच विचार' (1953), 'काम, प्रेम और परिवार' (1953), 'ये और वे' (1954), इतस्तत: (1963), समय और हम (1964), परिप्रेक्ष्य (1977), साहित्य और संस्कृति-इनके साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी निबन्धों का संग्रह है जिसे ललित शुक्ल ने संपादित करके प्रकाशित किया था। (1979)।

अनुदित ग्रंथ— 'मंदालिनी' (नाटक-1935), 'प्रेम में भगवान' (कहानी संग्रह-1937), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक-1953)।

सह लेखन—'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैन के साथ-1932)।

संपादित ग्रंथ—'साहित्य चयन' (निबंध संग्रह-1951) तथा 'विचारवल्लरी' (निबंध संग्रह-1952)। (सहायक ग्रंथ-जैनेन्द्र—साहित्य और समीक्षा: रामरतन भटनागर)।

प्र.10. पाजेब कहानी का सारांश की समीक्षा कीजिए।

उत्तर

पाजेब कहानी का सारांश

घर में पाजेब का खो जाना और खोने को चोरी समझ लेना एक मामूली घटना है, इसीलिए इस कहानी का कहानीपन घटना के वर्णन में निहित नहीं है, बल्कि बालक पात्रों के चरित्र चित्रण द्वारा बाल-मनोविज्ञान की कुशल अभिव्यंजना में निहित है। जैनेन्द्र की कहानी-कला का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि वे द्वंद्व तथा अंतर्द्वंद्व के चित्रण में बड़े कुशल हैं। उनकी कहानियों में और 'पाजेब' में चित्रित द्वंद्व भी बड़े मानवीय संघर्ष नहीं हैं, पर कहानी के मूल में कोई द्वंद्व निहित होता है। यह बाह्य क्रियाकलापों में भी

व्यक्त होता है, पर उनसे अधिक वह अंतर्द्वंद्व के रूप में सामने आता है। 'पाजेब' कहानी में मुख्य रूप से बालक आशुतोष के अंतर्द्वंद्व को व्यक्त किया गया है, जिससे उसके चरित्र के यथार्थ चित्रण में भी सहायता मिली है। द्वंद्व की स्थिति आशुतोष और उसके पिता के बीच, आशुतोष और छुन्नू के बीच, दोनों बालकों की माताओं के बीच भी है। कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र की रुचि घटनाओं के विस्तृत वर्णन में उतनी नहीं है, जितनी घटनाओं के संदर्भ में होने वाले मानसिक परिवर्तनों और अंतर्द्वंद्व के अंकन में है। इस विधि से उन्हें बाल-मनोविज्ञान को स्पष्ट करने में भी मद्द मिली है।

जैनेन्द्र की कहानियों की भाषा, विशेषत: 'पाजेब' की भाषा पर विचार किया जाए तो कहना होगा कि गहरी से गहरी बात को सरल शब्दों, छोटे-छोटे वाक्यों, संक्षिप्त संवादों और शहर के मध्यवर्ग की बोलचाल की भाषा में कह देने की कला में वे माहिर हैं। उनकी बोधगम्य पैनी भाषा पाठकों के मन में उतरती जाती है। उनकी भाषा के पीछे उनकी दार्शनिकता, उनका अध्ययन और जीवन जगत का व्यापक अनुभव बोलता है। इसलिए उनकी भाषा प्राय: विशेष अर्थगर्भित हो गई है, जो मुख्यार्थ का अतिक्रमण कर अन्य अर्थध्वनियों की ओर अग्रसर होने लगती है।

'पाजेब' कहानी जब उत्कर्ष पर पहुँचती है तो उसका अंत हो जाता है। इसमें उत्कर्ष तो है, पर उतार नहीं है। इससे कहानी का अंत आकस्मिक हो गया है, जो पाठकों की उत्सुकता को शांत करते हुए रोचक हो गया है। कहानी कैसे शुरू की जाए और कैसे उसका अंत हो, यह किसी लेखक की कहानीकला का महत्त्वपूर्ण अंग है। जैनेन्द्र इस सम्बन्ध में अपने लेखकीय कौशल का परिचय देते हैं। कहानी के अंतिम भाग में बुआ द्वारा यह रहस्योद्घाटन कि पाजेब गलती से उसके सामान के साथ चली गई थी, आकस्मिकता तथा रहस्य के तत्त्वों के सन्निवेश का संकेत देता है। आकस्मिकता और रहस्य को भी जैनेन्द्र की कहानीकला की विशेषताएँ माना जा सकता है। यह रहस्य कहीं किसी गोपनीय बात के रूप में होता है, जैसा कि 'पाजेब' कहानी में है और कहीं आकस्मिकता के रूप में जिसके कार्यकलाप बहुधा रहस्यमय होते हैं।

प्र.11. पाजेब कहानी के पात्रों एवं चरित्र चित्रण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

पाजेब कहानी के पात्र और चरित्र चित्रण

पाजेब कहानी के पात्र और उनके चरित्र बहुत सजीव प्रतीत होते हैं। कहानी का घटनाक्रम आगे बढ़ता है तो हम पाते हैं कि पिता द्वारा प्यार के प्रदर्शन, सच बोलने पर इनाम के लालच के बावजूद आशुतोष पाजेब चुराने के आरोप को स्वीकार नहीं करता। किन्तु बार-बार पूछे जाने पर पूछताछ की यातना से मुक्ति पाने के लिए या किसी अज्ञात डर या आशंका के कारण वह स्वीकार कर लेता है कि उसने पाजेब छुन्नू को दी। बालक चोरी के आरोप से इंकार करने पर भी चोरी में छुन्नू शामिल कर लेता है। बालक बुद्धि को चोरी के आरोप से मुक्त होने के लिए यही मार्ग सूझा कि उसे छुन्नू के सिर डाल दे। उसने यह कल्पना भी नहीं की थी कि छुन्नू से भी पूछताछ की जाएगी और उसका झूठ पकड़ा जाएगा। उसका यह आचरण बाल मनोविज्ञान का सूचक है। "मैंने बुलाकर कहा, 'अच्छा सुनों। देखो, मेरी तरफ देखो, यह बताओ कि पाजेब तुमने छुन्नू को दी है न?"

वह कुछ देर कुछ नहीं बोला। उसके चेहरे पर रंग आया और गया। मैं एक-एक छाया ताड़ना चाहता था। मैंने आश्वासन देते हुए कहा कि कोई बात नहीं। हाँ-हाँ, बोला डरो नहीं। ठीक बताओं बेटे कैसा हमारा सच्चा बेटा है। मानो बड़ी कठिनाई के बाद उसने अपना सिर हिलाया। मैंने बहुत खुश होकर कहा कि दी है न छुन्नू को? उसने सिर हिला दिया।"

छुन्नू से पूछताछ की जाती है तो वह चोरी से इंकार करता है और आरोप को आशुतोष के कंधे पर सरका देता है। बच्चों का एक दूसरे पर यह आरोप-प्रत्यारोप बालबुद्धि का ही परिचायक है। परन्तु चोरी का आरेप अपने पुत्र पर लगते देखकर छुन्नू की माँ उसकी पिटाई करती है। दोनों बच्चों की माताओं में कहा सुनी होती है। बच्चे जो कल घनिष्ठ मित्र थे, आरोप-प्रत्यारोप के बीच एक दूसरे के शत्रु की तरह व्यवहार करते हैं। पाजेब की चोरी तो संदिग्ध थी, पर आशुतोष और छुन्नू के बीच तनाव, उनकी माताओं के बीच झगड़ा एक वास्तविकता बन गया—"छुन्नू की माँ तो कह रही है कि उसका लड़का ऐसा काम नहीं कर सकता। उसने पाजेब नहीं देखी।" जिस पर आशुतोष की माँ ने कहा कि नहीं तुम्हारा छुन्नू झूठ बोलता है। नतीजा यह हुआ कि छुन्नू की माँ ने छुन्नू को खूब पीटा और खुद भी रोने लगी। कहती जाती—"हाय रे, अब हम चोर हो गए। यह कुलच्छिनी औलाद जाने कब मिटेगी।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि पाजेब के खोने की मामूली घटना से निकलने वाले सूत्र फैलते जाते हैं और उनमें उलझने पैदा होने लगती हैं। ये उलझनें विभिन्न पात्रों के द्वंद्व तथा अंतर्द्वंद्व को कुशलता से चित्रित कर जाती है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि लेखक का बल किसी घटना या प्रसंग के विस्तृत वर्णन पर नहीं है, बल्कि उससे उत्पन्न मानसिक उथल-पुथल, चित्तवृत्तियों के परिवर्तनों पर है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि इस कहानी में बाह्य स्तर पर जो कुछ घटित होते दिखाया गया है, उससे अधिक आन्तरिक स्तर पर घटित होते दिखाया गया है। ऐसा जैनेन्द्र की कहानियों में अक्सर दिखाई देता है। कहा जा सकता है कि लेखक का बल

बाह्य घटना के बजाए आन्तरिक घटना पर अधिक है। चरित्र चित्रण के लिए जैनेन्द्र ने प्रमुख रूप से दो विधियाँ अपनाई है। एक तो पात्रों की गतिविधियों अथवा कार्यकलापों का संक्षिप्त वर्णन और दूसरी विधि है पात्रों के संक्षिप्त तथा स्वाभाविक संवाद। पाजेब पाकर मुन्नी का फुदकना और साइकिल का आश्वासन पाकर संतुष्ट तो हो जाता है, पर उसे मुन्नी की तरह कोई वस्तु नहीं मिली, इसलिए वह पतंग खरीद लाता है। ये क्रियाकलाप बालकों के स्वभाव के अनुकूल है। इसी प्रकार आशुतोष द्वारा छुन्नू को चोरी के आरोप में शामिल करने पर छुन्नू का बदला हुआ व्यवहार और अपने बचाव की कोशिश में आशुतोष पर प्रत्यारोप लगाना बाल सुलभ चेष्टाएँ हैं। आशुतोष द्वारा चाचा के साथ पतंग वाले के पास जाते हुए रास्ते से भाग आना उसके अंतर्द्वंद्व तथा तनाव ग्रस्त मानसिकता को प्रकट करता है।

प्र.12. भाषा शैली के आधार पर पाजेब कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर किसी लेखक की कहानी कला का सम्यक् विवेचन उसकी संपूर्ण कहानियों के आधार पर ही किया जा सकता है, पर उसकी प्रतिनिधि कहानियों के आधार पर भी कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। 'पाजेब' जैनेन्द्र की एक प्रतिनिधि कहानी है, जो उनकी कहानीकला की कुछ विशेषताओं से भी पाठकों का परिचय कराती है। प्रेमचंद युगीन हिन्दी कहानी में वर्णनात्मकता और घटना प्रधानता का आग्रह अधिक प्रचलित था, परन्तु आगे चल कर जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि कहानीकारों ने पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा आंतरिक उथल पुथल की अभिव्यक्ति को मनोवैज्ञानिक कहानी कहना आरम्भ किया। प्रेमचन्द्र और उनके युग के कहानीकारों की कहानियों में मनोविज्ञान की उपेक्षा नहीं की गई थी, परन्तु उनमें घटना के वर्णन का महत्त्व सर्वोपरि था। हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक तथ्यों के समावेश और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति को प्रचलित करने का श्रेय जैनेन्द्र और उन जैसे कहानीकारों को दिया जा सकता है। छोटे-छोटे वाक्यों, सरल शब्दों, स्वाभाविक संवाद योजना, मनोवैज्ञानिक तथ्यों के समावेश से जैनेन्द्र एक कुशल कहानीकार सिद्ध होते हैं।

प्र.13. पाजेब कहानी जैनेन्द्र कुमार की एक उद्देश्यपूर्ण रचना है। इस पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर 'पाजेब' कहानी का उद्देश्य बालकों के मनोविज्ञान को स्पष्ट करना है। उन के मनोविज्ञान को समझ कर ही माँ बाप उनके साथ संतुलित व्यवहार कर सकेंगे। बच्चों में खिलौनों की स्वाभाविक लालसा होती है और बच्चियों में आभूषण पाने की। इसीलिए मुन्नी को बुआ द्वारा पाजेब मिली और आशुतोष को साइकिल का आश्वासन दिया की उसे साइकिल जन्मदिन पर मिलेगी। तब वह बाजार से पतंग ले आया। बालक की यह स्वाभाविक चेष्टा है। इसी बीच पाजेब खो गई, जिसे घर के लोगों ने चोरी समझ लिया। चोरी का आरोप घर के नौकर वंशी पर, फिर आशुतोष पर लगा। इस मुसीबत से बचने के लिए पिता द्वारा धमकाए जाने पर आशुतोष ने चोरी का आरोप स्वीकार कर लिया, परन्तु उसने छुन्नू को भी फँसा लिया। बच्चे अक्सर ऐसा करते हैं, जिसके कारण उनमें लड़ाई होती है और फिर आसानी से सुलह भी। दोनों बच्चे चोरी का आरोप एक-दूसरे पर लगाते हैं, जिसको लेकर उनकी माताओं में कहा सुनी हो जाती है। दोनों की माताएँ, यदि बाल मनोविज्ञान को समझती तो उनमें लड़ाई न होती। लेकिन 'पाजेब' के चोरी होने से एक मध्यवर्गीय परिवार में अशांति का वातावरण पैदा हो गया। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिक वस्तुओं के प्रति इनके मन में असीम लालसा है जिसकी तृप्ति के लिए या चाहने पर वे सभी तरह के मनोवैज्ञानिक दबाव का प्रयोग करने से भी चूकते।

दिन भर आशुतोष मुँह फुलाए रहा और पिता के सामने उसने पहले चोरी का आरोप स्वीकार नहीं किया। बाप से डर कर जो वह नहीं कह सका, उसने माँ के सामने कह दिया। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बाप से बच्चे डरते हैं और उससे एक दूरी रखते हैं, पर माँ उनकी हमराज होती है। शाम को पिता ने आशुतोष को आदेश दिया कि छुन्नू को साथ लेकर पतंग वाले के पास जाए और छुन्नू से उसे पाँच आन्ने वापस दिला कर अपनी पाजेब लेकर आए। उसकी मुसीबत फिर शुरू हो गई और छुन्नू के साथ गली में गिल्ली डण्डे का खेल रुक गया। दोनों बालकों ने फिर एक दूसरे के विरोधी की भूमिका सँभाल ली। बच्चों की दोस्ती और दुश्मनी क्षणिक होती है, स्थायी नहीं। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य भी इस कहानी से उजागर होता है। उत्कर्ष पर पहुँच कर कहानी का अंत रोचक हो गया है। इस रोचकता में पाजेब का आकस्मिक रूप में मिल जाना भी सहायक हुआ। इस रोचक अंत और आकस्मिकता से लेखक की कहानी कहने की कला का परिचय मिलता है।

प्र.14. कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

फणीश्वरनाथ रेणु का जीवन परिचय

हिन्दी कथा साहित्य में जिन कथाकरों ने युगांतर उपस्थित किया है, फणीश्वरनाथ रेणु उनमें से एक हैं। फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 को औराही हिंगना नामक गाँव, जिला अररिया, बिहार में हुआ था। रेणु ने प्रारंभिक शिक्षा फॉरबिसगंज तथा

अररिया में पूरी करने के बाद मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की तथा इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् 1942 में की। रेणु आजीवन शोषण और दमन के विरुद्ध संघर्षरत रहे। इसी प्रसंग में सोशलिस्ट पार्टी से जुड़े व राजनीति में सक्रिय भागीदारी की। सन् 1942 के भारत-छोड़ों आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। 1950 में नेपाली दमनकारी रणसत्ता के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति के सूत्रधार रहे। बाद में उन्होंने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। रेणु आजीवन शोषण और दमन के विरुद्ध संघर्षरत रहे। इसी प्रसंग में सोशलिस्ट पार्टी से जा जुड़े व राजनीति में सक्रिय भागीदारी की। सन् 1942 के भारत-छोड़े आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। सन् 1950 में नेपाली दमनकारी रणसत्ता के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति के सूत्रधार हे। रेणु ने हिन्दी में आंचलित कथा की नींव रखी। सन् 1954 में 'मैला आँचल' उपन्यास प्रकाशित हुआ तत्पश्चात् हिन्दी के कथाकार के रूप में अभूतपूर्व प्रतिष्ठा मिली। जे०पी० आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी की और सत्ता द्वारा दमन के विरोध में पद्मश्री का त्याग कर दिया।

फणीश्वनाथ रेणु ने 1936 के आस-पास से कहानी लेखन का प्रारम्भ किया। उस समय उनकी कुछ कहानियाँ प्रकाशित भी हुई थीं, किन्तु वे किशोर रेणु की अपरिपक्व कहानियाँ थी। सन् 1942 के आंदोलन में गिरफ्तार होने के बाद जब वे 1944 में जेल से मुक्त हुए, तब घर लौटने पर उन्होंने 'बटबाबा' नामक पहली परिपक्व कहानी लिखी। 'बटबाबा' 'साप्ताहिक विश्वमित्र' के 27 अगस्त, 1944 के अंक में प्रकाशित हुई। रेणु की दूसरी कहानी 'पहलवान की ढोलक' 11 दिसम्बर, 1944 को 'साप्ताहिक विश्वामित्र' में छपी। सन् १९७२ में रेणु ने अपनी अंतिम कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' लिखी। फणीश्वरनाथ रेणु की प्रमुख रचनाएँ हैं—

उपन्यास—रेणु को जितनी ख्याति हिन्दी साहित्य में अपने उपन्यास मैला आँचल से मिली, उसकी मिसाल मिलना दुर्लभ है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने उन्हें रातों-रात हिन्दी के एक बड़े कथाकार के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। कुछ आलोचकों ने गोदान के बाद इसे हिन्दी का दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास घोषित किया साथ ही कुछ विवाद भी इससे जुड़े रहे, जैसे—इसे सतीनाथ भादुरी के बंगाल उपन्यास 'धोधाई चरित मानस' की नकल बताने का प्रयास किया गया। परती परिकथा भी उनका महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

कहानी संग्रह—उनकी अब तक उपलब्ध कहानियों की संख्या 63 है। 'रेणु' को जितनी प्रसिद्धि उपन्यासों से मिली, उतनी ही प्रसिद्धि उनको उनकी कहानियों से भी मिली। 'ठुमरी', 'अगिनखोर', आदिम रात्रि की महक', 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप', 'अच्छे आदमी', 'सम्पूर्ण कहानियाँ', आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

संस्मरण—कथा-साहित्य के अतिरिक्त उन्होंने संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी लिखा। 'वन-तुलसी की गंध', 'श्रुत अश्रुत पूर्व', 'समय की शिला पन', 'आत्म परिचय', उनके संस्मरण है।

रिपोर्ताज—इसके अतिरिक्त 'रेणु' 'दिनमान पत्रिका' में रिपोर्ताज भी लिखते थे। 'ऋणजल-धनजल' और 'नेपाली क्रांति कथा' उनके रिपोर्ताज का उत्तम उदाहरण है।

प्र.15. तीसरी कसम कहानी के कथानक और पात्रों के चरित्र चित्रण की विवेचना कीजिए।

उत्तर

तीसरी कसम कहानी के तत्त्व

कथानक—'तीसरी कसम' कहानी में प्रेम की एक गहरी पीड़ा है और सामाजिक परिवेश भी बड़ी जीवन्तता और सघनता से उसके इर्द-गिर्द बना हुआ है। इस कहानी का प्रमुख पात्र अथवा नायक हिरामन बैलगाड़ी वाला भोला-भाला बिहारी युवक पहले वह नेपाल से तस्करी का सामान ढोकर भारत में लाता था। एक बार एक सेठ के कपड़े की गाँठें पकड़ी गईं तो उसने रात के अंधेरे में अपने बैलों के साथ भागकर जान बचाई। तब उसने **पहली कसम** खाई थी कि वह कभी तस्करी का माल नहीं ढोयेगा। इसके बाद हिरामन जानवरों की ढुलाई करने लगा। वह बाँस भी ढोता था। जिसमें उसे बड़ी परेशानी होती थी। एक दिन वह अपनी गाड़ी में बाँस लादकर ले जा रहा था। बाँसों का कुछ हिस्सा आगे और कुछ पीछे की ओर निकला था। हिरामन की बैलगाड़ी एक बग्घी से टकरा गई। बग्घी की छतरी टूट जाने पर बग्घी हाँकने वाले ने हिरामन को कोड़े से मारा। उस समय हिरामन ने दूसरी कसम खाई कि अब कभी वह अपनी गाड़ी में बाँस नहीं ढोयेगा। इसके बाद की घटना है कि फारबिसगंज की नौटंकी में नाचने वाली हीराबाई उसकी गाड़ी में सवार हुई और एक अपरिचित सम्बन्ध इसके साथ जुड़ गाय। इस बार उसने **तीसरी कसम** खाई कि भाड़ा चाहे कितना भी मिले, ऐसी लदनी फिर नहीं लादूँगा। यह कहानी गाड़ीवान हिरामन और नर्तकी हीराबाई के सरल, स्निग्ध एवं सहज सम्बन्धों की है—फारबिसगंज में मेला लगता है ओर हिरामन कई बार फरबिसगंज आया है, परन्तु हीराबाई के कारण राह चलते हुए हिरामन ने किसी दूसरे गाड़ीवान को गलत बता दिया कि वह 'छत्तापुर पचीरा' जा रहा है और दूसरी बार दूसरे गाड़ीवानों से कह दिया कि वह कुड़मा 'गाँव जा रहा है। हीराबाई हैरान होकर कह उठी कि ' छत्तापुर पचीरा' कहाँ है? जिस पर हँसते हँसते हिरामन के पेट में बल पड़ गये। हिरामन के 'तगच्छिया' के पास पहुँचने पर पर्दे वाली गाड़ी को देखकर बच्चे तालियाँ बजाकर गा

उठे—''लाली लाली डोलियाँ में लाली रे दुल्हनियाँ।'' हिरामन भी स्वप्नों में दुल्हन को लेकर लौटा है। कई बार और इस बार 'तगच्छिया' गाँव की ही नहीं, किसी दूसरे गाँव की स्मृति भी उसकी नस-नस में समा रही है। 'कजरी नदी' के साथ-साथ उसकी सड़क जा रही है और 'परमान नदी' का तो महुआ घटयारिन की लोककथा से सम्बन्ध ही हैं हीराबाई की कथा सुनने की रुचि को पूरा करने के लिए हिरामन को लीक छोड़कर ननकपुर के रास्ते पर जाना पड़ा। कहानी के अन्त में हीराबाई जब हिरामन से विदा लेती है, तब हिरामन को बहुत दु:ख होता है, क्योंकि वह उससे अत्यधिक प्रेम करने लगता है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' कहानी का गठन सुव्यवस्थित रूप से किया है, जिससे कहानी सशक्त, सुग्राह्य, प्रभावशाली और रोचक बन पड़ी है। लेखक ने कहानी में ऐसे विषय का चयन किया है, जो सहज ही पाठक को बाँधने में समर्थ है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण—फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' कहानी में हिरामन और हीराबाई प्रमुख पात्र हैं। इनके अतिरिक्त धुन्नीराम, पलटदास, लालमोहर गाड़ीवान हैं। हिरामन की भाभी और भाई का भी चरित्र चित्रण किया गया है। हिरामन गाड़ीवान है। वह पूर्णिया जिले का रहने वाला चालीस साल का हट्टा-कट्ठा, काला-कलूटा देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। हिरासन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है, हिरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही गौने से पहल की दुल्हिन मर गई। हिरामन को अपनी गाड़ीवानी से बहुत लगाव है, चाहे सब कुछ छूट जाए, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन। उसे इस बार विचित्र अनुभव हुआ। दो बार पहले चोरी का माल और बाँसों की लदनी लादकर जो प्राण फँसे थे, सो बाल-बाल बचा। अब टप्पर में लाद रहा है हीराबाई को और परदा डालने पर भी उसे पीठ में गुदगुदी-सी लगती है। वह आश्चर्यचकित है कि यह औरत फूल-सी महक रही है, उसकी गँवई बातों, गाँव-गीत, लोककथाओं आदि में इतनी रुचि लेती है और स्वयं उसे 'मीता', 'भैयन', 'गुरुजी' कहती है। इतनी सुन्दर स्त्री कोई डाकिन-पिशाचिन नहीं हो सकती है, परन्तु हिरामन का कलेजा धड़कता है लेकिन जब वह उसे देख लेता है कि वह तो अति सुन्दर युवा स्त्री है तो हिरामन मन ही मन में उससे प्रेम करने लगता है। हिरामन का एकतरफा प्रेम ही कहानी को बाँधे रखता है।

प्र.16. फणीश्वरनाथ रेणु की 'तीसरी कसम' कहानी की संवाद एवं भाषा शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

'तीसरी कसम' कहानी का कथोपकथन या संवाद

फणीश्वरनाथ रेणु बहुचर्चित एवं सुप्रसिद्ध आंचलिक कथाकार हैं। इसीलिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि उनकी कहानियों में अंचल विशेष की भाषा का प्रयोग संवादों के अन्तर्गत किया जाए, जिससे उस ग्राम्यांचल में रहने वाले लोगों के जीवन को सरलता से समझा जा सके। इस सन्दर्भ में 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' कहानी से निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं—

''भैया तुम्हार नाम क्या है?''

''मेरा नाम ... मेरा नाम है हिरामन।''

तब तो मीता कहूँगी, भैया नहीं मेरा नाम भी हीरा है''।

इस्स! मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है। ''हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।''

भाषा-शैली—कहानी विधा के क्षेत्र में श्री फणीश्वरवनाथ रेणु एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कथाकार इसलिए माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने परम्परागत रूढ़ भाषा में अपनी कहानियों की रचना न करके अंचल-विशेष में प्रयुक्त होने वाली भाषा का प्रयोग किया है। यही कारण है कि उनकी कहानियों की भाषा जन-जीवन को तो सूक्ष्मता से रूपायित करती ही है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा यथार्थ के धरातल पर भी अवस्थित है। यही गुण उनकी तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम कहानी में भी परिलक्षित होता है। उनकी आंचलिक भाषा सहज एवं स्वाभाविक होने के साथ-साथ प्रभावशाली, सशक्त तथा सार्थक भी है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पंच परमेश्वर कहानी के सारांश की समीक्षा कीजिए।

उत्तर

पंच परमेश्वर कहानी का सारांश

जुम्मन और अलगू चौधरी में गहरी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन भी साझा था। दोनों को एक-दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये और अलगू जब कभी बाहर जाते तो जुम्मन के भरोसे अपना घर छोड़ देते थे। इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ था, जब जुम्मन के पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। जुम्मन

शेख की एक खाला थीं। उनके पास थोड़ी सी जायदाद थी परन्तु उनके निकट सम्बन्धियों में कोई नहीं था। जुम्मन ने खाला से लम्बे चौड़े वादे करके खाला से जायदाद अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री नहीं हुई, तब तक खाला की खूब खातिरदारी हुई। स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए गये। रजिस्ट्री की मुहर लगते ही इस खातिरदारी पर भी मुहर लग गयी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियाँ देने के साथ कड़वी बातें भी सुनाने लगी। जुम्मन शेख भी निष्ठुर हो गए। कुछ दिन खाला ने सब सुना और सहा, पर जब सहा न गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने गृह स्वामिनी के प्रबन्ध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अंत में एक दिन खाला ने कहा—बेटा तुम्हारे साथ मेरा निबाह ना होगा। तुम मुझे रुपए दे दिया करो, मैं अलग खा पका लूँगी। जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपए क्या यहाँ फलते हैं? खाला बिगड़ गयी उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन बोले—हाँ जरूर पंचायत करा लो, फैसला हो जाए। मुझे भी रात-दिन की यह खट-पट पसंद नहीं।

एक दिन संध्या के समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। जुम्मन शेख ने पहले से ही सारा प्रबन्ध कर रखा था। पंच लोग बैठ गए तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की—पंचो आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भांजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। जुम्मन ने रोटी कपड़ा देना कबूल किया था। साल भर तो मैंने रो-धोकर इसके साथ काटा, पर अब सहा नहीं जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है न तन का कपड़ा। मैं बेसहारा हूँ। तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलूँ। मैं पंचो की बात सिर माथे पर चढ़ाऊँगी। सरपंच किसे बनाया जाए, इस प्रश्न पर जुम्मन शेख और खालाजान में कुछ कहा-सुनी हो गयी। अंत में खाला बोली—बेटा पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन। तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्हीं को सरपंच मानती हूँ।

जुम्मन शेख आनंद से फूल उठे, परन्तु अपने मन के भावों को छिपाकर बोले-चलो चौधरी ही सही। अलगू चौधरी सरपंच हुए। उन्होंने कहा—शेख जुम्मन हम तुम पुराने दोस्त हैं, मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। जुम्मन ने काहा—खुदा गवाह है, आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। अलगू चौधरी ने जुम्मन से जिरह शुरू की। जुम्मन चकित थे कि अलगू को आखिर क्या हो गया है। अभी तो यह मेरे साथ बैठे थे, अब इतने प्रश्न मुझसे क्यों पूछते हैं? जुम्मन यह सोच ही रहे थे कि अलगू ने फैसला सुनाया—जुम्मन शेख पंचो ने इस मामले में विचार किया। उन्हें यह उचित मालूम होता है की खालाजान को माहवार खर्च दिया जाए। बस यही हमारा फैसला है। अगर खर्च देना मंजूर ना हो तो रजिस्ट्री रद्द समझी जाए। फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आ गये।

अलगू के फैसले की सभी लोग प्रशंसा कर रहे थे परन्तु इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ें हिला दी। जुम्मन को यह फैसला आठों पहर खटकने लगा। वे इस ताक में थे कि किसी तरह अलगू से बदला लेने का अवसर मिले। ऐसा अवसर जल्द ही जुम्मन के साथ में आया। अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी जोड़ी मोल लाए थे। दैवयोग से जुम्मन की पंचायत के एक महीने बाद इस जोड़ी का एक बैल मार गया। अब अकेला अबैल किस काम का? गाँव में समझू साहू थे, उन्होंने एक महीने में दाम चुकाने का वादा करके चौधरी से बैल खरीद लिया। समझू ने नया बैल पाया तो लगे रगेदने, न चारे की फिक्र न पानी की। वह दिन में तीन-तीन, चार-चार, खेपें करने लगे। एक दिन समझू ने दूगना बोझ लाद दिया। बैल ने जोर लगाया, पर आधे रास्ते में धरती पर गिर पड़ा, ऐसा गिरा कि फिर ना उठा। इस घटना के कई महीने बीत गए। अलगू जब बैल का दाम माँगते, तब साहू-सहुवाइन दोनों ही झल्ला उठते। कहते मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम माँगने चले हैं। इसी तरह कई बार झगड़े हुए पर, साहूजी ने बैल का दाम ना चुकाया। लोगों ने साहूजी को समझाया-भाई पंचायत कर लो। जो कुछ तय हो जाए, उसे स्वीकार कर लो। साहूजी राजी हो गए तथा अलगू ने हामी भर ली। उसी वृक्ष के नीचे पंचायत शुरू हुई। रामधन ने कहा-चौधरी बोलो किसे पंच मानते हो? अलगू ने कहा—समझू साहू ही चुन लें—समझू खड़े हुए और कड़क कर बोले-मेरी ओर से जुम्मन शेख।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू का कलेजा धक-धक करने लगा। फिर उन्होंने कहा-ठीक है मुझे स्वीकार है। सरपंच का आसन ग्रहण करते ही जुम्मन में जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उन्होंने सोचा—मैं इस समय न्याय के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। सत्य से जौ—भर टलना मेरे लिए उचित नहीं है। पंचो ने दोनों से सवाल-जबाव शुरू किया। बहुत देर तक दोनों अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। अंत में जुम्मन ने फैसला सुनाया-अलगू चौधरी और समझू साहू! पंचों ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू के लिए उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस समय उन्होंने बैल लिया था, उस समय उसे कोई बीमारी नहीं थी। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे कठिन परिश्रम लिया गया और दाने-चारे का प्रबन्ध नहीं किया गया। अलगू चौधरी फूले न समाए, उठ खड़े हुए और जोर से बोले—पंच परमेश्वर की जय, साथ ही सभी लोगों ने दोहराया—पंच परमेश्वर की जय। थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए और उनके गले से लिपट गये। अलगू रोने लगे इस पानी से दोनों के दिलो का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गयी।

प्र.2. पाजेब कहानी कलात्मक दृष्टि से सफल है। इसके कथानक पर प्रकाश डालिए।

उत्तर 'पाजेब' जैनेन्द्र कुमार की एक प्रसिद्ध तथा कलात्मक दृष्टि से सफल कहानी है। लेखक ने पाजेब को लेकर इस कहानी में बाल मनोविज्ञान का उद्‌घाटन किया है। मुन्नी की पाजेब खो जाती है। इसकी चोरी का आरोपी आशुतोष को समझा जाता है। अपने पिता के बार-बार पूछने तथा दबाव देने पर वह निरपराध होते हुए भी पायल चुराने का आरोप स्वीकार कर लेता है। बच्चे अबोध होते हैं। वह तर्क-वितर्क करना नहीं जानते। स्नेह, भय तथा प्रलोभन के कारण आशुतोष भी अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं कर पाता। अंत में बुआ के आने पर पता चलता है कि पायल भूल से उनके साथ चली गई थी। तब आशुतोष निरपराध सिद्ध होता है। जैनेन्द्र जी की कहानी का कथानक व्यवस्थित है तथा उसका विकास नियमानुसार हुआ है। इसमें पायल वह वस्तु है जिसको लेकर पूरा कथानक बुना गया है। कहानी का आरम्भ तथा अन्त पाजेब से ही हुआ है। आरम्भ से धीरे-धीरे विकास की ओर बढ़ती कथावस्तु चरम बिन्दु पर पहुँचती है तो वही उसका अन्त भी हो जाता है।

'पाजेब' में मुख्य पात्र आशुतोष ही है। उसका चरित्र-चित्रण मनोविज्ञान के अनुरूप है। अन्य पात्रों में उसके पिता-माता, छुन्नू की माँ, बंसी तथा प्रकाश आदि हैं। सभी का चरित्रांकन सफलतापूर्वक हुआ है। कहानी के संवाद छोटे, सजीव तथा नाटकीय हैं। वे पात्रों के चरित्र तथा कथानक के अनुकूल हैं। 'पाजेब' एक उद्‌देश्यपूर्ण रचना है। कहानीकार यह कहना चाहता है कि बालक कोमल बुद्धि के होते हैं। वे तर्क-वितर्क करना नहीं जानते। झूठ बोलना तथा गलतियों को छुपाना भी वे नहीं जानते। यदि वे किसी अपराध की ओर प्रवृत्त होते हैं तो इसके दोषी वे नहीं घर-परिवार के लोग तथा कुछ पारिवारिक स्थितियाँ होती हैं। उनके साथ बातचीत के व्यवहार में बड़ों को सावधान तथ सतर्क रहना चाहिए तथा उनके साथ कोमलता, सहानुभूति और स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर हम 'पाजेब' को जैनेन्द्र कुमार की एक सफल कलात्मक कहानी कह सकते हैं।

कथानक—कहानी के पहले ही प्रसंग से बुआ द्वारा मुन्नी और आशुतोष के लाड़प्यार का संक्षिप्त वर्णन है। बुआ मुन्नी को पाजेब खरीद कर देती है, जिससे मुन्नी की आभूषण की लालसा का संकेत प्रारम्भ में ही मिल जाता है। बुआ आशुतोष को उसके जन्मदिन पर साइकिल देने का आश्वासन देती है। परिवार में यदि एक बच्चे को कुछ दिया जाए तो दूसरे बच्चों में ईर्ष्या पैदा होती है। यह ईर्ष्या भी बच्चों की स्वाभाविक लालसा से उत्पन्न होती है। आशुतोष बुआ से कोई वस्तु नहीं पाता, पर साइकिल का आश्वासन पाकर संतुष्ट हो जाता है। मुन्नी द्वारा पाजेब की माँग और आशुतोष द्वारा साइकिल की माँग में केवल रुचि भेद का ही अंतर नहीं है, बल्कि जैविक अंतर भी है और परिवार में लड़की तथा लड़के के पालन-पोषण में किया जाने वाला अंतर भी है। परिवार में लड़के का जन्मदिन एक महत्त्वपूर्ण तिथि है, जिसे उल्लासपूर्वक मनाया जाता है, परन्तु लड़की का जन्मदिन मनाने की परम्परा भारतीय परिवारों में प्राय: नहीं है। मुन्नी पाजेब पाकर फुदकती-नाचती सबको दिखाती फिर रही है और आशुतोष अपने जन्मदिन पर मिलने वाली साइकिल की कल्पना में मग्न है। उनकी बाल सुलभ चेष्टाओं का लेखक ने कुशल अंकन किया है। बच्चों की स्वाभाविक इच्छाओं, उनकी भोली चेष्टाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति कहानी के प्रारम्भ में ही मिल जाती है। यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में ही कहानी की प्रस्तावना है। प्रस्तावना में ही लेखक मनोवैज्ञानिक तेवर अपना लेता है, जो बालकों के आपसी संवादों, उनकी बाल सुलभ चेष्टाओं द्वारा प्रकट होता है।

इसके बाद एक पाजेब के न मिलने की सूचना दी जाती है। एक पाजेब का खो जाना चोरी में बदल जाता है। घर में अक्सर चीजें ठीक अवसर पर नहीं मिलती और खो भी जाती हैं, पर चाँदी की एक पाजेब का खो जाना परिवार के लिए महत्त्वपूर्ण घटना है। वह एक वस्तु की अनुपस्थिति नहीं आभूषण की अनुपस्थिति है। आभूषण का भारतीय मध्यवर्गीय परिवारों में विशेष महत्त्व है। इसलिए पाजेब का खोना तुरन्त चोरी में बदल जाता है। पाजेब भी एक वस्तु है, पर वह चाँदी की है, इसलिए उसका खो जाना सरासर चोरी मान लिया जाता है। चोरी शक को जन्म देती है और शक के घेरे में घर का नौकर वंशी, फिर बालक आशुतोष और एक पड़ोसी का बालक छुन्नू आ जाते हैं। कहानी का सम्पूर्ण घटनाक्रम इस संक्षिप्त चोरी के चारों ओर घूमता है। एक मामूली घटना अनेक प्रसंगों में फैलती जाती है। वंशी, आशुतोष, छुन्नू से पूछताछ होती है, घरों में तनाव बढ़ता है और आशुतोष की माँ तथा पड़ोसन छुन्नू की माँ के बीच कहा सुनी हो जाती है।

कहा जा सकता है कि 'पाजेब' एक मामूली घटना (एक पाजेब का घर में न मिलना) पर आधारित एक कहानी है। निश्चित रूप से इस कहानी का आधार बड़ी मामूली घटना है, पर इससे लेखक ने यह संकेत देना चाहा है कि आधुनिक कहानी में घटना मुख्य नहीं रही, बल्कि घटना में निहित अर्थ मुख्य हो गया है। इस कारण छोटी-से-छोटी घटना कहानी का आधार हो सकता है, जैसे—कोई मामूली व्यक्ति आधुनिक हिन्दी उपन्यास का आधार हो सकता है। तब इस घटना का चित्रण, उसका विवरण कहानी की उत्कृष्टता की कसौटी नहीं रहा, बल्कि यहाँ उसका निहितार्थ अथवा उसकी संवेदना की मार्मिकता मुख्य हो गई। इस प्रकार 'पाजेब' कहानी एक मामूली घटना पर आधारित होकर भी गैरमामूली कहानी हो गई है।

कहानी के तीसरे भाग में घटनाक्रम उत्कर्ष की ओर बढ़ता है। आशुतोष को चाचा के साथ पतंग वाले के पास जाने के लिए विवश किया जाता है। पहले तो वह न जाने की जिद पर अड़ा रहा। समझाने बुझाने, फुसलाने, डराने के बाद वह चाचा के साथ गया भी तो रास्ते से लौट आया। उसका सबसे बड़ा डर यह है कि पिता के दबाव में आकार वह जो झूठा बोला है (यद्यपि उसे सच के रूप में कहा गया है)। उसकी पोल खुल जाएगी और उसका झूठ पकड़ा जाएगा। पिता के दबाव में आकर या बार-बार की पूछताछ से बचने के लिए अथवा अपने पर किए गए संदेह की दिशा को छुन्नू की ओर मोड़ने के लिए उसने झूठ बोल दिया और समझ लिया की मुसीबत टल गई। परन्तु एक झूठ दूसरे झूठ को जन्म देता है या दूसरे झूठ की भूमिका तैयार कर देता है। इस प्रकार झूठ की एक शृंखला बन जाती है और आदमी अनचाहे उसमें फंस जाता है।

रास्ते से लौट आने पर पिता द्वारा आशुतोष को फिर कोठरी में बंद कर दिया जाता है। पिता ने यह समझा था कि सख्ती करके वह बेटे को सीधे मार्ग पर ले आएगा, परन्तु उसकी सख्ती बेकार गई। जब कोठरी का दरवाजा खोला गया तो आशुतोष को मजे से सोता हुआ पाया गया। बालक के साथ ज्यादा सख्ती करके भी उसकी जिद पर काबू नहीं पाया जा सकता। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, जिसकी ओर कहानीकार ने बड़ी सहजता से संकेत कर दिया है। जिद किसी व्यक्ति का प्रकट दृढ़ निश्चय हो सकता है, परन्तु वह एक प्रतिक्रिया भी हो सकती है, जो किसी बात का विरोध करने के लिए अथवा झूठ को सच सिद्ध करने के असफल कोशिश के उद्देश्य से व्यक्त हो सकती है। आशुतोष का व्यवहार इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

जब कोठरी में बंद करना व्यर्थ गया तो पिता ने उसे एक रुपया देकर, फुसला कर, लालच देकर चाचा के साथ पतंग वाले के पास जाने का आदेश दिया। बालक पर सख्ती का असर नहीं हुआ था, परन्तु एक रुपये का लालच काम कर गया और आशुतोष चाचा के साथ पतंग वाले के पास जाने को तैयार हो गया। यहाँ एक दूसरा मनोवैज्ञानिक तथ्य सामने आया कि बच्चे को वांछित मार्ग पर लाने के लिए सख्ती के बजाए उसे लालच दे कर, बहला कर काम चलाना अधिक उपयुक्त है। इस प्रसंग से यह भी प्रकट होता है कि बच्चे को फुसलाना आसान है और सख्ती करने से अथवा पिटाई करने से वह जिद्दी और ढीठ हो जाता है।

कहानी अपने उत्कर्ष पर अंत में वहाँ पहुँचती है, जहाँ आशुतोष की बुआ प्रकट होकर सूचना देती है कि पाजेब गलती से उसके साथ चली गई थी और वह पाजेब निकाल कर सामने रख देती है। अंत में जब रहस्य खुलता है कि पाजेब की चोरी ही नहीं हुई थी और उसके खोने को चोरी मान लिया गया था, तब आशुतोष और छुन्नू पर लगाए गए चोरी और झूठ बोलने के आरोप कितने व्यर्थ लगते है। आशुतोष के हाथ में पतंग देखकर अनुमान लगा लिया गया कि, वह पतंग वाले को पाजेब बेच कर पतंग खरीद कर लाया होगा।

'पाजेब' कहानी के अंतिम भाग से पता चलता है कि लेखक ने जिस रहस्य को कहानी में दूर तक छिपाए रखा, उसे उपयुक्त समय पर उद्घाटित करके औपन्यासिक युक्ति का इस्तेमाल किया, जिससे पाठकों को जिज्ञासा-तृप्ति का सुख मिलता है। इससे कहानी की रोचकता में भी वृद्धि हुई है।

उक्त रहस्य के उद्घाटन से कहानी की दिशा ही बदल जाती है, परन्तु कहानी घटनाक्रम की दृष्टि से अपने उत्कर्ष पर पहुँच जाती है और तब ही कहानी समाप्त हो जाती है। इस प्रकार पश्चिमी साहित्य-सिद्धांत के अनुसार उत्कर्ष (climax) के बाद (anti-climax) का भी विधान है, अर्थात् इस की कथा वस्तु में कोई उतार या (anti-climax) नहीं है। पर कहानी का अंत बड़ा आकस्मिक है और इसलिए रोचक है कि कहानी का उत्कर्ष पर पहुँच कर समाप्त हो जाना चौंकाने वाला है और इसलिए कैसे शुरू की जाएँ और कैसे उसका अंत किया जाए, यह कहानी लेखक की कहानीकला का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस संदर्भ में जैनेन्द्र अपने लेखकीय कौशल का परिचय देते हैं।

प्र.3. पाजेब कहानी के संवाद स्वाभाविक, रोचक, सशक्त, नाटकीय एवं संक्षिप्त हैं। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

उत्तर कहानी में संवाद, कथोपकथन अथवा वार्तालाप का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इनका प्रयोग कहानीकार कथानक के विकास तथा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए करता है। संवाद यद्यपि नाटक का मूल तत्त्व है। किन्तु किसी कथा-साहित्य को रोचक बनाने में भी वह अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक होते हैं। जैनेन्द्र कुमार की 'पाजेब' में संवाद को विशेष स्थान प्राप्त है। कथानक को आगे बढ़ने के लिए लेखक ने अपनी ओर से कम कहा है, पात्रों से अधिक कहलवाया है। ये संवाद प्राय: छोटे हैं। यद्यपि कुछ लम्बे संवाद भी हैं किन्तु एक तो वे अधिक लम्बे नहीं हैं तथा उनकी संख्या भी कम ही है। ये छोटे-छोटे संवाद लेखक (आशुतोष के पिता) तथा आशुतोष के माध्यम से बोले गए हैं तथा कहानी की संवेदना की व्यंजना में भी सहायक है। "अच्छा तुमने कहाँ से उठाई थी?" "पड़ी मिली थी" "और फिर नीचे जाकर वह तुमने छुन्नू को दिखाई?" "हाँ!" "फिर उसी ने कहा कि इसे बेचेंगे?" "हाँ!" "कहाँ बेचने को कहा?" इत्यादि। 'पाजेब' कहानी में पाजेब का मुख्य स्थान है। कहानी का आरम्भ इसी से हुआ है तथा पूरा ताना-बाना इसी से बुना गया है। अंत भी पाजेब से ही हुआ है। कहानी के आरम्भ के

कुछ संवाद इस कार्य में सहायक हैं। इनमें संक्षिप्तता, रोचकता और नाटकीयता है। हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबू जी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी। मैंने कहा कि अच्छा-अच्छा। बोली कि मैं तो आज ही मँगा लूँगी। पूरी कहानी में जिस पायल के तलाश का प्रयास हो रहा है। अंत में वह बुआ के बास्केट की जेब से निकलती है तो उसे देखकर भयभीत लेखक के मुँह से "क्या" यह शब्द ही निकलते हैं। संवाद रोचक हैं। लेखक और उसकी पत्नी के मध्य हुए निम्नलिखित संवाद में उनके बीच के प्रेममाधुर्य तथा हास-परिहास का चित्रण हुआ है। श्रीमती जी ने हमसे कहा कि क्यों जी, लगती तो अच्छी है, मैं भी एक बनवा लू? मैंने कहा कि क्यों न बनवाओ! तुम कौन चार बरस की नहीं हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि पाजेब कहानी के संवाद रोचक, स्वाभाविक, सशक्त, नाटकीय तथा संक्षिप्त हैं। इसकी कहानी के पात्रों के अनुकूल, अवसर के अनुकूल संवाद भी लेखक की कहानीकला के वैशिष्टय हैं। प्राय: संवाद लम्बे नहीं हैं। कहीं-कहीं एक दो शब्दों से, 'हाँ' या 'ना' से और कहीं-कहीं मौन से काम चलाया गया है। आशुतोष और उसके पिता के बीच हुए संवाद ऐसे ही हैं। आशुतोष की माँ और छुन्नू की माँ के बीच हुए संवाद दोनों की संकीर्ण सोच को स्पष्ट करते हैं। वे पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के द्योतक हैं। 'पाजेब' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें चित्रित घटनाएँ गौण अथवा प्रासंगिक है। पूरी कहानी बाल-मनोविज्ञान पर आधारित है। बालकों की छोटी-छोटी इच्छाएँ, उनके बाल सुलभ कामों, क्षण में शत्रुता और क्षण में दोस्ती का व्यवहार, खिलौने और आभूषणों से प्रेम आदि बाल सुलभ प्रवृत्तियों को इस कहानी में दिखाया गया है। मुन्नी का पाजेब की फरमाइश करना और आशुतोष द्वारा साइकिल की इच्छा अत्यन्त स्वाभाविक है। इन दोनों बालकों के अतिरिक्त छुन्नू के चरित्र का चित्रण भी स्वाभाविक एवं यथार्थ है।

देशकाल और वातावरण—जैनेन्द्र ने पाजेब कहानी के माध्यम से नौकरीपेशा मध्यवर्ग की मानसिकता और नैतिक मूल्यों में आ रहे बदलाव की ओर संकेत किया है। शहरीकरण और पूँजी के बढ़ते हुए वर्चस्व के कारण मानवीय सम्बन्धों में तेजी से बदलाव आने लगा था। नई कहानी के दौर के सभी लेखकों की रचनाओं में इस बदलते हुए जीवन मूल्यों को यथार्थवादी, मनोविश्लेषणवादी और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से जाँच-परख कर प्रस्तुत किया। जीवन मूल्यों के तेजी से बदलने का वह समय था। व्यक्ति का जीवन इतना सरल नहीं रह गया था जैसा कि कुछ समय पहले तक वे तत्त्व मौजूद थे। आपसी सम्बन्धों में संदेह और अविश्वास पैदा होने लग गया था। आर्थिक और राजनीतिक दबाव ने व्यक्ति के बीच संदेह का वातावरण तैयार कर दिया था। एक प्रकार के भय से आक्रांत मध्यवर्ग कई-कई आशंकाओं को अपने मन में पालने लग गया था। संयुक्त परिवार के विघटन ने मध्यवर्ग को भयाक्रांत कर दिया था। जीवन के आदर्शों से वह हटने लगा था। व्यवस्था में आए बदलाव ने आपसी रिश्ते-नातों पर भी आघात करना प्रारम्भ कर दिया था। इन्हीं बदलते हुए सम्बन्धों, आशंकाओं और संदेहों के माध्यम से जैनेन्द्र ने 'पाजेब' के माध्यम से मध्यवर्गीय मानसिकता में आए बदलाव को चित्रित किया है। व्यवस्था के अंतर्विरोधों को उघाड़ने में पारिवारिक सम्बन्धों के बीच आ बैठे संदेह ने, पिता ने पुत्र पर दबाव डालकर न हुई चोरी को कबुलने के लिए मजबूर कर दिया। यहाँ केवल बेटे द्वारा एक अपराध होने की यो चोरी करने की मात्र आशंका से मध्यवर्गीय नीति मूल्यों के टूटने की पीड़ा पिता को घेर लेती है। आशुतोष का प्रत्येक हाव-भाव, उसके दोस्त छुन्नू के साथ उसका पतंग उड़ाना आदि बाल सुलभ खेल को संदेह की नजर से देखा जाना, तत्कालीन समय में आर्थिक दबाव के कारण बदलते जीवन मूल्यों की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। नैतिक मूल्यों की वास्तविक शिक्षा बाल्यकाल में ही दी जानी चाहिए, इस समय दंड और पुरस्कार देकर बच्चों में इन मूल्यों का विकास किया जा सकता है जो एक बालक की प्रवृत्तियों के अनुकूल ही है। लेकिन जैसे ही दंड और पुरस्कार को कठोर अनुशासन के रूप में प्रयोग किया जाएगा तो नैतिक विकास की दिशा विपरीत हो जाएगी। परिवार में नैतिक मूल्यों की एकरूपता बालक के नैतिक विकास के लिए अति आवश्यक है। पिता का नैतिक मूल्यों के प्रति अति आग्रह और आशुतोष में इन मूल्यों के विकास के अभाव की शंका ने पिता को कठोर शासन करने पर मजबूर कर दिया था। यहाँ हम देख रहे हैं कि अपने पक्ष की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए परिवार ने आशुतोष को संदेह के घेरे में लेकर एक अस्त्र की तरह इस्तेमाल किया। बल्कि अस्तित्व को नकारकर उसके निजी क्षेत्र में अर्थात् उसके निर्णय लेने अथवा उसके कहे गए सच को न मानकर उसे अंत में झूठ बोलने पर मजबूर किया गया। मध्यवर्ग की यह उधेड़-बुन अवस्था उसकी अर्थ की समसयाओं का ही परिणाम है। व्यक्ति जितना आर्थिक समस्याओं से जूझता जाता है, उतना ही वह इस उधेड़-बुन में फँसता चला जाता है। अपने ऊपर या परिवार जनों पर से विश्वास उठना व्यक्ति के जीवन में हो रहे उतार-चढ़ाव का ही प्रतिबिंब होता है।

आशुतोष के माता-पिता एक विशिष्ट दायरे में घूमते हुए नजर आते हैं, सामाजिक यथार्थ से एकदम निरपेक्ष अपनी ही समस्याओं से घिरे हुए। उनका संघर्ष, परिवार के सदस्यों का चिंचित हो जाना स्वाभाविक है लेकिन जीवन की अन्य समस्याओं के प्रति उदासीन होकर केवल पाजेब की चोरी तक ही इसे सीमित किए जाने से यह केवल पारिवारिक समस्या बन कर रह जाती है। इसका सामाजिक पक्ष इसमें निहित नहीं है। सारा संघर्ष भीतरी है, व्यक्ति के मन के भीतर चलता है, समाज के भीतर नहीं।

मध्यवर्ग की संकुचित दायरे में केवल अपने तहत् सोचने की मानसिकता का जैनेन्द्र ने वास्तविक चित्रण इस कहानी के माध्यम से किया है। जैनेन्द्र की यह विशेषता है कि व्यक्ति के मन के भीतर चलने वाले द्वंद्व और उथल-पुथल को अभिव्यक्त करना, यही उनकी कहानी का लक्ष्य भी होता है। इसलिए 'पाजेब' कहानी में केवल एक परिवार के आंतरिक सम्बन्धों, आपसी मतभेद, उतार-चढ़ाव, व्यक्तिगत समस्याओं को ही महत्त्व दिया गया है। कहानी में केवल एक घटना है और उसके इर्द-गिर्द सभी पात्र घूमते रहते हैं। घटना बहुलता नहीं है, सामाजिक संस्कारों को अभिव्यक्त करने या सम्बन्ध होने का जैसे कोई औचित्य ही नहीं है।

प्र.4. विष्णु प्रभाकर के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

विष्णु प्रभाकर : जीवन परिचय

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 को मीरापुर, जिला मुजफ्फरनगर **(उत्तर प्रदेश)** में हुआ था। इन्हें इनके एक अन्य नाम 'विष्णु दयाल' से भी जाना जाता है। इनके पिता का नाम दुर्गा प्रसाद था, जो धार्मिक विचारधारा वाले व्यक्तित्व के धनी थे। प्रभाकर जी की माता महादेवी पढ़ी-लिखी महिला थीं, जिन्होंने अपने समय में पर्दा प्रथा का घोर विरोध किया था। प्रभाकर जी की पत्नी का नाम सुशीला था।

शिक्षा—विष्णु प्रभाकर की आरंभिक शिक्षा मीरापुर में हुई थी। उन्होंने सन् **1929** में चंदूलाल एंग्लो-वैदिक हाई स्कूल, **हिसार** से मैट्रिक की परीक्षा पास की। इसके उपरांत नौकरी करते हुए **पंजाब विश्वविद्यालय** से 'भूषण', 'प्राज्ञ', 'विशारद' और 'प्रभाकर' आदि की **हिन्दी-संस्कृत** परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से ही बी०ए० की डिग्री भी प्राप्त की थी।

व्यवसाय—प्रभाकर जी के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। यही कारण था कि उन्हें काफी कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा था। वे अपनी शिक्षा भली प्रकार से प्राप्त नहीं कर पाये थे। अपनी घर की परेशानियों और जिम्मेदारियों के बोझ से उन्होंने स्वयं को मजबूत बना लिया। उन्होंने चतुर्थ श्रेणी की एक सरकारी नौकरी प्राप्त की। इस नौकरी के द्वारा पारिश्रमिक रूप में उन्हें मात्र ₹ 18 प्रतिमाह का वेतन प्राप्त होता था। विष्णु प्रभाकर जी ने डिग्रियाँ और उच्च शिक्षा प्राप्त की, तथा अपने घर-परिवार की जिम्मेदारियों को पूरी तरह निभाया, वह उनके अथक प्रयासों का ही परिणाम था।

लेखन कार्य—प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी **महात्मा गाँधी** जी के जीवन आदर्शों से प्रेम के कारण प्रभाकर जी का रुझान **कांग्रेस** की तरफ हो गया। वे आजादी के दौर में बजते राजनीतिक बिगुल में उनकी लेखनी का भी एक उद्देश्य बन गया था, जो आजादी के लिए संघर्षरत थी। अपने लेखन के दौर में वे **प्रेमचंद, यशपाल** और **अज्ञेय** जैसे महारथियों के सहयात्री भी रहे, किन्तु रचना के क्षेत्र में उनकी अपनी एक अलग पहचान बन चुकी थी। **1931** में 'हिन्दी मिलाप' में पहली कहानी दीवाली के दिन छपने के साथ ही उनके लेखन का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह जीवनपर्यन्त निरंतर चलता रहा। नाथूराम शर्मा प्रेम के कहने से वे **शरतचन्द्र** की जीवनी **'आवारा मसीहा'** लिखने के लिए प्रेरित हुए, जिसके लिए वे शरतचन्द्र को जानने के लिए लगभग सभी स्रोतों और जगहों तक गए। उन्होंने **बांग्ला भाषा** भी सीखी और जब यह जीवनी छपी, तो **साहित्य** में विष्णु जी की धूम मच गयी। **कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण,** बाल साहित्य सभी विधाओं में प्रचुर साहित्य लिखने के बावजूद 'आवारा मसीहा' उनकी पहचान का पर्याय बन गयी। इसके बाद में 'अर्द्धनारीश्वर' पर उन्हें बेशक **साहित्य अकादमी पुरस्कार हिन्दी** प्राप्त हुआ, लेकिन 'आवारा मसीहा' ने साहित्य में उनकी एक अलग ही पहचान पुख्ता कर दी।

प्रथम नाटक रचना—विष्णु प्रभाकर जी ने अपना पहला **नाटक** 'हत्या के बाद' लिखा और **हिसार** में एक नाटक मंडली के साथ भी कार्यरत हो गये। इसके पश्चात् प्रभाकर जी ने लेखन को ही अपनी जीविका बना लिया। आजादी के बाद वे **नई दिल्ली** आ गये और सितम्बर, **1955** में आकाशवाणी में नाट्यनिर्देशक नियुक्त हो गये, जहाँ उन्होंने 1957 तक अपनी सेवाएँ प्रदान की थीं। इसके बाद वे तब सुर्खियों में आए, जब **राष्ट्रपति भवन** में दुर्व्यवहार के विरोधस्वरूप उन्होंने 'पद्मभूषण' की उपाधि वापस करने की घोषणा कर दी। विष्णु प्रभाकर जी आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रकाशन सम्बन्धी मीडिया के विविध क्षेत्रों में पर्याप्त लोकप्रिय रहे। देश-विदेश की अनेक यात्राएँ करने वाले विष्णुजी जीवनपर्यन्त पूर्णकालिक मसिजीवी रचनाकार के रूप में साहित्य की साधन में लिप्त रहे थे।

कृतियाँ

विष्णु प्रभाकर जी की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **कहानी संग्रह**—'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'मेरा वतन', 'खिलौने', 'आदि और अन्त', 'एक आसमान के नीचे', 'अधूरी कहानी', 'कौन जीता कौन हारा', 'तपोवन की कहानियाँ', 'पाप का घड़ा', 'मोती किसके'।

2. **बाल कथा संग्रह**—'क्षमादान', 'गजनन्दन लाल के कारनामे', 'घमंड का फल', 'दो मित्र', 'सुनो कहानी', 'हीरे की पहचान'।
3. **उपन्यास**—'ढलती रात', 'स्वप्नमयी', 'अर्द्धनारीश्वर', 'धरती अब भी घूम रही है', 'पाप का घड़ा', 'होरी', 'कोई तो', 'निशिकान्त', 'तट के बंधन', 'स्वराज्य की कहानी'।
4. **आत्मकथा**—'क्षमादान' और 'पंखहीन' नाम से उनकी आत्मकथा 3 भागों में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हो चुकी है। 'और पंछी उड़ गया', 'मुक्त गगन में'।
5. **नाटक**—'सत्ता के आर-पार', 'हत्या के बाद', 'नवप्रभात', 'डॉक्टर', 'प्रकाश और परछाइयाँ', 'बारह एकांकी', अब और नहीं, टूटते परिवेश, गान्धार की भिक्षुणी और 'अशोक'।
6. **जीवनी**—'आवारा मसीहा', 'अमर शहीद भगत सिंह'।
7. **यात्रा वृत्तांत**—'ज्योतिपुन्त हिमालय', 'जमुना गंगा के नैहर में', 'हँसते निर्झर दहकती भट्ठी'।
8. **संस्मरण**—'हमसफर मिलते रहे'।
9. **कविता संग्रह**—'चलता चला जाऊँगा' (एकमात्र कविता संग्रह)।

पुरस्कार व सम्मान

विष्णु प्रभाकर जी की प्रमुख रचना 'आवारा मसीहा' सर्वाधिक चर्चित जीवनी है। इस जीवनी रचना के लिए इन्हें 'पाब्लो नेरूदा सम्मान', 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' जैसे कई विदेशी पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इनका लिखा प्रसिद्ध नाटक 'सत्ता के आर-पार' पर उन्हें **भारतीय ज्ञानपीठ** द्वारा **'मूर्ति देवी पुरस्कार'** प्रदान किया गया **हिन्दी अकादमी, दिल्ली** द्वारा प्रभाकर जी को 'शलाका सम्मान' भी मिल चुका है। **'पद्म भूषण'** पुरस्कार भी मिला, किन्तु **राष्ट्रपति भवन** में दुर्व्यवहार के विरोधस्वरूप उन्होंने 'पद्म भूषण' की उपाधि वापस करने की घोषणा कर दी।

निधन—भारत के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकारों में से एक विष्णु प्रभाकर जी का निधन 96 वर्ष की उम्र में 11 अप्रैल, 2009 को नई दिल्ली में हो गया। हिन्दी साहित्य के इस अमूल्य मोती के चले जाने से साहित्य के एक अद्‌भुत सूरज का अंत हो गया।

प्र.5. विष्णु प्रभाकर की कहानी 'धरती अब भी घूम रही है' का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

धरती अब भी घूम रही है

आयु नीना की दस वर्ष की भी नहीं थी, लेकिन बुद्धि काफी प्रौढ़ हो गई थी। जैसा कि अक्सर मातृहीन बालिकाओं के साथ होता है, बुजुर्गों ने उसके लिए आयु का बंधन ढीला कर दिया था। इसलिए अब उसने सुना कि कुछ दूर पर सोया हुआ उसका छोटा भाई सुबक रहा है, तो वह चुपचाप उठी। एक क्षण भयातुर दृष्टि से चारों ओर देखा, फिर उसके पास आकार बैठ गई। तब रात आधी बीत चुकी थी और चाँद कभी का अस्त हो चुका था, फिर भी कुछ दूर पर सोते हुए उनके मौसा के परिवार के दूध-से-धुले कपड़े अंधकार की कालस में चमक रहे थे, जैसे तमसावृत श्मशान में अग्नि के स्फलिंग। वही चमक नीना के नन्हे से दिल में कसक उठी। किसी तरह रुलाई रोकर उसने धीरे से पुकारा, 'कमल, ओ कमल...' कमल आठवें वर्ष में चल रहा था। उसके छोटे से खटोले पर एक फटी सी दरी बिछी थी। उस पर वह लेटा था गुड मुड, पैर उसने पेट से सटा रखे थे और मुँह को हाथों से ढक रखा था। रह-रहकर उसका पेट सिकुड़ता और सुबकियाँ निकल जाती। उसने बहन की पुकार का कोई जवाब नहीं दिया। नीना भी इतनी सहमी हुई थी कि दूसरी बार पुकारने का साहस न बटोर पाई। चुपचाप कमर सहलाती रही, देखती रही। कई क्षण बीत गए तो उसे सीधा करके उसका मुँह अपने दोनों हाथों में ले लिया। तब उसकी आँखें डबडबा आईं। आँसू ढुलककर कमल के मुख पर जा गिरे। कमल कुनमुनाया, फिर आँखें बंद किए-किए बोला, 'जीजी!'

नीना ने चौंककर कहा, 'तू जाग रहा था रे?'

'नींद नहीं आती...जीजी, पिताजी कब आएँगे? जीजी, पिताजी के पास चले।'

'पिताजी...'

'हाँ, जीजी! पिताजी के पास ले चलो। आज मुझे मौसाजी ने मारा था। जीजी, गिलास तोड़ा तो प्रदीप ने और मारा हमें...जीजी, यहाँ से चलो।'

नीना ने अनुभव किया कि कमल अब रोया, अब रोया। वह विहवल हो उठी। उसने अपना मुँह उसके मुँह पर रख दिया और दोनों हाथों से उसे अपने वक्ष में समेटकर वह 'शिशु-माँ' वहीं लेट गई। बोली वह कुछ नहीं। बस उस स्तब्ध वातावरण में उसे जोर-जोर से थपथपाती रही और वह सुबकता रहा, बोलता रहा, 'जीजी! आज मौसी ने हमें बासी रोटी दी। सारा हलवा प्रदीप को, रंजन को

TOUCH 'n PASS

दे दिया और हमें सब खुरचन दी और जीजी, जब दोपहर को हम मौसाजी के कमरे में गए तो हमें घुड़ककर निकाल दिया। जीजी, वहाँ हमें क्यों नहीं जाने देते? जीजी, तुम स्कूल से जल्दी आ जाया करो। जीजी, पिताजी को जेल में क्यो बंद कर दिया? वहाँ पिताजी को रोटी कौन खिलाता है? हम वहाँ क्यों नहीं रहते? प्रदीप कहता था, तेरे पिताजी चोर हैं···'

तब एक बारगी अपने को धोखा देती हुई नीना जोर से बोल उठी, 'प्रदीप झूठा है।'

और कहकर अपनी ही आवाज पर वह भय से थर-थर काँप गई। उसने कमल को जोर से भींच लिया। कमल को लगा, जैसे जीजी बड़े जोर से हिल रही है, हिलती जा रही है, हिलती चली जा रही है। हालन आ गया क्या? उसने घबराकर कहा, 'जीजी, जीजी, क्या है? तुम्हें बुखार आ गया है?'

'चुप, चुप! मौसी आ रही है।'

सचमुच कोई उठकर जल्दी-जल्दी उनके पास आया और कड़ककर पूछा, 'क्या है, क्या है नीना, कमल क्या है रे?...ओ हो! भाई से लाड़ लड़ाया जा रहा है। मैं कहती हूँ नीना, तू यहाँ क्यों आई? अरी बोलती क्यों नहीं? ओ हो, बड़े बेचारे गहरी नींद में सोये हैं। अभी तो बड़ी गुटर-गुटर मेरी शिकायत हो रही थी।

कौन भागने की सलाह कर रहा है? नीना-कमल? अरे, कुछ लिया तो नहीं? अलमारी की चाबी तो है? रात ही पाँच सौ रुपए लाकर रखे हैं। अरे, तुम बोलती क्यों नहीं? क्यों री नीना! कहाँ हैं रुपए?'

बोलते-बोलते मौसा उठकर वहाँ आ गए थे, जहाँ दोनों बच्चे एक-दूसरे में सिमटे, सकपकाए, कबूतर की तरह आँखें बंद किए पड़े थे। मौसी ने तुनककर कहा, 'क्या पता क्या-क्या निकालकर भागते, वह तो मेरी आँख खुल गई।'

और फिर झटककर नीना को उठाते हुए कहा, 'चल अपनी खट पर। खबरदार जो पास सोए। बाप तो आराम से जेल में जा बैठा, मुसीबत डाल गया मुझ पर। न लाती तो दुनिया मुँह पर थूकती, बहन के बच्चे थे। शहर की शहर में आँखों में लिहाज न आई। लेकिन कहने वाले यह नहीं देखते कि हमारे घर में क्या सोने-चाँदी की खान है? क्या खर्च नहीं होता? पढ़ाई कितनी महँगी हो गई और फिर बच्चों की खुराक बड़ों से ज्यादा ही है।'

रुपए नहीं निकाले, इस बात से मौसा को बड़ा संतोष हुआ। उन्होंने खाट पर बैठते हुए कहा, 'मैं कहती हूँ तुम तो...'

'अब चुप रहे। भले ही चचेरी बहन हो, हैं तो बहन के बच्चे।'

'हाँ, बहन के बच्चे हैं, तभी तो बहनोई साहब को रिश्वत लेने की सूझी और रिश्वत भी क्या थी, बीस रुपए की। वह भी लेनी नहीं आई। वहीं पकड़े गए। हूँ, मैं रात पाँच सौ रुपये लाया हूँ। कोई कह दे, साबित कर दे।'

'इतनी बुद्धि होती तो क्या अब तक तीसरे दर्जे का क्लर्क बना रहता।'

'और मजा यह कि जब मैंने कहा कि तीन सौ, चार सौ रुपए का प्रबन्ध कर दे, तुझे छुड़ाने का जिम्मा मेरा, तो सत्यवादी बन गया—'मैं रिश्वत नहीं दूँगा।' नहीं दूँगा तो ली क्यों थी? अरे लेते हो तो दो भी। मैं तो···'

मौसी ने सहसा धीमी पड़ते हुए कहा, 'चुप भी करो, रात का वक्त है। आवाज बहुत दूर तक जाती है।'

काफी देर बड़बड़ाने के बाद जब वे फिर सो गए, तो दोनों बालक तब भी जाग रहे थे। आँखों की नींद आँसू बनकर उनके गालों पर जमती जा रही थी और उनके धुँधले परदे पर बहुत से चित्र अनायास ही उभरते आ रहे थे। एक चित्र मौसी का था, जो उन्हें रोते-रोते घर लाई थी और वह प्रेम दर्शाया था कि वे भी रो-रोकर पागल हो गए थे। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गए, प्यार घटता गया और दया बढ़ती गई। दया ऊँच-नीच और दंभ की जननी है। उसने उन्हें आज पशु से भी तिरस्कृत बना दिया...

एक चित्र मौसा का था, जो तीसरे-चौथे दिन बहुत से नोट लेकर आते और उन्हें लक्ष्य करके कहते, 'मैं कहता हूँ कि उसने रिश्वत ली तो दी क्यों नहीं? अरे तीन सौ देने पड़ते तो पाँच सो बटोरने का मार्ग भी तो खुलता।'

एक चित्र पिता का था। पिता जो प्यार करता था, पिता जिसने रिश्वत ली थी, पिता जिसे जेल में बंद हुए दो महीने बीत चुके थे और अभी सात महीने शेष थे।

नीना ने सहसा दोनों हाथों से अपना मुँह भींच लिया। उसकी सुबकी निकलने वाली थी। उसने मन-ही-मन विह्वल-विकल होकर कहा, 'पिताजी! अब नहीं सहा जाता, अब नहीं सहा जाता। मौसा तुम्हारे कमल को पीटते हैं। पिताजी, तुम आ जाओ। अब हम उस स्कूल में नहीं पढ़ेंगे। अब हम बढ़िया कपड़े नहीं पहनेंगे। पिताजी, तुमने रिश्वत ली थी तो देते क्यों नहीं···क्यों···क्यों?'

इस प्रकार सोचते-सोचते उसकी बंद आँखों के अंधकार में पिता की मूर्ति और भी विशाल हो उठी···एक अधेड़ व्यक्ति की मूर्ति, जिसकी आँखों में प्यार था, जिसकी वाणी में मिठास थी, जिसने दोनों बच्चों को नए स्कूल में भरती करवा रखा था। वहाँ उन्हें कोई मारता-झिड़कता नहीं था, वहाँ नाश्ता मिलता था, वहाँ वे तस्वीरें काटते थे, खिलौने बनाते थे।

TOUCH 'n PASS

और घर में पिता उनके लिए खाना बनाता था, अच्छी-अच्छी किताबें लाता था, फल लाता था। उनकी माँ के मरने पर उसने दूसरी शादी तक नहीं की थी। नीना ने ये सब बातें पड़ोसियों के मुँह सुनी थीं। वे सब उसके पिता की बड़ी तारीफ करते थे। उसने अपने कानों से पिता को यह कहते सुना था कि रिश्वत लेना पाप है। लेकिन फिर उन्होंने रिश्वत ली···क्यों ली···आखिर क्यों? पड़ोसिन कहती, 'उसका खर्च बहुत था और आमदनी कम। वह बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहता था, और तुम जानो, अच्छी शिक्षा बहुत महँगी है।'

महँगी···महँगी थी तो उसने रिश्वत ली। महँगी होना क्या होता है, और अब पिता कैसे छूटेंगे? मौसा कहते थे, 'जज को रिश्वत देते तो छूट जाते। एक जज ने तीन हजार रुपए लेकर एक डाकू को छोड़ दिया था। एक आदमी जिसने एक औरत को मार डाला था, उसे भी जज ने छोड़ दिया था। पाँच हजार लिए थी।' पाँच हजार कितने होते हैं? सौ···हजार···लाख···ये कितने होते हैं।

मौसा कहते थे, 'रिश्वत और भी तरह की भी होती है। एक प्रोफेसर ने एक लड़की को एम०ए० में अव्वल कर दिया था, क्योंकि वह खूबसूरत थी···'

रुपया, रुपया और खूबसूरत लड़की···इन्हें लेकर जज और हाकिम काम क्यों कर देते हैं? क्यों···क्यों···और खूबसूरत लड़की वे क्या करते हैं? काम करवाते होंगे, पर काम तो सभी करते हैं···फिर खूबसूरत लड़की क्यों?···और उसके मौसा बहुत से रुपए लाते हैं, पर लड़की कभी नहीं लाते।

उसकी समझ में कुछ नहीं आया। लेकिन उसी उधेड़-बुन में रात न जाने कहाँ चली गई, यह जाना न जा सका। एकाएक मौसी की पुकार ने उसकी निंद्रा को तोड़ दिया। हड़बड़ाकर आँखें खेली तो मौसी कह रही थी, 'नीना, ओ नीना! अरी उठेगी नहीं? पाँच बजे हैं।'

पाँच···। अभी तो बहरुआ तीन की आवाज लगा रहा था और आकाशगंगा का मार्ग कैसा चमचम कर रहा था। इसी रास्ते तो स्वर्ग जाते हैं।

मौसी फिर चीखी, 'अरी, सुना नहीं नीना? कब से पुकार रही हूँ। दोनों भाई-बहन कुंभकर्ण से बाजी लगाकर सोते हैं। चल जल्दी। चौका-बासन कर। मैं आती हूँ।'

नीना ने अब अँगड़ाई लेने का नाट्य किया। फिर कुनमुनाती हुई उठी, 'जा रही हूँ, मौसी।'

जीने तक जाकर न जाने उसे क्या याद आया, वह कमल के पास गई और बड़े प्यार से कान से मुँह लगाकर उसे पुकारा। फिर उत्तर की प्रतीक्षा न करके उसे कौली में समेटकर नीचे लिए चली गई।

और जब दो घंटे बाद मौसी नीचे उतरी तो स्तब्ध रह जाना पड़ा। रसोईघर जैसे दूध में धोया गया हो। लकदक-लकदक-लकदक, मैल की कहीं छाया तक नहीं। बरतन चाँदी से चमचमा रहे थे। बार-बार अविश्वास से आँखें मलकर ठगी सी मौसी बोली, 'आज क्या बात है, नीना?'

'कुछ नहीं, नीना!' नीना ने सकपकाकर उत्तर दिया।

'कुछ नहीं कैसे? ऐसा काम क्या तू रोज करती है?'

कमल ने एकदम कहा, 'मौसी! आज पिताजी आएँगे।'

'पिताजी···'

'हाँ, जीजी कहती थी···'

मौसी ने अविश्वास और आशंका से ऐसे देखा कि कमल सहमकर पीछे हट गया। कई क्षण तक उस स्तब्ध वातावरण में वे प्रस्तर-प्रतिमा बने रहे, फिर जैसे जागकर मौसी बोली, 'तो यह बात है। बाप के स्वागत के लिए रसोईघर सजाया गया है।'

फिर एक बारगी बड़े जोर से हँसी, बोली, 'पर रानीजी, अभी तो पूरे सात महीने बाकी हैं, सात महीने। वाह रे, बाप के लिए दिल में कितना दर्द है। इसका पासंग भी हमारे लिए होता तो···'

नीना की काया एकाएक पीली पड़ गई। आग्नेय नेत्रों से कमल की ओर देखती हुई वह वहाँ से चली गई। उस दृष्टि से कमल सहम गया, पर उसे अपने अपराध का पता तब लगा जब यह हो चुका था। स्कूल जाते समय रास्ते में नीना ने इस अपराध के लिए कमल को खूब डाँटा। इतना डाँटा कि वह रो पड़ा। रो पड़ा तो उसे छाती से लगाकर खुद भी रोने लगी।

इसी समय वहाँ से बहुत दूर एक सुसज्जित भवन में मुक्त अट्टहास गूँज रहा था। छोटे जज आज विशेष प्रसन्न थे। उनकी छोटी पुत्री मनमोहिनी को कमीशन ने सांस्कृतिक विभाग में डिप्टी डायरेक्टर के पद के लिए चुन लिया था। मित्र बधाई देने आए हुए थे। उसी हर्ष का यह अट्टहास था। यद्यपि बाकायदा चाय-पार्टी का कोई प्रबन्ध नहीं था, तो भी मेज पर अच्छी भीड़-भाड़ थी। अंग्रेज लोग चाय पीते समय बोलना पसंद नहीं करते थे, पर भारतवासी क्या अब भी उनके गुलाम हैं। वे लोग जोर-जोर से बातें कर रहे थे। मनमोहिनी ने चाय बनाते हुए कहा, 'मुझे तो बिलकुल आशा नहीं थी, पर सचिव साहब की कृपा को क्या कहूँ।'

सचिव साहब बोले, 'मेरी कृपा! आपको कोई 'न' तो कर दे? आपकी प्रतिभा···'
डायरेक्टर कह उठे, 'हाँ, इनकी प्रतिभा! सांस्कृतिक विभाग तो है ही नारी की प्रतिभा का क्षेत्र।'
सचिव साहब के नेत्र जैसे विस्फारित हो आए, प्याले को ठक से मेज पर रखते हुए उन्होंने कहा, 'क्या बात कही आपने! संस्कृति और नारी दोनों एक ही हैं। नाट्य, नृत्य, संगीत और कविता।'
'और प्रचार?'
'अरे, नारी से अधिक प्रचार कर पाया है कोई।'
इसी समय बेयरे ने आकर सलाम झुकाई। तार आया था। खोलने पर जाना, छोटे जब साहब के बड़े बेटे की नियुक्ति इनकमटेक्स ऑफिसर के पद पर हो गई है। उसे मद्रास जाना होगा।
इस पर सबने स्वीकृति सूचक हर्ष-ध्वनि की। छोटे न्यायमूर्ति इसका प्रतिपाद कर पाते कि बेयरे ने आकर फिर सलाम किया। विस्मित से डायरेक्टर बोले, 'इस बार इसकी नियुक्ति होने वाली है?'
बेयरे ने कहा, 'दो बच्चे हुजूर से मिलने आए हैं।'
'हमसे?' छोटे न्यायमूर्ति अचकचाकर बोले।
'जी।'
'किसके बच्चे हैं?'
'जी, मालूम नहीं। भाई-बहन हैं। गरीब जान पड़ते हैं।'
'अरे तो बेवकूफ, कुछ-दे-दिवाकर लौटा दिया होता।'
'बहुत कोशिश की, पर वे कुछ माँगते ही नहीं। बस आपसे मिलना माँगते हैं।'
छोटे न्यायमूर्ति तेजी से उठे। मुख उनका विकृत हो आया, पर न जाने क्या सोचकर वे फिर बैठ गए। कहा, 'आज खुशी का दिन है। यहीं ले आ।'
दो क्षण बाद, बुरी तरह सहमे, सकपकाए जिन दो बच्चों ने वहाँ प्रवेश किया, वे नीना और कमल थे। आँसुओं के दाग अभी गालों पर शेष थे। दृष्टि से भय झरा पड़ता था। एक साथ सबने उनको देखा जैसे मदिरा के प्याले में मक्खी पड़ गई हो। छोटे न्यायमूर्ति ने पूछा, 'कहाँ से आए हो?'
'जी···जी···' नीना ने कहना चाहा, पर मुँह से शब्द नहीं निकले और बावजूद सबके आश्वासन के वे कई क्षण हतप्रभ, विमूढ़, अपलक देखते ही रहे, बस देखते ही रहे। आखिर मनमोहिनी उठी। पास आकर बोली, 'कितने प्यारे, कितने सुंदर बच्चे हैं।'
इन शब्दों में न जाने क्या था! नीना को जैसे करंट छू गई। एक बारगी दृढ़ कंठ से बोल उठी, 'आपने हमारे पिताजी को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड़ दें।'
कमल ने उसी दृढ़ता से कहा, 'हमारे पास पचास रुपए हैं। आपने तीन हजार लेकर एक डाकू को छोड़ा है।'
नीना बोली, 'लेकिन हमारे पिताजी डाकू नहीं हैं। महँगाई बढ़ गई थी। उन्होंने बस बीस रुपए की रिश्वत ली थी।'
कमल ने कहा, 'रुपए थोड़े हों तो···'
नीना बोली, 'तो मैं एक-दो-दिन आपके पास रह सकती हूँ।'
कमल ने कहा, 'मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं।'
रटे हुए पार्ट की तरह एक के बाद एक जब वे दोनों इस प्रकार बोल रहे थे तो न जाने हमारे कथाकार को क्या हुआ, वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे ऐसा लगा जैसे धरती सूर्य की चुंबक शक्ति से अलग हो रही है। लेकिन ऐसा होता तो क्या हम 'पुनश्च' लिखने को बाकी रहते? धरती अब भी उसी तरह घूम रही है।

प्र.6. गंगा प्रसाद विमल का जीवन परिचय एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

जीवन-परिचय

गंगा प्रसाद विमल का जन्म 1939 में उत्तराखंड के उत्तरकाशी में हुआ था। उनका विवाह 5 फरवरी, 1965 को **कमलेश अनामिका** के साथ संपन्न हुआ, जिनसे इनकी दो सन्तानें जिनका नाम आशीष और कनुप्रिया है।
शिक्षा—गंगा प्रसाद विमल ने 1965 में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री प्राप्त की।
करियर और योगदान—आप केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक भी रह चुके थे। आप ओस्मानिया विश्वविद्यालय और जेएनयू में शिक्षक भी रहे थे। आप दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज से भी जुड़े थे। हिन्दी साहित्य जगत में 'अकहानी आंदोलन' के जनक के रूप में जाना जाता था। वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और अनुवादक भी थे। उन्होंने 12 से अधिक

TOUCH 'n' PASS

लघु कहानी संग्रह, उपन्यास और कविता संग्रह लिखे हैं। उनका पहला काव्य संग्रह साल 1967 में 'विज्जप' नाम से आया था। पहला अपन्यास 'अपने से अलग' साल 1972 में आया था। उनका पहला कहानी संग्रह 'कोई भी शुरुआत' साल 1967 में आया था। गंगा प्रसाद विमल 'चंद्रकुंवर बर्थवाल संचयन' का संपादन किया था। उन्होंने प्रेमचंद तथा मुक्तिबोध पर किताबें लिखी थी। उनकी लगभग 20 से अधिक पुस्तकें छपी थीं। उन्हें कई राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिले थे। उन्होंने उपन्यास, नाटक, आलोचना भी लिखीं तो कई रचनाओं का संपादन कार्य भी किया।

रचनाएँ—इनकी रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. बोधि-वृक्ष
2. इतना कुछ
3. सन्नाटे से मुठभेड़
4. मैं वहाँ हूँ
5. कुछ तो है

उपन्यास—उनका अन्तिम उपन्यास 2013 में प्रकाशित 'मानुसखोर' है।

कहानी संग्रह—

1. 'कोई शुरुआत'
2. 'अतीत में कुछ'
3. इधर-उधर'
4. 'बाहर न भीतर'
5. 'खोई हुई थाती'

सम्मान एवं पुरस्कार—गंगा प्रसाद विमल को साहित्य और संस्कृति के लिए किए गए कार्यों पर दुनिया भर से अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से नवाजा गया।

1. पोएट्री पीपुल्स प्राइज (1978), रोम में आर्ट यूनीवर्सिटी द्वारा 1979 में पुरस्कृत
2. नेशनल म्यूजियम ऑफ लिटरेचर, सोफिया में गोल्ड मेडल (1979)
3. बिहार सरकार द्वारा दिनकर पुरस्कार (1987)
4. इंटरनेशनल ओपेन स्कॉटिश पोएट्री प्राईज (1988)
5. भारतीय भाषा पुरस्कार, भारतीय भाषा परिषद् (1992)
6. महात्मा गाँधी सम्मान, उत्तर प्रदेश (2016)
7. इसके अतिरिक्त उन्हें ऐसे ही कई पुरस्कारों से विश्व भर में सम्मानित किया गया। इनके द्वारा तमाम देशों में विभिन्न विषयों पर शोध ग्रन्थ पढ़े गए। जिनमें मुख्यत: बी०बी०सी० लंदन से कहानियों का पाठ और लॉल इण्डिया रेडियो से तमाम बार कविता पाठ आदि शामिल हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता लोगों के साथ ताल्लुकात मधुर होना है, जिसके कारण इन्हें अनेकों सरकारी, गैर-सरकारी, देशी-विदेशी संस्थाओं एवं संस्थानों की सदस्यता भी प्राप्त है।

मृत्यु—गंगा प्रसाद विमल की 80 वर्ष की आयु में दिसम्बर, 2019 को श्रीलंका में एक सड़क दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। गंगा प्रसाद विमल अपनी बेटी और पोती के साथ यात्रा कर रहे थे जो उसी सड़क दुर्घअना में मारे गए।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-V

हिन्दी नाटक एवं एकांकी

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जयशंकर प्रसाद जी का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर जयशंकर प्रसाद जी का जन्म 30 जनवरी, 1890 में काशी के गोवर्धनसराय में हुआ।

प्र.2. जयशंकर प्रसाद जी की प्रथम कविता का नाम क्या है?
उत्तर जयशंकर प्रसाद जी की प्रथम कविता 'सावक पंचक, सन् 1906 में भारतेन्दु पत्रिका में कलाधर नाम से प्रकाशित हुई।

प्र.3. अज्ञातशत्रु एवं प्रायश्चित किसके नाटक हैं?
उत्तर अज्ञातशत्रु एवं प्रायश्चित जयशंकर प्रसाद के नाटक हैं।

प्र.4. जयशंकर प्रसाद जी की कहानियों के नाम लिखिए।
उत्तर जयशंकर प्रसाद जी की कहानियाँ हैं—छाया, आकाशदीप, प्रतिध्वनि एवं आँधी व इन्द्रजीत।

प्र.5. 'दीपदान' एकांकी की कथा कहाँ की घटना है?
उत्तर 'दीपदान' एकांकी की कथा चित्तौड़ की एक ऐतिहासिक घटना है।

प्र.6. डॉ० रामकुमार वर्मा के पिता का नाम क्या था?
उत्तर डॉ० रामकुमार वर्मा के पिता का नाम लक्ष्मी नारायण वर्मा था।

प्र.7. एकांकी सम्राट के रूप में किस लेखक को जाना जाता है?
उत्तर आधुनिक हिन्दी साहित्य में एकांकी सम्राट के रूप में डॉ० रामकुमार वर्मा को जाना जाता है।

प्र.8. पन्ना किसका संरक्षण करने में रहती है?
उत्तर सामली के योगदान से पन्ना चित्तौड़ के उत्तराधिकारी का संरक्षण करने में सफल रहती है।

प्र.9. दीपदान एकांकी के मुख्य पात्र किसका है?
उत्तर दीपदान एकांकी में मुख्य पात्र कुँवर उदयसिंह का है।

प्र.10. 'दस तस्वीरें' किसकी रचना है?
उत्तर 'दस तस्वीरें जगदीशचन्द्र माथुर की रचना है।

प्र.11. जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों के नाम लिखिए।
उत्तर जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यास हैं—कंकाल, तितली, इरावती।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जयशंकर प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' की भाषा-शैली पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

चन्द्रगुप्त नाटक की भाषा-शैली

'चन्द्रगुप्त' नाटक की भाषा प्रसंग और रस के अनुकूल होकर कहीं सरस, कहीं ओज प्रधान, कहीं व्यावहारिक बनती चली जाती है। मुहावरों के अभाव में भी उसमें शिथिलता कहीं नहीं मिलती है। वाक्यों के किस अंश पर बल पड़ना चाहिए वह तो है ही, साथ ही शैली के अन्य गुणधर्म भी यथास्थान नियोजित दिखाई पड़ते हैं। पर्वतेश्वर का यह कथन विषयानुकूल और समय के सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है 'आह-ब्राह्मण! व्यंग्य न करो। चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने का प्रमाण यही विराट् आयोजन है। आचार्य चाणक्य! मैं क्षमता रखते हुए जिस काम को न कर सका, वह कार्य निस्सहाय चन्द्रगुप्त ने किया। ..... मैं विश्वस्त हृदय से कहता

TOUCH 'n' PASS

हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्यावर्त का एकछत्र सम्राट होने के उपयुक्त है।' प्रसाद ने प्रतीकों का इतना सार्थक प्रयोग किया है कि वे भाषा की अलंकृति, अर्थ-विस्तार और रसानुभूति में सहायक बनते हैं। प्रसाद की भाषा में बिम्ब योजना भी परिलक्षित होती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद के नाटकों की भाषा शैली का विवेचन करते हुए लिखा है, "भाषा के स्वरूप में भी सामान्य बोलचाल का आभास रहा करता है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों को यथार्थवादी भूमि पर नहीं रखा, इनकी शैली में चमत्कार तथा काव्यात्मकता है।"

प्र.2. प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' का वाचन एवं व्याख्या को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

'चन्द्रगुप्त' का वाचन और व्याख्या

नाटक वाचन में पात्र के नाम उच्चारण के पश्चात् थोड़ा विराम के पश्चात् एक प्रवाह के साथ नाटकीयता का सम्बन्ध भी रहता है। प्रसंग और भाव के अनुकूल उच्चारण में उतार-चढ़ाव और गति रहती है।

यहाँ हम आपको नाटक वाचन और व्याख्या हेतु कुछ अंश प्रस्तुत करेंगे।

सिकन्दर—विजय करने की इच्छा क्लांति से मिटती जा रही है। हम तो इतने बड़े आक्रमण के समारंभ में लगे हैं और यह देश जैसे सोया हुआ है, लड़ना जैसे इनके जीवन का उद्वेगजनक अंश नहीं। अपने ध्यान में दार्शनिक के सदृश निमग्न हैं, सुनते हैं—पोरस ने केवल झेलम के पास कुछ सेना प्रतिरोध करने के लिए या केवल देखने के लिए छोड़ी है। हम लोग जब पहुँच जाएँगे तब वे लड़ लेंगे।

संकेत—विजय करने की ..... तब वे लड़ लेंगे।

सन्दर्भ एवं प्रसंग—प्रस्तुत अंश सुप्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य से लिया गया है। यहाँ पर सिकन्दर के द्वारा भारतीय दर्शन के अहिंसा, प्रेम, शान्ति जैसे तत्वों के प्रति अभिभूत होना तथा युद्ध से विरत दर्शाया गया है।

व्याख्या—सिकन्दर अपने सैनिकों से कहता है—थकान के कारण मेरी भारत विजय की इच्छा मिटती जा रही है। यहाँ के लोग तो हमारे आक्रमण की योजना को जानकर भी लड़ने के लिए तैयार नहीं दिखाई देते। एक शान्त भाव; जैसे इनके क्रोध, आवेग और प्रतिरोध की भावना को शान्त किए हुए हैं। वह कहता है कि, सुना है पर्वतेश्वर ने झेलम के पास थोड़ी बहुत सैन्य शक्ति मात्र हमारे पहुँचने पर अपने कर्त्तव्य के पूर्ण करने हेतु युद्ध के लिए रख छोड़ी है।

प्र.3. 'दीपदान' एकांकी का सारांश की समीक्षा कीजिए।

उत्तर

'दीपदान' एकांकी का सारांश

'दीपदान' डॉ० रामकुमार वर्मा का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक एकांकी है। वे हिन्दी एकांकी के जनक थे तथा हिन्दी साहित्य में 'एकांकी सम्राट' के रूप में जाने जाते थे। दीपदान एकांकी की कथासार संक्षेप में निम्नवत् है—

दीपदान एकांकी की कथा चित्तौड़ की एक घटना पर आधारित है, जिसमें राजपूताना के त्याग-बलिदान का इतिहास चित्रित हुआ है। चित्तौड़गढ़ के महाराणा संग्राम सिंह की मृत्यु के बाद चित्तौड़गढ़ के वास्तविक उत्तराधिकारी का प्रश्न उठता है, जो वास्तव में राणा सांगा के छोटे पुत्र कुँवर उदयसिंह थे परन्तु कुँवर उदयसिंह के अल्पव्यस्क होने के कारण राणा सांगा के छोटे भाई पृथ्वीसिंह के दासी पुत्र बनवीर को उदयसिंह के संरक्षक के रूप में चित्तौड़ की गद्दी सौंप दी जाती है। बनवीर बड़ा महत्वाकांक्षी व दुष्ट था। वह चित्तौड़ पर निरंकुश राज्य करना चाहता था। अत: वह 'मयूर-पक्ष' कुंड में असमय ही 'दीपदान' उत्सव का आयोजन कर उदयसिंह की हत्या का षड्यंत्र रचता है। कुँवर उदयसिंह की संरक्षिका पन्ना धाय, बनवीर की कुटिल प्रवृत्ति से भली-भाँति परिचित थी। अत: वह षड्यंत्र को भाँपकर उदयसिंह को उत्सव में नहीं जाने देती। कुँवर उदयसिंह पन्ना से दीपदान उत्सव में जाने की जिद करते हैं और अंतत: रूठकर बिना कुछ खाए भूमि पर ही सो जाते हैं। तभी रावल सरूपसिंह की पुत्री सोना उदयसिंह को उत्सव में ले जाने के लिए आती है, किन्तु पन्ना उसको फटकारकर भगा देती है। वह सोना से स्पष्ट कहती है कि 'चित्तौड़ रास-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।' इसके बाद पन्ना का पुत्र चंदन आता है और कुँवर के विषय में पूछता है और पन्ना से अपनी माला ठीक करने के लिए कहता है। तभी बाहर से घबराई हुई सेविका सामली आती है तथा पन्ना को महाराणा विक्रमादित्य की हत्या की सूचना देती है। वह पन्ना को बताती है कि बनवीर को लोगों ने कहते सुना है कि वह कुँवर उदयसिंह को भी जीवित नहीं छोड़ेगा।

पन्ना कुँवर उदयसिंह की रक्षा का उपाय सोचते हुए उन्हें लेकर कुंभलगढ़ भाग जाने को कहती है। तब सामली उसे महल को सैनिकों के द्वारा घेरे जाने के बारे में बताती है। तब जूठी पत्तल उठाने वाला कीरतबारी आता है तथा पन्ना उदयसिंह को महल से

बाहर भेज देने की योजना तैयार करती है और उदयसिंह को कीरत की टोकरी में लिटाकर पत्तलों से छिपाकर महल के बाहर भेज देती है तथा उदयसिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को उसकी शैय्या पर सुला देती है। कुछ देर बाद बनवीर हाथ में नंगी तलवार लिए उदयसिंह के कमरे में आता है जिस पर रक्त लगा होता है। वह पन्ना को जागीर का प्रलोभन देता है, पर पन्ना अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहती है और बनवीर को फटकारती हुई कहती है—'राजपूतनी व्यापार नहीं करती महाराज! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।' तब क्रोधित बनवीर उदयसिंह के धोखे में चंदन को पन्ना की आँखों के सामने ही मौत के घाट उतार देता है। पन्ना चीखकर मूर्च्छित हो जाती है। बनवीर के इस क्रूरकांड और पन्ना के अपूर्व त्याग-बलिदान के साथ ही एकांकी का कथानक समाप्त हो जाता है।

प्र.4. 'दीपदान' एकांकी के उद्देश्य क्या हैं?

उत्तर

दीपदान एकांकी का उद्देश्य

दीपदान रामकुमार वर्मा की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक एकांकी है, जिसमें एकांकीकार ने 16वीं शताब्दी की एक ऐतिहासिक घटना को अत्यन्त प्रभावी और मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। 'दीपदान' एकांकी का उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट तथा सार्थक है। इसमें पन्ना धाय के अपूर्व त्याग एवं बलिदान की भावना तथा स्वामी-भक्ति को अभिव्यक्त किया गया है। इस एकांकी के माध्यम से लेखक डॉ० रामकुमार वर्मा ने चित्तौड़ के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश का जीवंत चित्रण किया है। राजपूत बड़ी निर्भीकता एवं वीरता से अपनी जान देकर भी देश की आन-बान और शान की रक्षा करते थे। दूसरी ओर लेखक ने यह भी दिखाना चाहा है कि किस प्रकार मनुष्य लालच में अन्धा होकर अपना विवेक खो बैठता है। लालची मनुष्य अपनी मर्यादा, कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व को भुलाकर मानव से दानव भी बन जाता है। बनवीर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसके अतिरिक्त पन्ना धाय के त्याग एवं उदात्त चरित्र की गरिमा को हमारे समक्ष रखना भी लेखक का उद्देश्य है। पन्ना धाय के रूप में नारी की ममता, त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा स्वामी-भक्ति का चित्रण करके लेखक ने मानवीय मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरित किया है। पन्ना के चरित्र की महानता के समक्ष मानवता नतमस्तक हो जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'दीपदान' एकांकी के माध्यम से एकांकीकार ने मनुष्य को स्वार्थी न बनने, लालच में अंधा न होने की प्रेरणा दी है। हम अपने विवेक का त्याग न करें और अन्यायपूर्ण आचरण न करें, यह बताना भी एकांकीकार का उद्देश्य है। निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर कर्त्तव्य पालन करना तथा समाज में आदर्श एवं मूल्यों की स्थापना करना भी इस एकांकी का उद्देश्य है। नि:सन्देह 'दीपदान' एक अत्यन्त शिक्षाप्रद एवं मार्मिक एकांकी है जो पाठकों पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ने में सफल होती है।

प्र.5. जगदीशचन्द्र माथुर की साहित्यिक विशेषताओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

साहित्यिक विशेषताएँ

जगदीशचन्द्र माथुर जी के प्रारंभिक नाटकों में कौतूहल और स्वच्छंद प्रेमाकुलता है। 'भोर का तारा' में कवि शेखर की भावुकता पर्यावरण में घटित करने या रचने का मोह भी प्रारम्भ से मिलता है। परन्तु समसामयिक को अनुभव के रूप में अनुभूत करके उसकी प्रामाणिकता को संस्कृति के माध्यम से सिद्ध करने का जो आग्रह उनके नाटकों में हैं उसकी रचनात्मक संभावना का प्रमाण 'कोणार्क' में है। परंपरा को माध्यम और संदर्भ के रूप में प्रयोग करने की कला में माथुर सिद्धहस्त हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि यही उनका सब कुछ है, बल्कि उन्होंने रीढ़ की हड्डी आदि ऐसे नाटक भी लिखे जिनका संबंध समाज के भीतर के बदलते रिश्तों और मानवीय संबंधों से है। 'शारदीया' के सारे नाटकों में समस्या को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने का आभास अवश्य है, परन्तु समस्या मात्र का परिवृत्त इतना छोटा है कि वह किसी व्यापक सत्य का आधार नहीं बन पाती। वस्तुत: माथुर छायावादी संवेदना के रचनाकार हैं। यह संवेदना 'भोर का तारा' से लेकर 'पहला राजा' तक में कमोबेश मिलती है। यह अवश्य है कि यह छायावादिता नाटक के विधागक संस्कार और यथार्थ के प्रति गहरी संसक्ति के कारण 'कोणार्क' और 'पहला राजा' में काफ़ी संस्कारित हुई है।

''सरकार किसी भी भाषा से चलाई जाए पर लोकतंत्र हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बल पर ही चलेगा''

—जगदीशचन्द्र माथुर

प्र.6. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के क्या उद्देश्य हैं?

उत्तर

रीढ़ की हड्डी एकांकी के उद्देश्य

'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का उद्देश्य है—समाज के लोगों की दोहरी मानसिकता सबके सामने लाना, लड़कियों के विवाह में आने वाली समस्याओं की ओर समाज का ध्यान खींचना तथा युवाओं द्वारा अपनी शिक्षा और चरित्र की मजबूती का ध्यान न रखना।

TOUCH 'n PASS

एकांकी में गोपाल प्रसाद और उनका बेटा शंकर जैसे लोग हैं जो उच्च शिक्षित होकर भी कम पढ़ी-लिखी बहू चाहते हैं और स्त्रियों को समानता का दर्जा नहीं देना चाहते हैं। उमा को देखने आए लड़के वाले उसे वस्तु की तरह देखते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से दहेज की माँग करते हैं। इसके अलावा शंकर जैसे युवा का अपनी पढ़ाई पर ध्यान न देना तथा उसकी चारित्रिक दुर्बलता की ओर ध्यान आकर्षित करना इस एकांकी का उद्देश्य है।

प्र.7. 'रीढ़ की हड्डी' शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

उत्तर 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का शीर्षक सार्थक, सफल और व्यंग्यात्मक है। इस नाटक की मूल समस्या है—वर का व्यक्तित्वहीन होना। यदि शंकर समझदार और व्यक्तित्वसंपन्न युवक होता तो गोपाल प्रसाद की इतनी हिम्मत न होती कि वह दो सुशिक्षित वयस्कों के बीच में बैठकर अपनी फूहड़ बातें करे और अशिक्षा को प्रोत्साहन दे। कम पढ़ी लिखी बहू चाहना गोपाल प्रसाद की जरूरत हो सकती है, शंकर की नहीं। अगर शंकर अपने पिता के रोबदाब के आगे यूँ भी नहीं कर सकता, बल्कि उनकी हाँ में हाँ मिलाता है तो वह उसकी कायरता है। उस कायरता को दिखाने के लिए उसे रीढ़ की हड्डी के बिना दिखाया गया है। इस प्रकार, 'रीढ़ की हड्डी' व्यंग्यात्मक, संकेतपूर्ण, सार्थक और सफल शीर्षक है। एक अच्छे शीर्षक में जिज्ञासा होनी चाहिए, जो पाठक को आतुर कर दे। यह शीर्षक जिज्ञासातुर करने वाला है।

प्र.8. कथावस्तु के आधार पर आप किसे एकांकी का मुख्य पात्र मानते हैं और क्यों?

उत्तर कथावस्तु के आधार पर हम नि:संदेह एकांकी का मुख्य पात्र उमा को ही मानते हैं क्योंकि एकांकी की सारी कथावस्तु उसी के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। एकांकी के मुख्य पुरुष पात्र शंकर पर उमा चारित्रिक, शारीरिक और तार्किक कौशल में भारी पड़ती है। उमा उच्च शिक्षित होने के साथ-साथ कला एवं संगीत में भी निपुण है। एकांकी में एक बार जब उसका प्रवेश होता है तो वह मंच पर अंत तक बनी रहती है। वह अपनी निपुणता से गोपाल प्रसाद और शंकर को निरुत्तर ही नहीं करती है बल्कि उनकी आँखें भी खोलकर रख देती है। एकांकी का समापन भी उमा के माध्यम से होता है। अत: उमा एकांकी की मुख्य पात्र है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जयशंकर प्रसाद जी का जीवन परिचय एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद हिन्दी कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्ध-लेखक थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ीबोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के, प्रगतिशील एवं नयी कविता दोनों धाराओं के, प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि 'खड़ीबोली' हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिन्दी को गौरवान्वित करने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनों दिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। प्रसाद ने कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी कई महत्त्वपूर्ण कृतियाँ दीं। भारतीय दृष्टि तथा हिन्दी के विन्यास के अनुरूप गम्भीर निबन्ध-लेखक के रूप में वे प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होंने अपनी विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्घाटन कलात्मक रूप में किया है।

जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी, 1890 ई० को गुरुवार के दिन काशी के गोवर्धनसराय में हुआ। इनके पितामह बाबू शिवरतन साहू दान देने में प्रसिद्ध थे और इनके पिता बाबू देवीप्रसाद जी भी दान देने के साथ-साथ कलाकारों का आदर करने के लिये विख्यात थे। इनका काशी में बड़ा सम्मान था और काशी की जनता काशीनरेश के बाद 'हर हर महादेव' से बाबू देवीप्रसाद का

TOUCH 'n' PASS

ही स्वागत करती थी। जब प्रसाद की आयु लगभग 11 वर्ष की थी तभी सन् 1900 ई० में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को उनके पिता का देहावसान हो गया। 15 वर्ष की अवस्था में, सन् 1905 ई० में पौष कृष्ण सप्तमी को उनकी माता श्रीमती मुन्नी देवी का देहावसान हो गया तथा 17 वर्ष की अवस्था में, 1907 ई० में भाद्रकृष्ण षष्ठी को उनके बड़े भाई शंभुरत्न का देहावसान हो जाने के कारण किशोरावस्था में ही प्रसाद जी पर मानो आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा था। कच्ची गृहस्थी, घर में सहारे के रूप में केवल विधवा भाभी, दूसरी ओर कुटुंबियों तथा परिवार से संबद्ध अन्य लोगों का संपत्ति हड़पने का षड्यंत्र, इन सबका सामना उन्होंने धीरता और गंभीरता के साथ किया।

प्रसाद जी की प्रारंभिक शिक्षा काशी के क्वींस कालेज में हुई थी, परन्तु यह शिक्षा अल्पकालिक थी। छठे दर्जे में वहाँ शिक्षा आरम्भ हुई थी और सातवें दर्जे तक ही वे वहाँ पढ़ पाये। उनकी शिक्षा का व्यापक प्रबंध घर पर ही किया गया, जहाँ हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन इन्होंने किया। प्रसाद जी के प्रारंभिक शिक्षक श्री मोहिनीलाल गुप्त थे। वे कवि थे और उनका उपनाम 'रसमय सिद्ध' था। शिक्षक के रूप में वे बहुत प्रसिद्ध थे। चेतगंज के प्राचीन दलहट्टा मोहल्ले में उनकी अपनी छोटी सी बाल पाठशाला थी। 'रसमय सिद्ध' जी ने प्रसाद जी को प्रारंभिक शिक्षा दी तथा हिन्दी और संस्कृत में अच्छी प्रगति करा दी। प्रसाद जी ने संस्कृत की गहन शिक्षा प्राप्त की थी।

घर के वातावरण के कारण साहित्य और कला के प्रति उनमें प्रारम्भ से ही रुचि थी और कहा जाता है कि नौ वर्ष की आयु में ही उन्होंने 'कलाधर' के नाम से ब्रजभाषा में एक सवैया लिखकर 'रसमय सिद्ध' को दिखाया था। उन्होंने वेद, इतिहास, पुराण तथा साहित्यशास्त्र का अत्यंत गंभीर अध्ययन किया था। वे बाग—बगीचे तथा भोजन बनाने के शौकीन थे और शतरंज के खिलाड़ी भी थे। वे नियमित व्यायाम करने वाले, सात्विक खान-पान एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। इनकी पहली 'कविता सावक पंचक' सन 1906 में भारतेंदु पत्रिका में कलाधर नाम से ही प्रकाशित हुई थी। वे नियमित रूप से गीता-पाठ करते थे, परन्तु वे संस्कृत में गीता के पाठ मात्र को पर्याप्त न मानकर गीता के आशय को जीवन में धारण करना आवश्यक मानते थे।

प्रसाद जी का पहला विवाह 1909 ई० में विंध्यवासिनी देवी के साथ हुआ था। उनकी पत्नी को क्षय रोग था। सन् 1916 ई० में विंध्यवासिनी देवी का निधन हो गया। उसी समय से उनके घर में क्षय रोग प्रवेश कर गया था। सन् 1917 ई० में सरस्वती देवी के साथ उनका दूसरा विवाह हुआ और दो ही वर्ष बाद उनका देहांत भी प्रसूतावस्था में क्षय रोग से ही हुआ। इसके बाद पुन: घर बसाने की उनकी लालसा नहीं थी, परन्तु अनेक लोगों के समझाने और सबसे अधिक अपनी भाभी के प्रतिदिन के शोकमय जीवन को सुलझाने के लिए उन्हें बाध्य होकर विवाह करना पड़ा। सन् 1919 ई० में उनका तीसरा विवाह कमला देवी के साथ हुआ। उनका एकमात्र पुत्र रत्नशंकर प्रसाद तीसरी पत्नी की ही संतान थे, जिनका जन्म सन् 1922 ई० में हुआ था। स्वयं प्रसाद जी भी जीवन के अंत में क्षय रोग से ग्रस्त हो गये थे और इस रोग से मुक्त न हो सके और अंतत: इसी रोग से 47 वर्ष की आयु में 15 नवम्बर 1937 सोमवार के दिन प्रात:काल उनका देहावसान काशी में हुआ।

साहित्यिक सृजन

जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी 9 वर्ष की आयु में साहित्य-साधना प्रारम्भ की और जीवन के अन्तिम क्षणों तक गहन तप करते रहे अर्थात् साहित्य-सेवा में संलग्न रहे। जयशंकर प्रसाद की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

काव्य—चित्राधार, कानन-कुसुम, करूणालय, महाराणा का महत्व, प्रेम-पथिक, झरना, आँसू, लहर, कामायनी और प्रसाद-संगीत।

नाटक—प्रायश्चित्त, सज्जन, कल्याणी परिणय, अजात-शत्रु, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, एक-घूँट, ध्रुवस्वामिनी। अग्निमित्र अभी अधूरा है।

उपन्यास—कंकाल, तितली, इरावती।

कहानी—छाया, प्रतिध्वनि, आँधी और इन्द्रजीत, आकाशदीप।

निबन्ध—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध।

चंपू—उर्वशी और बभ्रुवाहन। दोनों चित्राधार में संकलित हैं।

अन्य—पत्र-साहित्य।

प्र.2. प्रसाद जी के नाटक 'चन्द्रगुप्त' की अंतर्वस्तु का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

'चन्द्रगुप्त' नाटक की अंतर्वस्तु

'चन्द्रगुप्त' नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया भारतीय संस्कृति का परिचय देने वाला नाटक है। चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन चरित्र से जुड़े विभिन्न प्रसंगों और आचार्य चाणक्य के कुशल राजनीतिज्ञ के रूप को उभारने में पूरी तरह से सक्षम यह नाटक प्रसाद जी के दर्शन, मनोविज्ञान, संगीत, सौंदर्यबोध और आदर्शवाद को मूर्त रूप देने का प्रयास करता है। प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त'

नाटक में अपने समय की राजनीतिक और पौराणिक घटनाओं को अपने समय के साथ जोड़ा है और अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिम्ब दिखलाया है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक की अंतर्वस्तु निम्न प्रकार से है—

1. **दार्शनिकता**—'चन्द्रगुप्त' नाटक में हमें आद्योपान्त चन्द्रगुप्त और सहपात्रों की भावुकता एवं दार्शनिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। चन्द्रगुप्त की कर्तव्यनिष्ठा उसके व्यक्तित्व एवं चरित्र का अविच्छिन्न अंग है। उसकी भावुकता की पुष्टि उसके इस कथन से होती है—'इस केंद्रच्युत जलते हुए उल्कापिंड की कोई कक्षा नहीं। निर्वासित अपमानित प्राणों की चिंता क्या?' प्रसाद जी की दार्शनिक और चिन्तक दृष्टि को सेल्यूकस की कन्या कार्नेलिया के कथन से समझ सकते हैं—'सिकंदर ने भारत से युद्ध किया है और मैंने भारत का अध्ययन किया है। मैं देखती हूँ कि यह युद्ध ग्रीक और भारतीयों के अस्त्र का ही नहीं, इसमें दो बुद्धियाँ भी लड़ रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट है, सिकंदर और चन्द्रगुप्त तो उनके अस्त्र हैं।'' चन्द्रगुप्त का अन्तर्द्वन्द उसके हृदय की त्याग वृत्ति को स्पष्ट व्यक्त करता है। वह कल्याणी से कहता है—''परन्तु राजकुमारी, मेरा हृदय देश की दुर्दशा से व्याकुल है। इस ज्वाला में स्मृति-लता मुरझा गयी है।''
2. **ऐतिहासिकता**—इतिहास और ऐतिहासिक नाटक में मूल अंतर कहाँ पर है, इस तथ्य को समझे बिना 'चन्द्रगुप्त' की ऐतिहासिकता की परख दुष्कर जान पड़ती है।

   इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर अतीत को नया जीवन देने में नितान्त असमर्थ रहता है। इसके विपरीत ऐतिहासिक नाटककार अपनी प्रतिभा और सजीव कल्पना के सहारे अतीत को पुनर्जीवित करने में समर्थ है। प्रसाद जी ने कृतियों के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति का अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें मुझे पूर्ण सन्देह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का कुछ प्रयत्न किया है।''

   'चन्द्रगुप्त' नाटक की कथावस्तु में प्रसाद जी ने ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए यथाशक्ति प्रयास किया है। जहाँ कहीं उन्हें इतिहास की बिखरी सामग्री को एक सूत्र में पिरोने की आवश्यकता पड़ी है अथवा रसानुभूति की तीव्रता हेतु अवसर आया है, उन्होंने नि:संकोच कल्पना का सहारा लिया है। किन्तु उनकी कल्पना से इतिहास का किंचित अनर्थ नहीं हुआ है। इस कल्पना ने इतिहास के निर्जीव शरीर में प्राण ही फूँके हैं उसके स्वरूप को विकृत नहीं किया है। अत: इस नाटक में पात्रों, घटनाओं और स्थानों की ऐतिहासिकता की पर्याप्त रक्षा हुई है।

   प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' में मौर्य वंश, पिप्पली कानन, चन्द्रगुप्त का बाल्य जीवन, सिकंदर, मगध, चन्द्रगुप्त की विजय, शासन व्यवस्था और चाणक्य आदि के इतिहास को देश काल की कसौटी पर कसने का पूर्ण प्रयास भूमिका में किया है। साथ ही नाटक की कथावस्तु भी अधिकाधिक ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को ध्यान में रखकर निर्मित की गयी है।
3. **नारी चित्रण**—प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में नारी पात्रों के चित्रण में विशेष मनोयोग प्रदर्शित किया है। उनकी नारी विषयक जिज्ञासा उन विधि नारी वर्गों से ही सूचित हो जाती है जो उन्होंने खड़े किये हैं। अलका, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया आदि नारी पात्रों के माध्यम से प्रसाद जी ने उनके प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान अधिकार को प्रतिपादित किया है। उनके प्रत्येक नारी पात्र के द्वारा आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यहाँ तक कि विदेशी सेल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया के चरित्र को भी प्रसाद जी ने बड़ी श्रद्धा और उदारता के साथ उतारा है। कार्नेलिया का सेल्यूकस से यह कहना कि—''महत्वाकांक्षा के दाँव पर मनुष्यता सदैव हारी है।'' और अपनी सखी से भारतवर्ष को 'निर्मल ज्योति का देश' कहना प्रसाद जी की स्वस्थ नारी दृष्टि का ही उदाहरण है।

   स्त्री पुरूष की क्रीड़ा कन्दुक नहीं अपितु एक वीर क्षत्राणी के रूप में सैन्य संचालन की क्षमता भी रखती है। नंद की पुत्री कल्याणी पर्वतेश्वर की सहायतार्थ यवन-बल को रोकने के लिए स्वयं युद्ध में जाने की बात कहती है—''पिताजी, मैं पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लूंगी। मैं वृषल्प-कन्या हूँ। उस क्षत्रिय को यह सिखा दूँगी कि राजकन्या कल्याणी किसी क्षत्राणी से कम नहीं। सेनापति को आज्ञा दीजिए कि आसन्न गांधार युद्ध में मगध की सेना अवश्य जाए और मैं स्वयं उसका संचालन करूँगी।''

   प्रसाद के नारी पात्रों में पुरूष की अपेक्षा अधिक भावुकता, त्याग, ममता, स्नेह, मर्यादा एवं गम्भीरता है। उनमें आदर्श, स्नेह, वीरता, बलिदान एवं नि:स्वार्थ प्रेम के साथ भावुकता तथा करूणा का चित्रण हुआ है। उनका विकास प्रेम, कर्त्तव्य,

TOUCH 'n' PASS

क्षमा, प्रतिरोध और त्याग की रेखाओं के बीच होता है। प्रेम और कर्त्तव्य का निर्वाह वे सब कुछ त्याग कर सकती हैं। वे राष्ट्र और समाज के प्रति कर्तव्य का पालन अपनी वैयक्तिक इच्छा, आकांक्षाओं का दमन करके करती हैं।

4. **राष्ट्रीयता**—प्रसाद की राष्ट्रीयता की भावना का परिचय नायक चन्द्रगुप्त के इस कथन—"धन्यवाद! भारतीय कृतघ्न नहीं होते" से ही मिल जाता है। देश प्रेम के ताने-बाने से बुना 'चन्द्रगुप्त' नामक भारतीय गौरव का निरन्तर गान करता है। पर्वतेश्वर सदृश वीर का यह आह्वान प्रसाद की संवेदनशीलता का उत्कृष्ट नमूना है—"सेनापति! देखो, उन कायरों को रोको। उनसे कह दो कि आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिंता नहीं। इन्हें बता देना होगा कि भारतीय लड़ना जानते हैं। बादलों से पानी की जगह बज्र बरसें, सारी गजसेना छिन्न-भिन्न हो जाए, ... परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असंभव है। ..... उन भगोड़ों से एक बार जननी के स्तन्य की लज्जा के नाम पर रूकने के लिए कहो। कहो कि मरने का क्षण एक ही है।"
प्रसाद का देश प्रेम और भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग अद्वितीय है, इसका उदाहरण कार्नेलिया के इस कथन में मिलता है—"यह स्वप्नों का देश- यह त्याग और ज्ञान का पालना—यह प्रेम की रंगभूमि—भारतभूमि क्या भुलायी जा सकती है? कदापि नहीं—अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।"

5. **कथोपकथन**—नाटक के मूलतत्वों में कथोपकथन का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। पात्रों के चरित्र-विकास, वस्तु विन्यास, रस-निष्पत्ति का उत्तमोत्तम साधन संवाद योजना ही है। नाटक की सफलता बहुत कुछ संवादों पर निर्भर रहती है। अरस्तू ने लिखा है कि "संवाद की भाषा स्पष्ट व सुगम होते हुए भी असाधारण एवं चमत्कारपूर्ण होनी चाहिए।" 'चन्द्रगुप्त' की संवाद योजना सफल कही जा सकती है। नाटक के प्रथम अंक में ही आंभीक और सिंहरण के संवाद का यह चित्र दृष्टव्य है—
आंभीक—(पैर पटककर) ओह असह्य! युवक तुम बंदी हो।
सिंहरण—कदापि नहीं, मालव कदापि बंदी नहीं हो सकता।
इसी प्रकार प्रथम अंक में ही अलका और सिंहरण के इस कथोपकथन से उनके चरित्रों का उद्घाटन होता है—
अलका—मालव, तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है, और वही यहाँ आपत्ति में है।
सिंहरण—राजकुमारी, इस अनुकंपा के लिए कृतज्ञ हुआ। परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है। यही क्या, समग्र आर्यावर्त है इसलिये मैं—
इस प्रकार से 'चन्द्रगुप्त' नाटक की संवाद योजना काव्यत्व, चिन्तन, संवेगात्मकता, माधुर्य, ओज, व्यंग्य आदि कई रंगों का समाहार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद के संवादों को लच्छेदार, अनाटकीय और गद्य काव्य जैसा बताया है।

प्र.3. डॉ० रामकुमार वर्मा का जीवन परिचय एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले में 15 सितंबर सन् 1905 ई० में हुआ। इनके पिता लक्ष्मीप्रसाद वर्मा डिप्टी कलेक्टर थे। वर्मा जी को प्रारंभिक शिक्षा इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी ने अपने घर पर ही दी, जो उस समय की हिन्दी कवयित्रियों में विशेष स्थान रखती थीं। बचपन में इन्हें 'कुमार' के नाम से पुकारा जाता था। वर्मा जी में प्रारम्भ से ही प्रतिभा के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देते थे। ये सदैव अपनी कक्षा में प्रथम आया करते थे। पठन-पाठन की प्रतिभा के साथ रामकुमार वर्मा शाला के अन्य कार्यों में भी काफी सहयोग देते थे। इनकी अभिनेता बनने की प्रबल इच्छा थी। अतएव इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में कई नाटकों में एक सफल अभिनेता का कार्य किया है। सन् 1922 ई० में ये दसवीं कक्षा में पहुँचे। इसी समय प्रबल वेग से असहयोग की आँधी उठी और ये राष्ट्र सेवा में हाथ बँटाने लगे तथा एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता के रूप में जनता के सम्मुख आए। इसके बाद वर्मा जी ने पुन: अध्ययन प्रारम्भ किया और सब परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करते हुए प्रयाग विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय में एम०ए० में सर्वप्रथम आए। इन्होंने नागपुर विश्वविद्यालय की ओर से 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की। अनेक वर्षों तक ये प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक तथा फिर अध्यक्ष रहे।
रामकुमार वर्मा आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'एकांकी सम्राट' के रूप में जाने जाते हैं। वर्मा जी हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, व्यंग्यकार और हास्य कवि के रूप में जाने जाते हैं वर्मा जी की हास्य और व्यंग्य दोनों विधाओं में समान रूप से पकड़ है। नाटककार और कवि के साथ-साथ उन्होंने समीक्षक, अध्यापक तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखक के रूप में भी हिन्दी साहित्य-सृजन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये एकांकीकार, आलोचक और कवि हैं। इनके काव्य में 'रहस्यवाद' और

'छायावाद' की झलक है। हिन्दी एकांकी के जनक रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर 150 से अधिक एकांकी लिखीं। भगवतीचरण वर्मा ने कहा था—"डॉ० रामकुमार वर्मा रहस्यवाद के पंडित हैं। उन्होंने रहस्यवाद के हर पहलू का अध्ययन किया है। उस पर मनन किया है। उसको समझना हो और उसका वास्तविक और वैज्ञानिक रूप देखना हो तो उसके लिए श्री वर्मा का 'चित्ररेखा' सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रंथ होगा।" रामकुमार वर्मा हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कहा भी है—"जिस देश के पास हिन्दी जैसी मधुर भाषा है, वह देश अंग्रेजी के पीछे दीवाना क्यों है? स्वतंत्र देश के नागरिकों को अपनी भाषा पर गर्व करना चाहिए, हमारी भावभूमि भारतीय होनी चाहिए। हमें जूठन की ओर नहीं ताकना चाहिए।" डॉ० रामकुमार वर्मा की कविता, संगीत और कलाओं में गहरी रुचि थी। 1921 तक आते-आते युवक रामकुमार, गाँधी जी के असहयोग आंदोलन में सम्मिलित हो गए। उन्होंने 17 वर्ष की आयु में एक कविता प्रतियोगिता में ₹ 51 का पुरस्कार जीता था। यहीं से उनकी साहित्यिक यात्रा आरम्भ हुई थी।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने देश ही नहीं विदेशों में भी हिन्दी का परचम लहराया। 1957 में वे मॉस्को विश्वविद्यालय के अध्यक्ष के रूप में सोवियत संघ की यात्रा पर गए। 1963 में उन्हें नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय ने शिक्षा सहायक के रूप में आमंत्रित किया। 1967 में वे श्रीलंका में भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष के रूप में भेजे गए। 5 अक्टूबर, सन् 1990 ई० में इस महान एकांकीकार का प्रयाग में निधन हो गया।

प्रकाशित रचनाएँ

काव्य कृतियाँ—अंजलि, चित्तौड़ की चिता, चित्ररेखा, एकलव्य, जौहर, चंद्रकिरण, उत्तरायण, रूपराशि आदि।

एकांकी—बादल की मृत्यु (सर्वप्रथम एकांकी), रेशमी टाई, दीपदान, इंद्रधनुष, बापू, रूपरंग, रिमझिम, चंपक, दस मिनट, मयूर पंख, पृथ्वीराज की आँखें आदि एकांकी इन्हें प्रसिद्धि दिलाने में विशेष सहायक रहे।

पुरस्कार व सम्मान—डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी की लघु नाट्य परंपरा को एक नया मोड़ देने वाले 'एकांकी सम्राट' के रूप में जाने जाते हैं। रामकुमार वर्मा को नागपुर विश्वविद्यालय की ओर से 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पर शोध करने के फलस्वरूप पीएच०डी० की उपाधि प्रदान की गई। 'प्रयाग विश्वविद्यालय' ने इन्हें एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में सम्मानित करते हुए 'हालैंड मेडल' से सम्मानित किया। भारत सरकार ने इनको सन् 1963 ई० में 'पद्मभूषण' उपाधि से विभूषित किया। इनको मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 'कालिदास' तथा 'देव' पुरस्कार दिए गए और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' द्वारा इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

प्र.4. डॉ० रामकुमार वर्मा के 'दीपदान' एकांकी के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर

पन्ना धाय का चरित्र-चित्रण

पन्ना धाय राणा सांगा के पुत्र राणा उदयसिंह की धाय माँ थीं। पन्ना धाय किसी राजपरिवार की सदस्य नहीं थीं। वह हरचंद हाँकला की पुत्री थी। अपना सर्वस्व स्वामी को अर्पण करने के लिए जानी जाने वाली राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह को माँ के स्थान पर दूध पिलाने के कारण पन्ना 'धाय माँ' कहलाई थी। पन्ना का पुत्र चन्दन और राजकुमार उदयसिंह साथ-साथ बड़े हुए थे। उदयसिंह को पन्ना ने अपने पुत्र के समान पाला था। पन्ना धाय ने उदयसिंह की माँ रानी कर्णावती के सामूहिक आत्म-बलिदान द्वारा स्वर्गारोहण पर बालक की परवरिश करने का दायित्व सँभाला था। पन्ना ने पूरी लगन से बालक की परवरिश और सुरक्षा की। पन्ना चित्तौड़ के कुम्भा महल में रहती थी।

अदम्य साहस की प्रतिमूर्ति—'राजपूतनी व्यापार नहीं करती महाराज! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर' इस कथन के माध्यम से पन्ना के सच्ची क्षत्राणी होने के गुण का पता चलता है। उसमें क्षत्राणियों जैसा अदम्य साहस, असीम त्याग और वीरता है। वह बनवीर की क्रूरता के सामने नतमस्तक नहीं होती और उसे धिक्कारते हुए कहती है—"धिक्कार है बनवीर! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला।" वह साहस के साथ बनवीर पर अपनी कटार से प्रहार करती है और उसे हत्यारा बनवीर कहकर संबोधित करती है। वह रावल की पुत्री सोना को भी फटकारती है व कहती है—"चित्तौड़ रास-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं सोना जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।" वह उदयसिंह से भी कहती है—"चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर! जैसे लता में फूल खिलते हैं, वैसे ही यहाँ के वीरों के हाथों में तलवार खिलती है।"

धैर्य से परिपूर्ण—पन्ना धाय धैर्य से परिपूर्ण थी। अपने पुत्र का वध अपनी आँखों के सामने होते देखकर भी उसने उफ तक नहीं की और धैर्य से अपने कर्त्तव्य का पालन करती रही। चित्तौड़ का शासक, दासी का पुत्र बनवीर बनना चाहता था। उसने राणा के

TOUCH 'n PASS

वंशजों को एक-एक कर मार डाला। बनवीर एक रात महाराजा विक्रमादित्व की हत्या करके उदयसिंह को मारने के लिए उसके महल की ओर चला पड़ा। एक विश्वस्त सेवक द्वारा पन्ना धाय को इसकी पूर्व सूचना मिल गई।

साहसी—पन्ना धाय एक साहसी महिला थी जो अकेले अपने दम पर बनवीर का प्रतिरोध करती है। पन्ना राजवंश और अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग थी व उदयसिंह को बचाना चाहती थी। उसने उदयसिंह को एक बांस की टोकरी में सुलाकर उसे जूठी पत्तलों से ढककर एक विश्वासपात्र सेवक के साथ महल से बाहर भेज दिया। बनवीर को धोखा देने के उद्देश्य से अपने पुत्र को उदयसिंह के पलंग पर सुला दिया। बनवीर रक्तरंजित तलवार लिए उदयसिंह के कक्ष में आया और उसके बारे में पूछा। पन्ना ने उदयसिंह के पलंग की ओर संकेत किया जिस पर उसका पुत्र सोया था। बनवीर ने पन्ना के पुत्र को उदयसिंह समझकर मार डाला। पन्ना अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र के वध को अविचलित रूप से देखती रही। बनवीर को पता न लगे इसलिए वह आँसू भी नहीं बहा पाई। बनवीर के जाने के बाद अपने मृत पुत्र की लाश को चूमकर राजकुमार को सुरक्षित स्थान पर ले जाने के लिए निकली पड़ी। उसने अपने कर्तव्य-पूर्ति में अपने पुत्र का बलिदान देकर मेवाड़ राजवंश को बचाया।

स्वामिभक्त और राष्ट्रभक्त—पन्ना धाय एक स्वामिभक्त और राष्ट्रभक्त महिला थी। वह अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए और अपने स्वामी के पुत्र की रक्षा के लिए अपने स्वयं के पुत्र के प्राणों की बाजी लगाने से भी नहीं चूकी। मेवाड़ के इतिहास में जिस गौरव के साथ प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप को याद किया जाता है, उसी गौरव के साथ पन्ना धाय का नाम भी लिया जाता है, जिसने स्वामिभक्ति को सर्वोपरि मानते हुए अपने पुत्र चन्दन का बलिदान दे दिया था। इतिहास में पन्ना धाय का नाम स्वामिभक्ति के लिए प्रसिद्ध है। उसमें क्षत्राणियों के समान त्याग का गुण विद्यमान था। वह सोते हुए चन्दन को संबोधित करते हुए कहती है—"आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है।" अतः पन्ना निर्भीक, त्याग वाली, स्वामिभक्त व सच्ची क्षत्राणी थी।

सोना का चरित्र-चित्रण

सोना दीपदान एकांकी की दूसरी प्रमुख पात्र है। सोना एक नृत्य करने वाली, चन्दन और उदयसिंह की हमउम्र, एक स्वच्छन्द बालिका है। जिसे दुनिया की राजनीतिक कुटिलता और षड्यन्त्रों की समझ नहीं है। बनवीर उसे विभिन्न प्रकार के उपहार प्रदान करता है। वह उससे काफी प्रभावित दिखाई देती हैं। उसे नृत्य करने में आनन्द का अनुभव होता है। उसकी प्रमुख चारित्रिक विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

अत्यंत सुंदर—सोना रावल सरूपसिंह की अत्यंत रूपवती लड़की है। उसकी आयु 16 वर्ष है।

वाकपटु एवं शिष्टाचारी—सोना बोलने में निपुण व राजमहल के शिष्टाचार से परिचित है। उसके शिष्टाचार व वाकपटुता का उस समय पता चलता है जब वह महल में कुँवर उदयसिंह को दीपदान उत्सव के लिए लेने आती है। महल में प्रवेश कर वह पन्ना धाय को प्रणाम करती है और उनसे उदयसिंह के विषय में पूछती है। पन्ना के कहने पर—"वे थक गए हैं। सोना चाहते हैं।" तब वह प्रत्युत्तर देती है, "सोना चाहते हैं! तो मैं भी तो सोना हूँ।"

सरल स्वभाव—सोना स्वभाव से सरल है। वह राजमहल में होने वाले षड्यंत्रों से अनभिज्ञ है। पन्ना के सम्मुख नृत्य की बात करना, बनवीर द्वारा कही गई बातों को खेल-खेल में पन्ना को बता देना, मयूरपक्ष कुंड उत्सव की बातों का वर्णन करना उसके सरल स्वभाव के ही प्रमाण हैं।

अस्थिर—सोना स्वयं को स्थिर नही रख पाती। वह भ्रमित-सी दिखाई पड़ती है क्योंकि वह एक ओर कुँवर उदयसिंह से प्रेम करती है और दूसरी ओर बनवीर के प्रलोभन में आ जाती है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सोना में अल्हड़ कन्या की समस्त विशेषताएँ हैं।

सामली का चरित्र-चित्रण

सामली अंतःपुर की साधारण-सी परिचारिका (सेविका) है। जिसकी आयु 28 वर्ष है। वह कुँवर उदयसिंह के प्रति स्वामिभक्त है। वह कुँवर उदयसिंह से प्रेम करती है व उन्हें चित्तौड़ के महाराज के रूप में देखती है। सामली का 'दीपदान' एकांकी में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामली ही पन्ना धाय को बनवीर के षड्यंत्र व महाराणा विक्रमादित्य की हत्या की सूचना देती है। वहीं पन्ना को बताती है कि 'लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुँवर उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझकर जीवित नहीं रहने देगा।' वह पन्ना से कहती है कि सभी सैनिक व सामंत भी उसी के साथ हैं। सामली पन्ना धाय की कुँवर उदयसिंह को महल से बाहर भेजने में मदद करती है। कीरतबारी के आने पर वह पन्ना के आदेशानुसार महल के बाहर सैनिकों की संख्या ज्ञात करती है तथा कीरत को उत्तर दिशा की तरफ से निकलने के लिए कहती है क्योंकि उस दिशा में सैनिकों की संख्या केवल सात है। उसके

सहयोग से ही कुँवर उदयसिंह के प्राण बचाने में पन्ना सफल होती है। सामली पन्ना को बनवीर के आने पर कुँवर को न पाकर बनवीर के प्रश्न पूछने की स्थिति से अवगत कराती है। पन्ना द्वारा कुँवर उदयसिंह की शैया पर चन्दन को सुला देने की बात पर वह दु:खी होते हुए वहाँ से चली जाती है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में सामली का पन्ना की सहायिका के रूप में योगदान अतुलनीय है। सामली के योगदान से ही पन्ना चित्तौड़ के उत्तराधिकारी का संरक्षण करने में सफल रहती है।

प्र.5. रामकुमार वर्मा के 'दीपदान' एकांकी के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

दीपदान : एकांकी के तत्त्व

डॉ० रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर अनेक नाटकों की रचना करके हिन्दी नाट्य साहित्य में अपना नाम अमर कर लिया है। 'दीपदान' एकांकी में उन्होंने बलिदान और त्याग की मूर्ति पन्ना धाय की ऐतिहासिक गौरवगाथा को चित्रित किया है। प्रस्तुत एकांकी की समीक्षा निम्नवत् है—

कथावस्तु—जिस कथा के आधार पर नाटक की रचना की जाती है, उसे नाटक की कथावस्तु कहा जाता है। वह इस प्रकार है—

दीपदान का आयोजन—चित्तौड़गढ़ के राणा संग्रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ के वास्तविक उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा। वास्तव में राज्य संग्रामसिंह के पुत्र उदयसिंह को मिलना चाहिए था, परन्तु उदयसिंह के अल्पवयस्क होने के कारण ऐसा न हो सका। संग्रामसिंह का भतीजा बनवीर चित्तौड़गढ़ की गद्दी अपने अधिकार में लेना चाहता था। उसने उदयसिंह की हत्या का षड्यन्त्र रचा और मयूरपक्ष नामक कुण्ड में दीपदान का आयोजन किया। पन्ना धाय उदयसिंह की बचपन से ही संरक्षिका थी। जब उन्हें उदयसिंह की हत्या के षड्यन्त्र का पता चलता है तो वह उसकी रक्षा के लिए बेचैन हो उठती है। उदयसिंह दीपदान के उत्सव में जाने का हठ कर रहे थे पन्ना उन्हें वहाँ नहीं जाने दे रही थी। वे रूठकर और नाराज होकर सो गये। उनके सोने के बाद सोना उदयसिंह को उत्सव में ले जाने के लिए आई। पन्ना ने उदयसिंह को वहाँ से बाहर भेजने की योजना बनाई और अपने पुत्र को उदयसिंह के बिस्तर पर सुला दिया।

पन्ना ने दीपदान के उत्सव की धूमधाम का लाभ उठाया। उदयसिंह को पत्तल उठाने वाले कीरत बारी की टोकरी में छिपाकर किले के बाहर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया। कीरतबारी के जाने के बाद बनवीर अपने हाथ में नंगी तलवार लेकर उदयसिंह के कक्ष में आता है। जागीर का प्रलोभन देकर उसने पन्ना को अपने पक्ष में करना चाहा, परन्तु पन्ना अपने निश्चय पर अटल रही। उसने बनवीर के दिये हुये लालच को ठुकरा दिया और कहा—"राजपूतनी कभी व्यापार नहीं करती महाराज। वह या तो रणभूमि चढ़ती है या चिता पर।" पन्ना के इस कथन ने बनवीर को बहुत क्रोधित कर दिया। क्रोधित बनवीर ने भ्रान्तिवश पन्ना के पुत्र चन्दन की हत्या कर दी। इस प्रकार पन्ना के सामने ही उसके पुत्र की हत्या कर दी गई। बनवीर के इस क्रूरकाण्ड और पन्ना के अपूर्व त्याग के साथ एकांकी समाप्त हो जाती है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण—कुँवर उदयसिंह नाटक के मुख्य पात्र हैं। उनके इर्द-गिर्द ही नाटक का कथानक घूमता है। वे स्व० राणा सांगा के पुत्र और चित्तौड़ के उत्तराधिकारी हैं। पन्ना धाय के द्वारा उनका पालन पोषण होता है। पन्ना की प्रबल इच्छा है कि एक दिन वह चित्तौड़ का उत्तराधिकारी बने। चन्दन पन्ना का पुत्र है। वह उदयसिंह के समवयस्क है। उदयसिंह के साथ ही उसका लालन-पालन होता है। उदयसिंह उसी के साथ खेलते हैं। बनवीर-राणा सांगा के भाई पृथ्वीसिंह के पुत्र का दासीपुत्र है। उसकी आयु 32 वर्ष है। राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् वह राज्य की देखभाल करता है और उदयसिंह की भी। परन्तु राज्य के लोभ में वह उदयसिंह की हत्या का षड्यन्त्र रचता है। पन्ना को जागीर का लोभ देकर उदयसिंह की हत्या करना चाहता है, परन्तु पन्ना उस लालच को ठुकरा देती है। कीरतबारी जूठी पत्तल उठाने वाला सेवक है। वह उदय की रक्षा में पन्ना का सहायक होता है और उदयसिंह को महल के बाहर सुरक्षित स्थान तक पहुँचाता है।

पन्ना एकांकी की नायिका है। वह उदयसिंह की संरक्षिका है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि एक दिन उदयसिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर अभिषिक्त हो। वह अपने पुत्र से भी अधिक उदयसिंह का ध्यान रखती है। अपने पुत्र की बलि देकर भी उदयसिंह की बनवीर के क्रूर हाथों से रक्षा करती है। सोना, रावल सरूप सिंह की अत्यन्त रूपवती सुन्दर पुत्री है। वह कुँवर उदयसिंह के साथ ही खेलती है। बनवीर ने उसे दीपदान के उत्सव में नाचने और उदयसिंह को अपने साथ लाने को कहा। सामली—अन्त:पुर की परिचारिका है।

संवाद या कथनोपकथन—नाटक में संवाद का अत्यन्त महत्त्व होता है। संवाद के आधार पर ही नाटक की कथावस्तु विभिन्न विकास की अवस्थाओं में विकसित होती है। जैसे—पन्ना-उदयसिंह को दीपदान के उत्सव में जाने से रोकती है और कहती है—"क्या है कुंवर, तुमने अभी तलवार म्यान में नहीं रखी?" उदयसिंह "धाय माँ, कितनी सुन्दर लड़कियाँ गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं।" जागीर का लालच देने पर पन्ना बनवीर से कहती है—"राजपूतनी व्यापार नहीं करती महाराज! या तो वह रणभूमि पर चढ़ती है या फिर चिता पर।"

TOUCH 'n' PASS

भाषा-शैली—नाटक की भाषा परिमार्जित शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। लेखक को भाषा को पात्रों के अनुकूल ही अपनाना चाहिये परन्तु भाषा पात्रानकूल नहीं है। सेवक और निम्न स्तर के पात्रों की भाषा भी उच्च स्तर के पात्रों की तरह ही है।
देशकाल एवं वातावरण—देशकाल एवं वातावरण के विचार से नाटक अत्यन्त खरा उतरा है। नाटक में किसी विशेष काल के पात्रों और घटनाओं का चित्रण होता है। राणा सांगा के समय का चित्रण लेखक ने अत्यन्त कुशलता से किया है। पन्ना एक भारतीय नारी के आदर्श के साथ-साथ वीरांगना क्षत्राणी है। राजकुमार को अवस्थानुसार युद्ध कौशल की शिक्षा दिलाना उसका कर्त्तव्य है। "अरे रात हो गई और तुमने अभी तक तलवार म्यान में नहीं रखी?" उस समय के सामंतवादी युग का एक दृश्य— "बनवीर ने नगर भर में आज नाच-गाने का त्योहार मनवाया, जिससे नगरवासियों का ध्यान नाच रंग में ही रहे। मौका देखकर वह राजमहल गया। अन्त:पुर में वह आता जाता था। किसी ने रोका नहीं। उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी।"
उद्देश्य—लेखक श्री रामकुमार वर्मा ने प्रस्तुत नाटक में भारतीय नारी के आदर्श चरित्र का प्रस्तुतीकरण किया है। पन्ना के रूप में उन्होंने समस्त भारतीय नारियों को उनके गौरवशाली इतिहास का बोध कराया है। लेखक भारतीय संस्कृति के उपासक और पालक हैं। वस्तुत: पन्ना का चरित्र एक ऐसा चरित्र है कि उसका अनुकरण प्रत्येक भारतीय नारी को करना चाहिये। यह लेखक का परम उद्देश्य है। भारतीय नारी कोमलता, ममता, स्नेह और प्रेम की प्रतिमूर्ति होती है। उसको स्थान-स्थान पर अबला शब्द से सम्बोधित किया गया है। परन्तु जब उसका रक्त उबाल खाता है तो वह सिंहवाहिनी दुर्गा की शक्ति को धारण कर लेती है। ऐसे ही क्षणों में वह देश और समाज की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। इसी तथ्य का भान भारतीय नारी को कराना लेखक का मुख्य उद्देश्य है।

प्र.6. जगदीशचन्द्र माथुर के जीवन परिचय एवं कृतित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

जगदीशचन्द्र माथुर

जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म 16 जुलाई, 1917 ई. खुर्जा, बुलंदशहर जिला, उत्तर प्रदेश में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा खुर्जा में हुई। उच्च शिक्षा युइंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद और प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। प्रयाग विश्वविद्यालय का शैक्षिक वातावरण और प्रयाग के साहित्यिक संस्कार रचनाकार के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका हैं। सन् 1939 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम०ए० (अंग्रेजी) करने के बाद सन् 1941 ई. में 'इंडियन सिविल सर्विस' में चुन लिए गए।
कार्यक्षेत्र—सरकारी नौकरी में 6 वर्ष बिहार शासन के शिक्षा सचिव के रूप में, सन् 1955 से 1962 तक आकाशवाणी-भारत सरकार के महासंचालक के रूप में, सन् 1963 से 1964 ई० तक उत्तर बिहार (तिरहुत) के कमिश्नर के रूप में कार्य करने के बाद 1963-64 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका में विजिटिंग फेलो नियुक्त होकर विदेश चले गए।
वहाँ से लौटने के बाद विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर काम करते हुए 19 दिसम्बर,1971 ई० में भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार रहे। इन सरकारी नौकरियों में व्यस्त रहते हुए भी भारतीय इतिहास और संस्कृति को वर्तमान संदर्भ में व्याख्यायित करने का प्रयास चलता ही रहा।
साहित्यिक परिचय—अध्ययनकाल से ही उनका लेखन प्रारम्भ होता है। सन् 1930 ई० में तीन छोटे नाटकों के माध्यम से वे अपनी सृजनशीलता की धारा के प्रति उन्मुख हुए। प्रयाग में उनके नाटक 'चाँद', 'रुपाभ' पत्रिकाओं में न केवल छपे ही, बल्कि इन्होंने 'वीर अभिमन्यु आदि नाटकों में भाग लिया। 'भोर का तारा' में संग्रहीत सारी रचनाएँ प्रयाग में ही लिखी गईं। यह नाम प्रतीक रूप में शिल्प और संवेदना दोनों दृष्टियों से जगदीशचन्द्र माथुर के रचनात्मक व्यक्तित्व के 'भोर का तारा' ही है। इसके बाद की रचनाओं में समकालीनता और परंपरा के प्रति गहराई क्रमश: बढ़ती गई है। व्यक्तियों, घटनाओं और देश के विभिन्न ऐतिहासिक स्थलों से प्राप्त अनुभवों ने सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।
इनकी मुख्य कृतियाँ—इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

- भोर का तारा (1946 ई०),
- कोणार्क (1950 ई०),
- ओ मेरे सपने (1950 ई०),
- शारदीया (1959 ई०),
- दस तस्वीरें (1962 ई०),
- परंपराशील नाट्य (1968 ई०),
- पहला राजा (1970 ई०),
- जिन्होंने जीना जाना (1972 ई०)।

TOUCH 'n' PASS

जगदीशचन्द्र माथुर की मृत्यु: 14 मई, 1978 में हुई। ये हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों में से एक थे, जिन्होंने आकाशवाणी में काम करते हुए हिन्दी की लोकप्रियता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। टेलीविजन उन्हीं के जमाने में वर्ष 1949 में शुरू हुआ था। हिन्दी और भारतीय भाषाओं के तमाम बड़े लेखकों को वे ही रेडियो में लेकर आए थे। सुमित्रानंदन पंत से लेकर रामधारी सिंह 'दिनकर' और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे दिग्गज साहित्यकारों के साथ उन्होंने हिन्दी के माध्यम से सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूचना संचार तंत्र विकसित और स्थापित किया था।

प्र.7. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के सार का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का सार

एकांकी का आरम्भ रामस्वरूप के घर में मेहमानों के आतिथ्य की तैयारी से होता है। रामस्वरूप कभी नौकर पर झुंझलाता, कभी चीजों को व्यवस्थित करता तो कभी प्रेमा को हिदायतें देता है। उसी समय प्रेमा की बातों से पता चलता है कि उमा इस सारी व्यवस्था से नाराज होकर मुँह फुलाए पड़ी है। सज-धजकर प्रदर्शन की वस्तु बनना उसे पसंद नहीं आ रहा। प्रेमा का कहना है कि पढ़-लिख जाने के कारण उमा अपने माता-पिता की बात नहीं मान रही। तभी रामस्वरूप प्रेमा को टोक देता है कि मेहमानों के सामने उमा की शिक्षा की चर्चा नहीं करनी है।

फिर वे दोनों मेहमानों के नाश्ते की व्यवस्था में लग जाते हैं। बाकी सब चीजें तो तैयार है बस टोस्ट के लिए मक्खन मँगाना है जो रतन तुरंत जाकर ले आएगा। तभी हमें पता चलता है कि मेहमान के रूप में दो व्यक्ति आ रहे हैं एक तो लड़का और दूसरा उसका पिता। दोनों पढ़े-लिखे होने के बावजूद बड़े दकियानूसी विचारों के हैं। ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करने के पक्ष में नहीं हैं। इतने में गोपालप्रसाद और उनका पुत्र शंकर आ जाते हैं। रामस्वरूप अपनी बातचीत और व्यवहार से उनकी पूरी-पूरी खातिर करने की कोशिश करता है। शंकर लखनऊ मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा है। स्वास्थ्य और व्यक्तित्व दोनों ही दृष्टियों से कमजोर है। पढ़ाई-लिखाई में भी अच्छा नहीं है।

गोपालप्रसाद अपनी युवावस्था के दिनों के किस्से बढ़ा-चढ़ाकर सुनाने लगता है। रामस्वरूप भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता है। रामस्वरूप जब चाय-नाश्ता लेने के लिए अंदर जाता है तो गोपालप्रसाद धीरे-से कहता है कि रामस्वरूप आदमी तो ठीक लग रहा है, माली हालत भी खराब नहीं लग रही है, लड़की ठीक हो तो रिश्ता किया जा सकता है। तभी वह शंकर को ध्यान दिलाता है कि झुककर बैठने की जरूरत नहीं है। ब्याह करने आया है तो कमर सीधी करके, तन कर बैठे।

चाय-नाश्ता करते हुए गोपालप्रसाद कहता है कि शंकर की शादी वह ऐसी लड़की से करना चाहता है जो ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो, क्योंकि बहू से नौकरी तो करानी नहीं है। किन्तु लड़की खूबसूरत जरूर होनी चाहिए। ज्यादा पढ़ी-लिखी होगी तो उसके नखरे कौन उठाएगा। उसके विचार में लड़के और लड़कियाँ बराबर नहीं हैं। आदमियों का तो काम ही है पढ़-लिखकर काबिल बनना किन्तु स्त्रियों को इसकी क्या जरूरत है। दुनिया में कुछ ऐसी चीजें हैं जो केवल पुरुषों के लिये ही है, स्त्रियों के लिए नहीं। ऊँची शिक्षा भी ऐसी ही चीज़ है।

जब वे नाश्ता कर चुके होते हैं तब उमा पान की तश्तरी लेकर आती है। उसकी आँखों पर चश्मा देखकर पिता-पुत्र दोनों चौंक उठते हैं कि कहीं चश्मा पढ़ाई-लिखाई की वजह से तो नहीं लगा। रामस्वरूप झूठ कह देता है कि थोड़े दिन पहले उमा की आँखें दुखनी आ गई थीं इसलिए चश्मा लगाना पड़ा। फिर गोपालप्रसाद उमा की परीक्षा लेना शुरू करता है। उसकी चाल-ढाल, शक्ल-सूरत आदि को पास करते हुए पूछता है कि उसे गाना-बजाना आता है कि नहीं। उमा सितार बजाकर गाना सुनाती है। काफी सधे स्वर में गाते हुए उमा की नजर शंकर से मिलती। तो वह गाना एकदम बंद कर देती है और अंदर जाने लगती है तो गोपालप्रसाद के कहने पर रामस्वरूप उसे रोक देता है। फिर गोपालप्रसाद पता लगाता है कि उसे सिलाई, पेंटिंग आदि आती है या नहीं। कोई इनाम वगैरह जीते हैं या नहीं। उमा चुप रहती है। रामस्वरूप कहता है कि उमा लज्जावश चुप है। किंतु गोपालप्रसाद को उमा की चुप्पी बिल्कुल पसंद नहीं आती और वह रूखी आवाज में कहता है 'जरा मुँह भी तो खोलना चाहिए'। रामस्वरूप फिर उमा से जवाब देने के लिए कहता है तो उमा के भीतर दबा आक्रोश बाहर आ जाता है और वह कह उठती है कि क्या जवाब दे? उसकी स्थिति तो उन बेजान चीजों या भेड़-बकरियों की सी है जो बिक्री के लिए रखी है। लड़कियों की भावनाओं की परवाह किये बगैर उन्हें विवाह के लिए इस तरह पसंद-नापसंद किया जाता है मानों उन्हें खरीदा जा रहा हो। यह सुनकर गोपालप्रसाद को गुस्सा आता है और वह रामस्वरूप से कहता है कि उमा उसकी बेइज्जती कर रही है। किंतु उमा उसे ध्यान दिलाती है कि इस तरह जाँच-परख करके इतनी देर से वह भी तो उमा की बेइज्जती कर रहा है, खासतौर से उस स्थिति में जबकि उसका पुत्र शंकर (जिसके लिए वह उमा की इतनी नाप-जोख कर रहा है) चरित्रहीन और कायर है। लड़कियों के हॉस्टल के इर्द-गिर्द चक्कर काटता पकड़ा गया तो उसने नौकरानी के पैर पकड़ लिये। हॉस्टल के जिक्र से गोपालप्रसाद को पता चलता है कि उमा कॉलेज में

TOUCH 'n' PASS

पढ़ी है। वह रामस्वरूप पर दोषारोपण करता है कि उमा को मैट्रिक पास बताकर उसके साथ धोखा किया जा रहा है। बी०ए० पास लड़की से यदि कहीं उसके बेटे का रिश्ता तय हो जाता तो गजब हो जाता। यह कहकर वे दोनों जाने लगते हैं। उमा दृढ़ता के साथ कहती है कि उसने बी०ए० पास किया है यह कोई गलत काम नहीं है। गोपाल प्रसाद से वह कहती है कि वे लोग जरूर चले जाएँ और घर जाकर देखें कि शंकर के रीढ़ की हड्डी है या नहीं। यह सुन कर गोपाल प्रसाद को अपनी बेबसी पर गुस्सा आता है और शंकर खिसिया कर रुआँसा हो उठता है। उमा की उत्तेजना धीरे-धीरे सिसकियों में बदल जाती है। रतन मक्खन लेकर आ जाता है। यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाती है।

प्र.8. 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी के आधार पर रामस्वरूप और गोपाल प्रसाद की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

रामस्वरूप का चरित्र-चित्रण

रामस्वरूप प्रगतिशील विचारों का एक विवश पिता है, जिसे अपनी बेटी के सुंदर भविष्य के लिए समाज की मान्यताओं के आगे झुकना पड़ता है। इसलिए उसके व्यक्तित्व के कुछ पक्ष सबल हैं, तो कुछ दुर्बल। उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

प्रगतिशील—रामस्वरूप मूल रूप से प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति है। वह चाहता है कि लड़कियों को भी उच्च शिक्षा दी जानी चाहिए। इसलिए वह अपनी बेटी उमा को खूब पढ़ाता-लिखाता है। उसे उमा को बी०ए० तक पढ़ाने में गर्व है। यह उसके व्यक्तित्व का उज्ज्वल गुण है।

विवश पिता—रामस्वरूप की दुर्बलता यह है कि वह बेटी उमा की शादी अपने जैसे अच्छे खानदान में करना चाहता है, किन्तु अच्छे खानदानों में अधिक पढ़ी लिखी बहू को स्वीकार नहीं किया जाता। वे कम पढ़ी लिखी बहू चाहते हैं ताकि वे उसे नियंत्रण में रखकर उस पर मनमाना रोब चला सकें। यहीं रामस्वरूप दुर्बल हो जाता है। वह गोपाल प्रसाद जैसे लोगों का तिरस्कार करने की बजाय उनके अनुसार ढलने की कोशिश करता है। इसके लिए वह झूठ भी बोलता है, उमा से ढोंग भी करवाता है तथा गोपाल प्रसाद की बेकार की बातों का समर्थन भी करता चला जाता है।

गोपाल प्रसाद का चरित्र-चित्रण

गोपाल प्रसाद समाज की सड़ी-गली यथास्थितिवादी भावनाओं का प्रतिनिधि है। वह पुरुष प्रधान समाज का वह अंग है जो चली आ रही रूढ़ियों को जैसे-तैसे सही सिद्ध करता हुआ अपना दबदबा बनाए रखना चाहता है। उसकी चारित्रिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

बड़बोला—गोपाल प्रसाद बड़बोला व्यक्ति है। वह अपनी विशेषताओं का बखान करने में चूक नहीं करता। नए जमाने की तुलना में अपने जमाने की अच्छाई का वर्णन हो, खाने-पीने की बात हो, अपने शरीर की ताकत का वर्णन हो, अपनी मैट्रिक को बढ़ा चढ़ाकर दिखाना हो, वह ऊँचे-ऊँचे स्वर में बिना शर्म-संकोच के बोलता चला जाता है। वह हावी होना जानता है। उसके सामने और लोग दब जाते हैं। शंकर तो बिल्कुल भीगी बिल्ली बना रहता है।

चालाक—गोपाल प्रसाद घाघ है। वह बेटे की शादी को बिजनेस समझता है। इसलिए वह घाटे का सौदा नहीं करना चाहता। वह होने वाली बहू को ठोक-बजाकर जाँचता है। उसके चश्मे से लेकर पढाई-लिखाई, संगीत, पेंटिंग, सिलाई, इनाम-सभी योग्यताओं की परख करता है। वह ऐसी सर्वांगपूर्ण बहू चाहता है, जो उसके कहने के अनुसार चल सके। इसलिए वह मैट्रिक से अधिक पढ़ी-लिखी बहू नहीं चाहता। उसके सामने उसे अपने दबने का भी भय है। गोपाल प्रसाद झूठ बोलने में भी कुशल है। उसका बेटा शंकर एक साल फेल हो चुका है। परन्तु वह कुशलतापूर्वक जताता है कि वह बीमारी के कारण रह गया था।

हँसौड़—गोपाल प्रसाद स्वभाव से हँसौड़ है। वह इधर-उधर की चुटीली बातें करके सबका मन लगाए रखता है। खूबसूरती पर टैक्स लगाने का मज़ाक इसी तरह का मनोरंजक मज़ाक है।

लिंग-भेद का शिकार—गोपाल प्रसाद वकील होते हुए भी लिंग-भेद का शिकार है। वह पढ़ाई-लिखाई पर लड़कों का अधिकार मानता है, लड़कियों का नहीं। उसके शब्दों में, 'कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी चीजों में से एक है।' गोपाल प्रसाद अपनी गलत-ठीक बातों को सही सिद्ध करना जानता है। इसके लिए वह तर्क न करके ज़ोर-जोर से बोलता है तथा दूसरों पर हावी होकर बात करता है। उसकी अपशब्द भरी कुतर्क शैली का उदाहरण देखिए—"भला पूछिए, इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।"

❐

UNIT-VI

हिन्दी निबन्ध

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म 9 सितम्बर, 1850 को काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ था।

प्र.2. भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप में किसे जाना जाता है?

उत्तर भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जाना जाता है।

प्र.3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्ध संग्रह कौन-कौन से हैं?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्ध संग्रह हैं—हिन्दी भाषा, स्वर्ग में विचार सभा, नाटक, लेवी प्राण लेवी, भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है।

प्र.4. आधुनिक हिन्दी काल का जन्मदाता किसे माना जाता है?

उत्तर आधुनिक हिन्दी काल का जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को माना जाता है।

प्र.5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार सर्वप्रथम किसकी उन्नति करना उचित है?

उत्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुसार सर्वप्रथम अपने देश को अपनी भाषा में उन्नति करना उचित है।

प्र.6. हिन्दी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात किसने किया?

उत्तर हिन्दी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया।

प्र.7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कृतियाँ कितने प्रकार की हैं?

उत्तर आचार्य शुक्ल की कृतियाँ तीन प्रकार की हैं—मौलिक कृतियाँ, अनुदूति कृतियाँ तथा सम्पादित कृतियाँ।

प्र.8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा मूलतः किस प्रकार की है?

उत्तर आचार्य शुक्ल की भाषा मूलत: शुद्ध तत्सम खड़ी बोली हिन्दी है।

प्र.9. अशोक के फूल रचना किसकी है?

उत्तर अशोक के फूल रचना हजारीप्रसाद द्विवेदी की है।

प्र.10. हजारीप्रसाद द्विवेदी के पिता कौन थे?

उत्तर हजारीप्रसाद द्विवेदी के पिता पं० अनमोल द्विवेदी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

प्र.11. वर्गीकरण की दृष्टि से द्विवेदी के निबन्ध को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है?

उत्तर वर्गीकरण की दृष्टि से द्विवेदी के निबन्धों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—विचारात्मक और आलोचनात्मक।

प्र.12. कुबेरनाथ राय का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर कुबेरनाथ राय का जन्म 26 मार्च, 1933 में उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के मतसाँ ग्राम में हुआ।

प्र.13. कुबेर का प्रथम निबन्ध कब और किसमें छपा।

उत्तर कुबेरनाथ का प्रथम निबन्ध हेमन्त की संध्या धर्मयुग के 15 मार्च, 1964 में छपा।

TOUCH n PASS

प्र.14. 'महाभारत का काव्यार्थ' और 'भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका' किसकी पुस्तकें हैं?

उत्तर 'महाभारत का काव्यार्थ' और 'भारतीय भाषा दर्शन की पीठिका' डॉ० विद्या निवास मिश्र की पुस्तकें हैं।

प्र.15. उत्तराफाल्गुनी का क्या अर्थ है?

उत्तर उत्तराफाल्गुनी का अर्थ है—वर्षा ऋतु की अंतिम नक्षत्र।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

उत्तर

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का साहित्य में स्थान

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी काल के जन्मदाता कहे जाते हैं। उनके वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "भारतेन्दु अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।" 15 वर्ष की अवस्था से ही भारतेन्दु ने साहित्य सेवा प्रारम्भ कर दी थी। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कवि-वचन-सुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएँ छपती थीं। वे 20 वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कवि-वचन-सुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकाली। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी की। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है।

भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योगदान दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे।

प्र.2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा शैली पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा शैली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा मूलत-शुद्ध तत्सम प्रधान खड़ी बोली हिंदी है लेकिन विषय को स्वाभाविक बनाने के लिए उनकी भाषा में उर्दू-फारसी, अंग्रेजी, तद्भव, देशज आदि सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है। साधारण बोलचाल के शब्दों तथा लोक प्रसिद्ध मुहावरों व लोकोक्तियों का भी यथास्थान प्रयोग मिलता है। उन्होंने अपने निबन्धों में शब्द चयन तथा वाक्य-रचना में जिस निपुणता का परिचय दिया है, वह आज भी सामान्य पाठकों के साथ-साथ उच्चस्तरीय साहित्यकारों के लिए अनुकरणीय है। उन्होंने जिस भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त किया वह अतुलनीय है। गंभीर विषयों के वर्णन तथा आलोचनात्मक निबन्धों में भाषा का क्लिष्ट रूप मिलता है। विषय की गंभीरता के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है। गंभीर विषयों को व्यक्त करने के लिए जिस संयम और शक्ति की आवश्यकता होती है, वह पूर्णत: विद्यमान है। अत: इस प्रकार की भाषा क्लिष्ट और जटिल होते हुए भी स्पष्ट है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है।

भाषा का सरल और व्यावहारिक रूप शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में मिलता है। इसमें हिंदी के प्रचलित शब्दों को ही अधिक ग्रहण किया गया है यथा स्थान उर्दू और अंग्रेजी के अतिप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा को अधिक सरल और व्यावहारिक बनाने के लिए शुक्ल जी ने तड़क-भड़क अटकल-पच्चू आदि ग्रामीण बोलचाल के शब्दों को भी अपनाया है तथा नौ दिन चले अढ़ाई कोस, जिसकी लाठी उसकी भैंस, पेट फूलना, काँटों पर चलना आदि कहावतों व मुहावरों का भी प्रयोग निस्संकोच होकर किया है। शुक्ल जी का दोनों प्रकार की भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वह अत्यंत संभ्रांत, परिमार्जित, प्रौढ़ और व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण निर्दोष है। उसमें रंचमात्र भी शिथिलता नहीं। शब्द मोतियों की भाँति वाक्यों के सूत्र में गुंथे हुए हैं। एक भी शब्द निरर्थक नहीं, प्रत्येक शब्द का अपना पूर्ण महत्त्व है।

TOUCH 'n PASS

शुक्ल जी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की पूरी-पूरी छाप है। यही कारण है कि प्रत्येक वाक्य पुकार कर कह देता है कि वह उनका है। सामान्य रूप से शुक्ल जी की शैली अत्यंत प्रौढ़ और मौलिक है। उसमें गागर में सागर पूर्ण रूप से विद्यमान है। उन्होंने अपने निबन्धों में आवश्यकता के अनुसार विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन भी होते हैं। कभी आगमन शैली तो कभी निगमन शैली का प्रयोग हुआ है। शुक्ल जी की शैली के मुख्यत: तीन रूप हैं—

1. **आलोचनात्मक शैली**—शुक्ल जी ने अपने आलोचनात्मक निबन्ध इसी शैली में लिखे हैं। इस शैली की भाषा गंभीर है। उनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है। वाक्य छोटे-छोटे, संयत और मार्मिक हैं। भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि उनको समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।
2. **गवेषणात्मक शैली**—इस शैली में शुक्ल जी ने नवीन खोजपूर्ण निबन्धों की रचना की है। आलोचनात्मक शैली की अपेक्षा यह शैली अधिक गंभीर और दुरूह है। इसमें भाषा क्लिष्ट है। वाक्य बड़े-बड़े हैं और महावरों का नितान्त अभाव है।
3. **भावात्मक शैली**—शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबन्ध भावात्मक शैली में लिखे गए हैं। यह शैली गद्य-काव्य का सा आनंद देती है। इस शैली की भाषा व्यावहारिक है। भावों की आवश्यकतानुसार छोटे और बड़े दोनों ही प्रकार के वाक्यों को अपनाया गया है। बहुत से वाक्य तो सूक्ति रूप में प्रयुक्त हुए हैं; जैसे-बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। इनके अतिरिक्त शुक्ल जी के निबन्धों में निगमन पद्धति, अलंकार योजना, तुकदार शब्द, हास्य-व्यंग्य, मूर्तिमत्ता आदि अन्य शैलीगत विशेषताएँ भी मिलती हैं।

प्र.3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

उत्तर

रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य में स्थान

शुक्ल जी शायद हिन्दी के पहले समीक्षक हैं जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया। उन्होंने 'भाव या रस' को काव्य की आत्मा माना है पर उनके विचार से काव्य का अंतिम लक्ष्य आनन्द नहीं बल्कि विभिन्न भावों के परिष्कार, प्रसार और सामंजस्य द्वारा लोकमंगल की प्रतिष्ठा है। उनकी दृष्टि से महान् काव्य वह है जिससे जीवन की क्रियाशीलता उजागर हुई हो। इसे उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था कहा है। शुक्ल जी की समस्त मौलिक विचारणा लोकजीवन के मूर्त आदर्शों से प्रतिबद्ध है। 'हमारे हृदय का सीधा लगाव प्रकृति के गोचर रूपों से है' इसलिए कवि का सबसे पहला और आवश्यक काम 'बिंबग्रहण' या 'चित्रानुभव' कराना है। पूर्ण विंबग्रहण के लिए वर्ण वस्तु की 'परिस्थिति' का चित्रण भी अपेक्षित होता है। इस प्रकार शुक्ल जी काव्य द्वारा जीवन के समग्र बोध पर बल देते हैं। जीवन में और काव्य में किसी तरह की एकांगिता उन्हें अभीष्ट नहीं।

शुक्ल जी की स्थापनाएँ शास्त्रबद्ध उतनी नहीं हैं जितनी मौलिक। उन्होंने अपनी लोकभावना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से काव्यशास्त्र का संस्कार किया। इस दृष्टि से वे आचार्य कोटि में आते हैं। काव्य में लोकमंगल की भावना शुक्ल जी की समीक्षा की शक्ति भी है और सीमा भी। उसकी शक्ति काव्यनिबद्ध जीवन के व्यावहारिक और व्यापक अर्थों के मार्मिक अनुसंधान में निहित है। परन्तु उनकी आलोचना का पूर्वनिश्चित नैतिक केंद्र उनकी साहित्यिक मूल्यचेतना को कई अवसरों पर सीमित भी कर देता है। उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि आलोच्य कवि की मनोगति की पहचान में अद्वितीय है। जायसी, सूर और तुलसी की समीक्षाओं द्वारा शुक्ल जी ने व्यावहारिक आलोचना का उच्च प्रतिमान प्रस्तुत किया। इनमें शुक्ल जी की काव्यमर्मज्ञता, जीवनविवेक, विद्वत्ता और विश्लेषणक्षमता का असाधारण प्रमाण मिलता है। काव्यगत संवेदनाओं की पहचान, उनके पारदर्शी विश्लेषण और यथातथ्य भाषा के द्वारा उन्हें पाठक तक संप्रेषित कर देने की उनमें अपूर्व सामर्थ्य है। इनके हिंदी साहित्य के इतिहास की समीक्षाओं में भी ये विशेषताएँ स्पष्ट हैं।

शुक्ल जी के मनोविकार सम्बन्धी निबन्ध परिणत प्रजा की उपज हैं। इनमें भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट किया गया है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है। भावों के अनुरूप ही मनुष्य का आचरण ढलता है-इस दृष्टि से शुक्ल जी ने उनकी सामाजिक अर्थवत्ता का मनोयोगपूर्वक अनुसंधान किया। उन्होंने मनोविकारों के निषेध का उपदेश देने वालों पर जबर्दस्त आक्रमण किया और मनोवेगों के परिष्कार पर जोर दिया। ये निबन्ध व्यावहारिक दृष्टि से पाठकों को अपने आपको और दूसरों को सही ढंग से समझने में मदद देते हैं तथा उन्हें सामाजिक दायित्व और मर्यादा का बोध कराते हैं। समाज का

TOUCH 'n PASS

संगठन और उन्नयन करने वाले आदर्शों में आस्था इन रचनाओं का मूल स्वर है। भावों को जीवन की परिचित स्थितियों से संबद्ध करके काव्य की दृष्टि से भी उनका प्रामाणिक निरूपण हुआ है।

अपने सर्वोत्तम रूप में शुक्ल जी का विवेचनात्मक गद्य पारदर्शी है। गहन विचारों को सुसंगत ढंग से स्पष्ट कर देने की उनमें असामान्य क्षमता है। उनके गद्य में आत्मविश्वासजन्य दृढ़ता की दीप्ति है। उसमें यथातथ्यता और संक्षिप्तता का विशिष्ट गुण पाया जाता है। शुक्ल जी की सूक्तियाँ अत्यंत अर्थभित होती हैं। उनके विवेचनात्मक गद्य ने हिंदी गद्य पर व्यापक प्रभाव डाला है। शुक्ल जी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी का गौरव ग्रंथ है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया कालविभाग, साहित्यिक धाराओं का सार्थक निरूपण तथा कवियों की विशेषताबोधक समीक्षा इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। शुक्ल जी की कविताओं में उनके प्रकृतिप्रेम और सावधान सामाजिक भावों द्वारा उनका देशानुराग व्यंजित है। इनके अनुवादग्रंथ भाषा पर इनके सहज आधिपत्य के साक्षी हैं। आचार्य शुक्ल बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उस पर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। आलोचना और निबन्ध के क्षेत्र में उनकी प्रतिष्ठा युग प्रवर्तक की है।

प्र.4. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की भाषा और शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की भाषा और शैली

द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव और विषय के अनुसार भाषा का चयनित प्रयोग किया है। उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं—प्रांजल व्यावहारिक भाषा, संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा। प्रथम रूप द्विवेदी जी के सामान्य निबन्धों में मिलता है। इस प्रकार की भाषा में उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी समावेश हुआ है। द्वितीय शैली उपन्यासों और सैद्धांतिक आलोचना के क्रम में परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की विषय प्रतिपादन की शैली अध्यापकीय है। शास्त्रीय भाषा रचने के दौरान भी प्रवाह खण्डित नहीं होता। द्विवेदी जी की रचनाओं में उनकी शैली के निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

1. **गवेषणात्मक शैली**—द्विवेदी जी के विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्ध इस शैली में लिखे गए हैं। यह शैली द्विवेदी जी की प्रतिनिधि शैली है। इस शैली की भाषा संस्कृत प्रधान और अधिक प्रांजल है। वाक्य कुछ बड़े-बड़े हैं। इस शैली का एक उदाहरण देखिए—'लोक और शास्त्र का समन्वय, ग्राहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, कथा और तत्व ज्ञान का समन्वय, ब्राह्मण और चांडाल का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय, रामचरित मानस शुरु से आखिर तक समन्वय का काव्य है।'
2. **वर्णनात्मक शैली**—द्विवेदी जी की वर्णनात्मक शैली अत्यंत स्वाभाविक एवं रोचक है। इस शैली में हिंदी के शब्दों की प्रधानता है, साथ ही संस्कृत के तत्सम और उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। वाक्य अपेक्षाकृत बड़े हैं।
3. **व्यंग्यात्मक शैली**—द्विवेदी जी के निबन्धों में व्यंग्यात्मक शैली का बहुत ही सफल और सुंदर प्रयोग हुआ है।। इस शैली में भाषा चलती हुई तथा उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग मिलता है।
4. **व्यास शैली**—द्विवेदी जी ने जहाँ अपने विषय को विस्तारपूर्वक समझाया है, वहाँ उन्होंने व्यास शैली को अपनाया है। इस शैली के अंतर्गत वे विषय का प्रतिपादन व्याख्यात्मक ढंग से करते हैं और अंत में उसका सार दे देते हैं।

प्र.5. कुबेरनाथ राय के जीवन व साहित्य परिचय देते हुए उनकी भाषा-शैली पर लेख लिखिए।

उत्तर

कुबेरनाथ राय : जीवन परिचय

कुबेरनाथ राय का जन्म 26 मार्च, 1933 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के मतसाँ ग्राम में हुआ। उनके पिताजी का नाम बैकुण्ठ नारायण राय एवं माताजी का नाम लक्ष्मी राय था। उन्होंने क्विंस कालेज, (वाराणसी), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, (वाराणसी) और कलकत्ता विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। उनकी पत्नी का नाम महारानी देवी था। अपने सेवाकाल के आरम्भ में उन्होंने विक्रम विद्यालय कोलकाता में अध्यापन किया। उसके बाद सन् 1959 में वे नलबारी कॉलेज, नलबारी, असम में अध्यापक नियुक्त हुए। यहाँ उन्होंने 28 वर्ष तक सेवा दी। नौकरी के अन्तिम वर्षों में असम में अशांति होने के कारण उन्हें गाजीपुर लौट आना पड़ा और सहजानन्द महाविद्यालय, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश में प्राचार्य रहे।

साहित्यिक परिचय

हिन्दी के साहित्यिक परिदृश्य में कुबेरनाथ राय की पहचान एक ऐसे ललित निबन्धकार की है जिसकी चेतना का विकास परम्परा और आधुनिकता के समवाय से हुआ है। अपने निबन्धों में वे भारतीय आर्ष-चिन्तन एवं विश्व-चिन्तन की विभिन्न सारणियों को परस्पर समन्वित रूप में व्यक्त करते हैं। उस प्रक्रिया में वे विचारों और तथ्यों का यथातथ्य प्रस्तुतीकरण नहीं करते, प्रत्युत, विवेचन

TOUCH 'n' PASS

एवं विश्लेषण के साथ ही उसकी उपादेयता की भी परख करते हैं जिसके दो आधार हैं-वर्तमान के सन्दर्भ में प्रासंगिकता और भारतीय मनोरचना के साथ संगति। उनकी दृष्टि में अकेले-अकेले प्रासंगिकता की बात करना बेईमानी है क्योंकि वे अपने साहित्य का उद्देश्य 'हिन्दुस्तानी मन को विश्व-चित्त से जोड़ना' और 'पाठकों की चित्त-ऋद्धि का विस्तार' कर उसे 'भव्यता प्रदान करना' मानते हैं और ऐसे में 'हिन्दुस्तानी मन' अर्थात् भारतीय मनोरचना का केन्द्रीय भूमिका में आ खड़ा होना स्वाभाविक ही है। कुबेरनाथ राय का पहला ललित निबन्ध हेमन्त की संध्या धर्मयुग के 15 मार्च, 1964 के अंक में प्रकाशित हुआ। यह उनकी पहली कृति प्रिया नीलकंठी का पहला निबन्ध है। इसी निबन्ध-संग्रह में उनका एक निबन्ध संपाती के बेटे भी संग्रहीत है।

निबन्ध संग्रह—प्रिया नीलकंठी, गंधमादन, रस आखेटक, विषाद योग, निषाद बाँसुरी, पर्ण मुकुट, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु, मराल, अगम की नाव, रामायण महातीर्थम्, चिन्मय भारत आर्ष चिंतन के बुनियादी सूत्र, किरात नदी में चन्द्रमधु, दृष्टि अभिसार, वाणी का क्षीरसागर, उत्तरकुरु। कविता संग्रह-कंठमणि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1998।

अन्य—पुनर्जागरण का अंतिम शलाका पुरुष: स्वामी सहजानंद सरस्वती।

भाषा और शैली

कुबेरनाथ राय की भाषा विषयानुकूल है। माधुर्य और ओज का सम्मिश्रण उक्ति वैचित्रय इतिहास, पुराण के नूतन संदर्भ प्रतीकात्मकता और चित्रात्मकता उनकी भाषा शैली की निजी विशेषताएँ हैं। तत्सम शब्दों की प्रधानता होते हुए भी उनकी रचनाओं में उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, देशज एवं तद्भव शब्दों का यथास्थान प्रयोग किया गया है। कुबेरनाथ राय लेखन में बोलचाल की भाषा के समर्थक हैं परन्तु तभी तक जब तक कि वह विचारों को वहन करने में सक्षम हो यथा- "मैं शत प्रतिशत मानता हूँ कि लेखन में बोलचाल की भाषा का प्रयोग लेखन को स्वस्थ और सबल बनाता है।"

कुबेरनाथ राय की लेखन शैली अत्यंत लालित्यपूर्ण और रोचक है। उन्होंने पौराणिक आख्यानों पर निबन्ध लिखें हैं। छोटे-छोटे सरस वाक्यों के द्वारा वे अपनी बात कहते हैं और भाषा को जटिल अथवा बोझिल नहीं होने देते हैं। उनकी प्रवाहपूर्ण काव्यमयी भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है—"संस्कृत कूप जल मात्र नहीं। उसकी भूमिका विस्तृत और विशाल है। वह भाषा नदी को जल से सनाथ करने वाला पावस मेघ है, वह परम पद का तुहिन व्योम है, वह हिमालय के हृदय का ग्लेशियर अर्थात् हिमवाह है। जब हिमवाह लगता है तभी बहते नीर वाली नदी में जीवन संचार होता है।"

प्र.6. डॉ० विद्यानिवास मिश्र की भाषा-शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

विद्यानिवास मिश्र की भाषा शैली

मिश्रजी की भाषा शुद्ध, परिमार्जित, साहित्यिक एवं प्रवाहयुक्त है। इन्होंने आंचलिक भाषाओं का भी अपनी कृतियों में यथास्थान प्रयोग किया है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है। मुहावरे एवं सूक्तियों के प्रयोग से भाषा में गति आ गई है। मिश्रजी ने विवरणात्मक, आत्माभिव्यंजक, भावात्मक, व्याख्यात्मक शैलियों को अपनाया है और विषय-वस्तु को सुबोध बना दिया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् के हिन्दी रचनाकारों में विद्यानिवासजी का साहित्य में स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। परिवेश, वातावरण या परिस्थितियों के विश्लेषण के लिये जब हम पं० विद्यानिवास मिश्र जी के ललित निबन्धों पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि उनके निबन्धों में जिस वातावरण की सृष्टि हुई है, वह दो दिशाओं में जाती है, एक—भारतीय संस्कृति, परम्परा व लोक तथा ग्रामीण संस्कृति से ओत-प्रोत जीवन्त, सरस, सहज जीवन का परिदृश्य, दूसरा-समसामयिक जीवन की विसंगतियों, आधुनिक तकनीकी, यांत्रिकता, भौतिकता की करुण नियति से उत्पन्न जीवन की नीरसता, शुष्कता, कृत्रिमता, यंत्रबद्धता, खोखलेपन व नकलीपन की त्रासदी से युक्त शहरी जीवन का यथार्थ चित्र। इस प्रकार इनके निबन्धों में एक तरफ यदि भारतीय संस्कृति तथा लोक संस्कृति का गौरव एवं वैभव छिटका है, तो दूसरी तरफ आधुनिकता की चकाचौंध व बनावटीपन से युक्त रिक्तता से भरे शहरी जीवन का चित्र देखने को मिलता है। किन्तु ध्यातव्य है कि सर्वत्र भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि तथा परिप्रेक्ष्य में ही लेखक आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उभारता है या कहिए सांस्कृतिक संदर्भ में आधुनिक परिवेश मिश्रजी के निबन्धों में उजागर हुआ है। वस्तुत: मिश्रजी के निबन्धों में 'कसक का कारण है जन-जीवन में धीरे-धीरे शहरी मनोवृत्ति का विकास। शहरी मनोवृत्ति सहज संस्कृति को संकुचित करती है। संस्कृति की इस संकुचन-प्रक्रिया में मनुष्य का भौतिक (बाह्य) जीवन सुख-सुविधा-समृद्ध अवश्य हो जाता है, किन्तु उससे आत्मिक (अन्त:) जीवन की सजीवता, सहजता, पारस्परिक सौहार्द, माधुर्य, सरसता, आनंद-स्फूर्ति, प्रकृति, सौन्दर्य, सावनी हरीतिमा, वासन्ती, उल्लास, फागुनी अल्हड़ता आदि सब ठिठुरते जाते हैं। अत: समृद्ध स्वस्थ, सहज जीवन के लिए लोक-भावना की संस्कृति या लोक-संस्कृति चाहिए।

KUSHI PASS

प्र.7. डॉ० विद्यानिवास मिश्र के जीवन व साहित्य परिचय पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

डॉ० विद्यानिवास मिश्र : जीवन परिचय

डॉ० विद्यानिवास मिश्र हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार, सफल सम्पादक, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान और जाने-माने भाषाविद् थे। हिन्दी साहित्य को अपने ललित निबन्धों और लोक जीवन की सुगंध से सुवासित करने वाले विद्यानिवास मिश्र ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने आधुनिक विचारों को पारंपरिक सोच में खपाया था। साहित्य समीक्षकों के अनुसार संस्कृत मर्मज्ञ मिश्र जी ने हिन्दी में सदैव आँचलिक बोलियों के शब्दों को महत्व दिया। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार—"हिन्दी में यदि आँचलिक बोलियों के शब्दों को प्रोत्साहन दिया जाये तो दुरूह राजभाषा से बचा जा सकता है, जो बेहद संस्कृतनिष्ठ है।" मिश्रजी के अभूतपूर्व योगदान के लिए ही भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' से भी सम्मानित किया था।

पं० विद्यानिवास मिश्र का जन्म 28 जनवरी 1925 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के पकड़डीहा गाँव में हुआ था। वाराणसी और गोरखपुर में शिक्षा प्राप्त करने वाले मिश्रजी ने गोरखपुर विश्वविद्यालय से वर्ष 1960-61 में 'पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण पद्धति' पर डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की थी। लगभग दस वर्षों तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रेडियो, विन्ध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के सूचना विभागों में नौकरी के बाद आप गोरखपुर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। कुछ समय के लिए मिश्रजी अमेरिका गये, वहाँ कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य एवं तुलनात्मक भाषा विज्ञान का अध्यापन किया एवं वाशिंगटन विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य का अध्यापन किया। इन्होंने 'वाणरासेय संस्कृत विश्वविद्यालय' में भाषा विज्ञान एवं आधुनिक भाषा विज्ञान के आचार्य एवं अध्यक्ष पद पर भी कार्य किया। साहित्यिक सफलताओं के कारण इन्हें राज्यसभा सासंद नियुक्त किया गया था। उनकी सफलताओं, त्याग तथा ईमानदारी के लिए पद्म भूषण सम्मान से भी विभूषित किया। मिश्रजी 'भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी बोर्ड के सदस्य थे और मूर्ति देवी पुरस्कार चयन समिति के अध्यक्ष भी रहे।

संस्कृत के प्रकांड विद्वान, जाने-माने भाषाविद्, हिन्दी साहित्यकार और सफल सम्पादक (नवभारत टाइम्स) थे। उन्हें सन 1999 में भारत सरकार ने साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्मभूषण से सम्मानित किया था। हिन्दी साहित्य के सर्जक विद्यानिवास मिश्र ने साहित्य की ललित निबन्ध की विधा को नए आयाम दिए। हिन्दी में ललित निबन्ध की विधा की शुरुआत प्रताप नारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने की थी, किंतु इसे ललित निबन्धों का पूर्वाभास कहना ही उचित होगा। ललित निबन्ध की विधा के लोकप्रिय नामों की बात करें तो हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय आदि चर्चित नाम रहे हैं।

ललित निबन्ध परम्परा में ये आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और कुबेरनाथ राय के साथ मिलकर मिश्र जी एक त्रयी रचते हैं। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद अगर कोई हिन्दी साहित्यकार ललित निबन्धों को वांछित ऊँचाइयों पर ले गया तो हिन्दी जगत में डॉ० विद्यानिवास मिश्र की ही चर्चा होती है। इनकी विद्वता से हिन्दी जगत का कोना-कोना परिचित है। इन्होंने अमेरिका के बर्कले विश्वविद्यालय में भी शोध कार्य किया था तथा वर्ष 1967-68 में वाशिंगटन विश्वविद्यालय में अध्येता रहे थे। मध्य प्रदेश में भी सेवारत रहे कुछ समय के लिए। मध्यप्रदेश में सूचना विभाग में कार्यरत रहने के बाद वे अध्यापन के क्षेत्र में आ गए। वे 1968 से 1977 तक वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे। कुछ वर्ष बाद वे इसी विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। उनकी उपलब्धियों की लंबी शृंखला है। लेकिन वे हमेशा अपनी कोमल भावाभिव्यक्ति के कारण सराहे गए हैं। उनके ललित निबन्धों की महक साहित्य-जगत में सदैव बनी रहेगी। विद्यानिवास मिश्र का 14 फरवरी, 2005 को सड़क दुर्घटना में देहांत हो गया। उस वर्ष उनका प्रिय पर्व वसंत पंचमी 13 फरवरी को था। वसंत ऋतु में ही वे अपना शरीर त्यागकर इहलोक की यात्रा पर निकल पड़े। पं० विद्यानिवास मिश्र के इस दुनिया से जाने के बाद भी उनकी पत्रकारिता और साहित्य की सौरभ इस रचनाशील जगत को महकाती रहेगी।

साहित्यिक परिचय

विद्यानिवास मिश्र हिन्दी के एक प्रतिष्ठित आलोचक एवं ललित निबन्ध लेखक हैं, साहित्य की इन दोनों ही विधाओं में आपका कोई विकल्प नहीं हैं। निबन्ध के क्षेत्र में मिश्र जी का योगदान सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जाएगा। विद्यानिवास मिश्र की हिन्दी और अंग्रेजी में दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इसमें 'महाभारत का काव्यार्थ' और 'भारतीय भाषा-दर्शन की पीठिका' प्रमुख हैं। ललित निबन्धों में 'तुम चंदन हम पानी', 'वसंत आ गया' और शोधग्रन्थों में 'हिन्दी की शब्द संपदा' चर्चित कृतियाँ हैं।

TOUCH 'n PASS

निबन्ध—लोक संस्कृति और लोक मानस उनके ललित निबन्धों के अभिन्न अंग थे, उस पर भी पौराणिक कथाओं और उपदेशों की फुहार उनके ललित निबन्धों को और अधिक प्रवाहमय बना देते थे। मिश्र जी के प्रमुख निबन्ध हैं—'राधा माधव रंग रंगी', 'शैफाली झर रही है', 'छितवन की छांह', 'बंजारा मन', 'तुम चंदन हम पानी', 'महाभारत का काव्यार्थ', 'भ्रमरानंद के पत्र', 'वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', 'साहित्य का खुला आकाश', 'आँगन का पंछी और बनजारा', 'मैंने सिल पहुँचाई', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है'।

संस्मरण—अमरकंटक की सालती स्मृति।

आलोचना—साहित्य की चेतना, मॉडर्न हिन्दी पोइट्री। इनके अतिरिक्त हिन्दी की शब्द सम्पदा, रीति-विज्ञान, महाभारत का यथार्थ, भारतीय भाषा-दर्शन आपकी अप्रतिम रचनाएँ हैं।

प्र.8. डॉ० विद्यानिवास मिश्र का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

उत्तर

डॉ० विद्यानिवास मिश्र का साहित्य में स्थान

मिश्रजी लोक संस्कृति के ही संवादक है। इसीलिये मिश्रजी के निबन्धों का विश्लेषण करते समय हम पाते हैं कि वर्तमान आधुनिक परिवेश तथा सामान्य दैनन्दिन जीवन की समस्याओं, घटनाओं, विसंगतियों को तीव्रता से दर्शाने के लिए वे भव्य अतीत की उच्च कोटि की श्रेष्ठ व मंगलमयी परंपरा, भारतीय संस्कृति की दिव्य कल्याणकारी दृष्टि तथा लोक संस्कृति व ग्रामीण जगत की जीवन्तता, सजीवता, सहजता व सरसता का स्मरण स्थान-स्थान पर करते चलते हैं। फलतः भारतीय संस्कृति का दृश्य, लोक जीवन का सहज चित्र, परम्परागत उत्सव, पर्व, रीति रिवाजों का चित्रण निबन्धों में यत्र-तत्र सर्वत्र सहज ही प्राप्य है। 'उनके निबन्धों में यह लोक संस्कृति कई रूपों में अपनी सुबास छोड़ जाती है। टटके अछूते लोक गीतों के रूप में, व्रत उपवास, तीज-त्योहारों पर प्रचलित, लौकिक व्यवहारों और क्रिया-कलापों की मधुर स्मृतियों के रूप में, शादी-ब्याह, मुंडन, जनेऊ आदि के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों के पीछे छिपी प्राचीन परम्परा की ठेठ देहाती धरोहर को सजाने-संवारने, उनके रख-रखाव की चिन्ता की अभिव्यक्ति के रूप में, यह लोक संस्कृति उनके व्यक्तित्व का एक अविभाज्य अंग बनकर सामने आती है।' यद्यपि वे सर्वत्र लोक जीवन, संस्कृति के अंध पक्षों से बचकर चलते हैं।

मिश्रजी के निबन्धों में पारिभाषिक, नवीन गढ़े हुए शब्द, देशज-लोक शब्दावली, ध्वन्यात्मक शब्दावली, विदेशी शब्दों का निर्बन्ध प्रयोग हिन्दी के शब्द भंडार में श्रीवृद्धि करता है। इनकी भाषा में भोजपुरी संस्कारिता, राप्ती की प्रखरधारा, हिमालय की तलहटी में रहने वाले व्यक्तित्व के उत्तुंग शृंग और संस्कृत में पले एक खांटी ब्राह्मण की वदान्यता से पुष्ट वैदुष्य और सबके ऊपर एक आधुनिक बुद्धिजीवी की अपने ही भीतर के देवता और दैत्य से निरन्तर युद्धरत रहने की सरगर्मी भी मिलेगी। लोकगीतों की पंक्तियाँ मिश्रजी के निबन्धों में विशेष रूप से देखने को मिलेगी। संस्कृत काव्यों के विभिन्न उद्धरण व दृष्टांत तथा अनेक आख्यान, प्रसंगों, मिथकों द्वारा मिश्रजी की उद्धरण प्रमाणिकता तथा संदर्भ गर्भिता का परिचय मिलता है। पौराणिक मिथक, संदर्भ तथा कथाएँ मिश्रजी के निबन्धों को समृद्ध करते हैं तथा अभिव्यक्ति को गूढ़ भावव्यंजनापूर्ण बनाते हैं।

उल्लेखनीय है कि मिश्रजी के ललित निबन्धों में समाज की राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक, साहित्यिक, भाषागत, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों का खुला चित्रण हुआ है। यही नहीं आंचलिकता व शहरी प्रभावग्रस्त ग्रामीण परिवेश के साथ-साथ प्रकृति-प्रेम व प्रकृति श्री का सौम्य दर्शन व उसके माध्यम से गूढ़ संदेश भी निबन्धों में संलग्नीय है।

प्राचीन भव्य परम्परा व संस्कृति के साथ-साथ समसामयिक आधुनिक जीवन की अमिट छाप उनके निबन्धों में मिलेगी। लेखक की बाद की रचनाओं में तो परिवेश का दर्द आधुनिकीकरण की विसंगतियाँ तीव्र रूप से उत्पन्न हुई हैं। युग के प्रत्येक उतार-चढ़ाव समस्याओं व घटनाओं की संवेदना के साथ उनका निबन्धकार जुड़ता है। उनका प्रत्येक निबन्ध संस्कृति का उदात्त पक्ष या आधुनिक परिवेश का दृश्य उसका दर्द सम्मुख लाता है। संस्कृति व समाज दोनों उनके व्यक्तित्व में एकाकार होकर निबन्ध में उभरे हैं। इसीलिए ग्राम्यजीवन का सुकुमार वातावरण तथा शहरी परिवेश, परंपरा व आधुनिक जीवन, प्राचीन व नवीन परिवेश की सशक्त अभिव्यक्ति उनके निबन्धों में हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश, विश्व की स्थिति, युद्ध व शांति की स्थिति, विश्व मंगल में बाधक परिस्थितियों को भी निबन्ध में मुखर स्वर प्राप्त हुआ है। परिवेश की विसंगतियों के प्रति एक आकुलभाव, छटपटाहट और पीड़ा निबन्ध में सर्वत्र दर्शित है। इस प्रकार लेखक परिवेश के साथ अपने निबन्धकार को जोड़कर उसमें डूबकर उसे अपने निबन्धों में मुखरित करता है।

TOUCH 'n PASS

पत्रकारीय धर्म और उसकी सीमाओं को लेकर वे सदैव सचेत रहते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि—"मीडिया का काम नायकों का बखान करना अवश्य है, लेकिन नायक बनाना मीडिया का काम नहीं है।" अपने पत्रकारीय जीवन में भी विद्यानिवास मिश्र हिंदी के प्रति आग्रही बने रहे। वे अंग्रेजी के विद्वान थे, लेकिन हिंदी लिखते समय अंग्रेजी के शब्दों का घालमेल उन्हें पसंद नहीं था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन-परिचय और रचनाएँ लिखते हुए उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : जीवन परिचय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता गोपालचन्द्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। 5 वर्ष की आयु में इनकी माता तथा 10 वर्ष की आयु में पिता की मृत्यु हो गई। इस प्रकार ये बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्तित्व होने के कारण उनमें स्वतन्त्र रूप से सोचने-समझने की दृष्टि का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु और पद्धति से इनका मन उखड़ता रहा। फिर भी इन्होंने क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ भी मन नहीं लगा। स्मरण शक्ति तीव्र तथा ग्रहण क्षमता अद्‌भुत थी। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक-राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगाली, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं। भारतेन्दु को काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया—

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेना को हनन लगे भगवान॥

भारतेन्दु का कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोये। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। ये भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण को अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया। भारतेन्दु जी का निधन 6 जनवरी, सन् 1885 ई० को चौंतीस वर्ष चार महीने की अल्पायु में ही हो गया था।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने नाटक, काव्य, निबन्ध, उपन्यास, कहानी आदि साहित्य की तत्कालीन प्रचलित सभी विधाओं में महत्त्वपूर्ण रचनाएँ कीं। किन्तु नाटकों के क्षेत्र में इनकी देन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनकी कृतियों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

नाटक—भारतेन्दु जी ने मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है, जिनकी कुल संख्या 17 है—
मौलिक नाटक—सत्य हरिश्चन्द्र, श्री चन्द्रावली, नीलदेवी, भारत दुर्दशा, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, सती प्रताप, अँधेर नगरी, विषस्य विषमौषधम् तथा प्रेम-जोगिनी।
अनूदित नाटक—मुद्राराक्षस, रत्नावली नाटिका, कर्पूरमंजरी, विद्यासुन्दर, पाखण्ड विडम्बन, धनंजय विजय, भारत जननी तथा दुर्लभ बन्धु।
निबन्ध-संग्रह—नाटक, लेवी प्राण लेवी, भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है?, हिन्दी भाषा, स्वर्ग में विचार सभा आदि।
इतिहास—अग्रवालों की उत्पत्ति, महाराष्ट्र देश का इतिहास तथा कश्मीर-कुसुम।
कविता-संग्रह—भक्त सर्वस्व, प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, सतसई सिंगार, प्रेम प्रलाप, प्रेम फुलवारी, भारत-वीणा आदि।
यात्रा वृत्तान्त—सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि।
जीवनी—सूरदास, जयदेव, महात्मा मुहम्मद आदि।

TOUCH 'n PASS

भारतेन्दु की भाषा और शैली

भाषागत विशेषताएँ—भाषा समूची युग-चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। यही कारण है कि भारतेन्दु जी ने काव्य में परम्परागत ब्रज भाषा का प्रयोग किया, परन्तु गद्य के लिए इन्होंने खड़ी बोली को ही अपनाया। भारतेन्दु जी से पूर्व हिन्दी गद्य का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था तथा गद्य के लिए दो प्रकार की भाषा का प्रयोग हो रहा था। एक ओर उर्दू-फारसी मिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग तो दूसरी ओर संस्कृत की तत्सम शब्दावली से युक्त खड़ी बोली। भारतेन्दु जी ने दोनों प्रकार की भाषा को समन्वित प्रयोग कर भाषा को सरल और व्यावहारिक रूप प्रदान किया। इन्होंने अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों के साथ-साथ, संस्कृत के तत्सम शब्दों, साधारण प्रयोग में आने वाले तद्भव और देशी शब्दों का प्रयोग करके खड़ी बोली हिन्दी का स्वरूप प्रतिष्ठित किया। इनकी इस भाषा को समकालीन लेखकों ने सहर्ष स्वीकार भी किया। भाषा को सजीव रूप प्रदान करने और उसमें प्रवाह एवं ओज उत्पन्न करने के लिए इन्होंने सुन्दर लोकोक्तियों और मुहावरों का सटीक प्रयोग किया। यद्यपि भारतेन्दु जी की भाषा में व्याकरण की दृष्टि से कतिपय दोष दिखाई देते हैं क्योंकि इनके युग में खड़ी बोली का व्याकरण-सम्मत निश्चित स्वरूप नहीं था; तथापि इनकी भाषा सरल, सुबोध, सुमधुर, व्यावहारिक, भावानुगामिनी एवं सशक्त है।

शैलीगत विशेषताएँ—भाव और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा और अभिव्यक्ति का ढंग शैली कहलाती है। भारतेन्दु जी की रचनाओं में हमें विषयानुरूप शैली के अनेक रूप दिखाई देते हैं। ये अपनी शैली के स्वयं निर्माता थे। इनकी शैली पर इनके सहज और उदार व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इनकी शैली के प्रमुख रूप निम्नलिखित हैं—

वर्णनात्मक शैली—किसी वस्तु का वर्णन करते समय अथवा परिचय देते समय भारतेन्दु जी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में वर्णन की प्रधानता होती है। इसमें भारतेन्दु जी ने सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग किया है। इस शैली में वाक्य छोटे और व्यवस्थित हैं।

भावात्मक शैली—भाषा के वेग और तीव्रता को प्रकट करने के लिए भारतेन्दु जी ने भावात्मक शैली को अपनाया है। इसमें वाक्य छोटे और गठे हुए हैं। इस शैली में प्रवाह, ओज तथा कोमल शब्दावली के प्रयोग से विशेष माधुर्य आ गया है।

विवेचनात्मक शैली—साहित्य, इतिहास, राजनीति आदि विषयों पर लिखते समय भारतेन्दु जी उनका गम्भीर विवेचन भी करते हैं। इस शैली में इनकी भाषा तत्सम शब्दों से युक्त, गम्भीर और प्रौढ़ है।

हास्य-व्यंग्यात्मक शैली—भारतेन्दु जी ने सामाजिक कुरीतियों, पाखण्डों तथा अंग्रेजी शासकों पर अत्यन्त तीखे व्यंग्य किये हैं। इस शैली में सजीवता और चुटीलापन है।

गवेषणात्मक शैली—भारतेन्दु जी ने इस शैली का प्रयोग ऐतिहासिक और साहित्यिक निबन्धों में किया है। इसमें इन्होंने नये-नये तथ्यों की खोज की है। साहित्यिक निबन्धों में शैली का प्रयोग करते समय संस्कृत के तत्सम शब्दों का तथा कुछ बड़े-बड़े वाक्यों का प्रयोग किया गया है।

विवरणात्मक शैली—जहाँ पर गति के साथ किसी विषय के वर्णन की आवश्यकता महसूस हुई है, वहाँ पर भारतेन्दु जी ने इस शैली का प्रयोग किया है। 'सरयूपार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' आदि यात्रा-वृत्तान्त इस शैली के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

विचारात्मक शैली—भारतेन्दु जी ने गम्भीर विषयों के विवेचन में इस शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। 'वैष्णवता और भारतवर्ष', 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' इत्यादि निबन्ध इनकी इस शैली के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने स्रोत शैली, प्रदर्शन शैली, शोध शैली, कथा शैली और भाषण शैली को भी बड़ी कुशलता के साथ अपनाया है।

प्र.2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्ध 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' का वर्णन कीजिए।

उत्तर

निबन्ध: भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है?

आज बड़े आनन्द का दिन है कि छोटे से नगर बलिया में हम इतने मनुष्यों को एक बड़े उत्साह से एक स्थान पर देखते हैं। इस अभागे आलसी देश में जो कुछ हो जाए वही बहुत है। हमारे हिन्दुस्तानी लोग तो रेल की गाड़ी हैं। यद्यपि फर्स्ट क्लास, सेकेण्ड क्लास आदि गाड़ी बहुत अच्छी-अच्छी और बड़े-बड़े महसूल की इस ट्रेन में लगी हैं पर बिना इंजन सब नहीं चल सकतीं, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो ये क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए 'का चुप साधि रहा बलवाना' फिर देखिए हनुमान जी को अपना बल कैसे याद आता है। सो बल कौन याद दिलावे। या हिन्दुस्तानी राजे-महाराजे, नवाब, रईस या हाकम। राजे-महाराजों को अपनी पूजा, भोजन, झूठी गप से छुट्टी नहीं। हाकिमों को कुछ तो सरकारी काम घेरे रहता है, कुछ बाल घुड़दौड़ थियेटर में समय लगा। कुछ समय बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब गन्दे काले आदमियों से मिलकर अपना अनमोल समय खोवें। बस वही मसल रही। 'तुम्हें गैरों से कब फुरसत हम अपने गम से कब खाली।

TOUCH 'n PASS

चलो बस हो चुका मिलना न हम खाली न तुम खाली।''

पहले भी जब आर्य लोग हिन्दुस्तान में आकर बसे थे, राजा और ब्राह्मणों के जिम्मे यह काम था कि देश में नाना प्रकार की विद्या और नीति फैलावें और अब भी ये लोग चाहें तो हिन्दुस्तान प्रतिदिन क्या प्रतिछिन बढ़े। पर इन्हीं लोगों को निकम्मेपन ने घेर रखा है। हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नलियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है, उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है। जब आज इस काल में हम लोगों को अंग्रेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन, अंग्रेज, फ्रांसीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए, जापानी टट्टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जाएगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए। मुझको मेरे मित्रों ने कहा था कि तुम इस विषय पर कुछ कहो कि हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो सकती है। भला इस विषय पर मैं और क्या कहूँ? भागवत में एक श्लोक है, 'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारं मयाऽनुकूलेन नभ: स्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।'' भगवान् कहते हैं कि पहले तो मनुष्य-जन्म ही बड़ा दुर्लभ है सो मिला और उस पर गुरु की कृपा और उस पर मेरी अनुकूलता इतना सामान पाकर भी जो मनुष्य इस संसार सागर के पार न जाए उसको आत्महत्यारा कहना चाहिए। वही दशा इस समय हिन्दुस्तान की है।

बहुत लोग यह कहेंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती है बाबा हम क्या उन्नति करें। तुम्हारा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंग्लैण्ड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से अपना पेट भरा दूसरे हाथ से उन्नति के काँटों को साफ किया, क्या इंग्लैण्ड में किसान खेतवाले, गाड़ीवाले, गाड़ीवान, मजदूर, कोचवान आदि नहीं हैं? किसी भी देश में सभी पेट भरे हुए नहीं होते। किन्तु वे लोग जहाँ खेत जोते-बोते हैं वहीं उसके साथ यह भी सोचते हैं कि ऐसी कौन नयी कल या मसाला बनावें जिसमें इस खेत में आगे से दुगुना अन्न उपजे। विलायत में गाड़ी के कोचवान भी अखबार पढ़ते हैं। जब मालिक उतरकर किसी दोस्त के यहाँ गया उसी समय कोचवान ने गद्दी के नीचे से अखबार निकाला। यहाँ उतनी देर कोचवान हुक्का पियेगा व गप्प करेगा। सो गप्प भी निकम्मी। 'वहाँ के लोग गप्प में ही देश के प्रबन्ध छाँटते हैं।' सिद्धान्त यह है कि वहाँ के लोगों को यह सिद्धान्त है कि एक छिन भी व्यर्थ न जाए। उसके बदले यहाँ के लोगों को जितना निकम्मापन हो उतना ही वह बड़ा अमीर समझा जाता है, आलस यहाँ इतना बढ़ गया है कि मलूकदास ने दोहा ही बना डाला—''अजगर करे न चाकरी पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गये सबके दाता राम।'' चारों ओर आँख उठाकर देखिए तो बिना काम करने वालों की ही चारों ओर बढ़ती है, रोजगार कहीं कुछ भी नहीं। चारों ओर दरिद्रता की आग लगी हुई है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि दरिद्र कुटुम्बी इस तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती बहू फटे कपड़ों में अपने अंग को छिपाये जाती है। वही दशा हिन्दुस्तान की है। मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन-दिन यहाँ बढ़ते जाते हैं और रुपया दिन-दिन कमती होता जाता है। सो अब बिना ऐसा उपाय किये काम नहीं चलेगा कि रुपया भी बढ़े और वह रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ेगा। भाइयों राजा-महाराजाओं का मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप कमर कसो, आलस छोड़ो, कब तक अपने को जंगली, हूस, मूर्ख, बोदे, डरपोक पुकरवाओगे। दौड़ों इस घुड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं। 'फिर कब राम जनकपुर ऐहैं' अबकि पीछे पड़े तो फिर रसातल ही पहुँचोगे। अब भी तुम लोग अपने को न सुधारो तो तुम्हीं रहो और वह सुधरना ऐसा भी होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो। धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में, रोजगार में, शिष्टाचार में, चालचलन में, शरीर में, बल में, समाज में, युवा में, वृद्ध में, स्त्री में, पुरुष में, अमीर में, गरीब में, भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश में उन्नति करो। सब ऐसी बातों को छोड़ो जो तुम्हारे इस पथ के कंटक हों। चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहें या नंगा कहें, कृस्तान कहें या भ्रष्ट कहें, तुम केवल अपने देश की दीन दशा को देखो और उनकी बात मत सुनो। 'अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठत: स्वकार्यं साधयेत् धीमान् कार्यध्वंसो हि मूर्खता।' जो लोग अपने को देश हितैषी मानते हों वह अपने सुख को होम करके धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो। देखा-देखी थोड़े दिन में सब हो जायेगा। अपनी खराबियों के मूल कारणों को खोजो। कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई

सुख की आड़ में छिपे हैं। उन चोरों को वहाँ से पकड़कर लाओ। उनको बांधकर कैद करो। इस समय जो जो बातें तुम्हारी उन्नति पथ की काँटा हों, उनकी जड़ खोदकर फेंक दो। अब यह प्रश्न होगा कि भाई हम तो जानते ही नहीं कि उन्नति और सुधारना किस चिड़िया का नाम है? किसको अच्छा समझें। क्या लें क्या छोड़ें? तो कुछ बातें जो इस शीघ्रता से मेरे ध्यान में आती हैं उनको मैं कहता हूँ, सुनो—

सब उन्नतियों का मूल धर्म है। इससे सबसे पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अंग्रेजों की धर्मनीति राजनीति परस्पर मिली है इससे उनकी दिन दिन कैसी उन्नति है। उनको जाने दो, अपने ही यहाँ देखो। तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति समाज-गठन वैद्यक आदि भरे हुए हैं। दो एक मिसाल सुनो। यहीं तुम्हारा बलिया का मेला और यहाँ स्थान क्यों बनाया गया है। जिसमें जो लोग कभी आपस में नहीं मिलते दस-दस, पाँच-पाँच कोस से वे लोग एक जगह एकत्र होकर आपस में मिलें। एक-दूसरे का दु:ख-सुख जानें। गृहस्थी के काम की वह चीजें जो गाँव में नहीं मिलती यहाँ से ले जाए। एकादशी का व्रत क्यों रखा है? जिसमें महीने में दो उपवास से शरीर शुद्ध हो जाए। गंगा जी नहाने जाते हैं तो पहले पानी सिर पर चढ़ाकर तब पैर पर डालने का विधान क्यों है? जिसमें तलुए से गरमी सिर में चढ़कर विकार न उत्पन्न करे। दीवाली इस हेतु है कि इसी बहाने साल भर में एक बेर तो सफाई हो जाये। होली इसी हेतु है कि बसंत की बिगड़ी हवा स्थान-स्थान पर अग्नि जलने से स्वच्छ हो जाए। यही तिहवार ही तुम्हारी म्युनिसिपालिटी है। ऐसे सब पर्व, सब तीर्थव्रत आदि में कोई हिकमत है। उन लोगों ने धर्मनीति और समाजनीति को दूध पानी की भाँति मिला दिया हैं। खराबी जो बीच में भई है वह यह है कि उन लोगों ने यह धर्म क्यों मान लिए थे इसका लोगों ने मतलब नहीं समझा और इन बातों को वास्तविक धर्म मान लिया। भाइयों, वास्तविक धर्म तो केवल परमेश्वर के चरण कमल का भजन है।

ये सब तो समाज धर्म हैं। जो देश काल के अनुसार शोधें और बदले जा सकते हैं। दूसरी खराबी यह हुई है कि उन्हीं महात्मा बुद्धिमान ऋषियों के वंश के लोगों ने अपने बाप दादों का मतलब न समझकर बहुत से नये-नये धर्म बनाकर शास्त्रों में धर दिये। बस सभी तिथि व्रत और सभी स्थान तीर्थ हो गये। सो इन बातों को अब एक बेर आँख खोलकर देख और समझ लीजिए कि फलानी बात उन बुद्धिमान ऋषियों ने क्यों बनायी और उनमें जो देश और काल के अनुकूल और उपकारी हों उनको ग्रहण कीजिए। बहुत सी बातें जो समाज विरुद्ध मानी जाती हैं किन्तु धर्मशास्त्रों में जिनका विधान है उनको चलाइए; जैसे—जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि। लड़कों को छोटेपन में ही ब्याह करके उनका बल, बीरज, आयुष्य सब मत घटाइए। आप उनके माँ बाप हैं या शत्रु हैं। वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिए। नोन तेल लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लेने दीजिए। तब उनका पैर काठ में डालिए। कुलीन प्रथा बहुविवाह आदि को दूर कीजिए। लड़कियों को भी पढ़ाइये किन्तु इस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ायी जाती हैं, जिससे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखें, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें। नाना प्रकार के मत के लोग आपस में बैर छोड़ दें, यह समय इन झगड़ों का नहीं, हिन्दू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए, जाति में कोई चाहे ऊँचा हो, चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए, जो जिस योग्य हो उसे वैसा मानिए। छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए। सब लोग आपस में मिलिए।

अपने लड़कों को अच्छी से अच्छी तालीम दो। पिनशिन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो। लड़कों को रोजगार सिखलाओ। विलायत भेजो। छोटेपन से मेहनत करने की आदत दिलाओ। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मण, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। कारीगरी जिसमें तुम्हारे यहाँ बढ़े तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे वह करो। देखो जैसे हजार धारा होकर गंगा समुद्र में मिली है वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैण्ड, फ्रांसीस, जर्मनी, अमेरिका को जाती है। दियासलाई ऐसी तुच्छ वस्तु भी वहीं से आती है। जरा अपने को देखों। तुम जिस मारकीन की धोती पहने हो वह अमेरिका की बनी है। जिस लंकलाट का तुम्हारा अंग है वह इंग्लैण्ड का है। फ्रांसीस की बनी कंघी से तुम सिर झारते हो और जर्मनी की बनी चरखी की बत्ती तुम्हारे सामने जल रही है। यह तो वही मसल हुई एक बेफीकरे मंगनी का कपड़ा पहनकर किसी महफिल में गये। कपड़े को पहचान कर एक ने कहा अजी अंगा तो फलाने का है। दूसरा बोला अजी टोपी भी फलाने की है तो उन्होंने हँसकर जवाब दिया कि घर की तो मूंछ ही मूंछ हैं। हाय, अफसोस, तुम ऐसे हो गये कि अपने निज की काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयों, अब तो नींद से चौकों, अपने देश की सब प्रकार से उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो।

परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।

प्र.3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जीवन-परिचय दीजिए और उनके साहित्य पर भी प्रकाश डालिए।

उत्तर

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवन परिचय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी आलोचक, निबन्धकार, साहित्येतिहासकार, कोशकार, अनुवादक, कथाकार और कवि थे। उनके द्वारा लिखी गई हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, जिसके द्वारा आज भी काल निर्धारण एवं पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता ली जाती है। हिन्दी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ। हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में भी शुक्ल जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भाव, मनोविकार सम्बंधित मनोविश्लेषणात्मक निबन्ध उनके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। शुक्ल जी ने इतिहास लेखन में रचनाकार के जीवन और पाठ को समान महत्त्व दिया। उन्होंने प्रासंगिकता के दृष्टिकोण से साहित्यिक प्रत्ययों एवं रस आदि की पुनर्व्याख्या की।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई० में बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में हुआ था। इनकी माता जी का नाम विभाषी था और पिता का नाम पं० चन्द्रबली शुक्ल था जिनकी नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हुई तो उनका समस्त परिवार वहीं आकर रहने लगा। जिस समय शुक्ल जी की अवस्था नौ वर्ष की थी, उनकी माता का देहान्त हो गया। मातृ सुख के अभाव के साथ-साथ विमाता से मिलने वाले दु:ख ने उनके व्यक्तित्व को अल्पायु में ही परिपक्व बना दिया। अध्ययन के प्रति लग्नशीलता शुक्ल जी में बाल्यकाल से ही थी। किंतु इसके लिए उन्हें अनुकूल वातावरण न मिल सका। मिर्जापुर के लंदन मिशन स्कूल से सन् 1901 में स्कूल फाइनल परीक्षा (FA) उत्तीर्ण की। उनके पिता की इच्छा थी कि शुक्ल जी कचहरी में जाकर दफ्तर का काम सीखें, किंतु शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। पिता जी ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रुचि वकालत में न होकर साहित्य में थी। अत: परिणाम यह हुआ कि वे उसमें अनुत्तीर्ण रहे। शुक्ल जी के पिताजी ने उन्हें नायब तहसीलदारी की जगह दिलाने का प्रयास किया, किंतु उनकी स्वाभिमानी प्रकृति के कारण यह संभव न हो सका।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1903 से 1908 तक 'आनन्द कादम्बिनी' के सहायक संपादक का कार्य किया तथा 1904 से 1908 तक लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग के अध्यापक रहे। इसी समय से उनके लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे और धीरे-धीरे उनकी विद्वता का यश चारों ओर फैल गया। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर 1908 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिन्दी शब्दसागर के सहायक संपादक का कार्य-भार सौंपा जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक पूरा किया। श्यामसुन्दर दास के शब्दों में—"शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पं० रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है।" वे नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भी संपादक रहे। 1919 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक नियुक्त हुए जहाँ बाबू श्यामसुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 से जीवन के अंतिम काल (1941) तक विभागाध्यक्ष का पद सुशोभित किया। 2 फरवरी, सन् 1941 को हृदय की गति रुक जाने से शुक्ल जी का देहांत हो गया।

साहित्यिक परिचय

शुक्ल जी हिंदी साहित्य के कीर्ति स्तंभ हैं। हिंदी में वैज्ञानिक आलोचना का सूत्रपात उन्हीं के द्वारा हुआ। तुलसी, सूर और जायसी की जैसी निष्पक्ष, मौलिक और विद्वतापूर्ण आलोचनाएँ उन्होंने प्रस्तुत की, वैसी अभी तक कोई नहीं कर सका। शुक्ल जी की ये आलोचनाएँ हिंदी साहित्य की अनुपम विधियाँ हैं। निबन्ध के क्षेत्र में शुक्ल जी का स्थान बहुत ऊँचा है। वे श्रेष्ठ और मौलिक निबन्धकार थे। हिन्दी में गद्य शैली के सर्वश्रेष्ठ प्रस्थापकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का नाम सर्वोपरि है। उन्होंने अपने दृष्टिकोण से भाव-विभाव, रस आदि की पुनर्व्याख्या की, साथ ही साथ विभिन्न भावों की व्याख्या में उनका पांडित्य, मौलिकता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण पग-पग पर दिखाई देता है। हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना को परिचय और सामान्य विवेचन के धरातल से ऊपर उठाकर गंभीर स्वरूप प्रदान करने का श्रेय शुक्ल जी को ही है। शुक्ल जी की कृतियाँ तीन प्रकार की हैं—

1. **मौलिक कृतियाँ**—मौलिक कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

   आलोचनात्मक ग्रंथ—सूर, तुलसी, जायसी पर की गई आलोचनाएँ, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रसमीमांसा आदि शुक्ल जी की आलोचनात्मक रचनाएँ हैं।

   निबन्धात्मक ग्रन्थ—उनके निबन्ध चिंतामणि नामक ग्रंथ के दो भाग। चिंतामणि के निबन्धों के अतिरिक्त शुक्लजी ने कुछ अन्य निबन्ध भी लिखे हैं, जिनमें मित्रता, अध्ययन आदि निबन्ध सामान्य विषयों पर लिखे गये निबन्ध हैं। मित्रता निबन्ध जीवनोपयोगी विषय पर लिखा गया उच्चकोटि का निबन्ध है जिसमें शुक्लजी की लेखन शैलीगत विशेषताएँ झलकती हैं।

   ऐतिहासिक ग्रन्थ—हिंदी साहित्य का इतिहास उनका अनूठा ऐतिहासिक ग्रंथ है।

2. **अनूदित कृतियाँ**—शुक्ल जी की कई अनूदित कृतियाँ हैं। 'शशांक' उनका बंगाली से अनूदित उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी से विश्वप्रपंच, आदर्श जीवन, मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, कल्पना का आनन्द आदि रचनाओं का अनुवाद किया।
3. **सम्पादित कृतियाँ**—सम्पादित ग्रन्थों में हिंदी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भ्रमरगीत सार, सूर, तुलसी, जायसी ग्रंथावली उल्लेखनीय हैं।

वर्ण विषय—शुक्ल जी ने प्राय: साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक निबन्ध लिखे हैं। साहित्यिक निबन्धों के 3 भाग किए जा सकते हैं—

सैद्धान्तिक आलोचनात्मक निबन्ध—'कविता क्या है', 'काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद', आदि निबन्ध सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं। आलोचना के साथ-साथ अन्वेषण और गवेषणा करने की प्रवृत्ति भी शुक्ल जी में पर्याप्त मात्रा में है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' उनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है।

व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध—मित्रता, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, तुलसी का भक्ति मार्ग, मानस की धर्मभूमि आदि निबन्ध व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं।

मनोवैज्ञानिक निबन्ध—मनोवैज्ञानिक निबन्धों में करुणा, श्रद्धा, भक्ति, लज्जा, ग्लानि, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गए निबन्ध आते हैं। शुक्ल जी के ये मनोवैज्ञानिक निबन्ध सर्वथा मौलिक हैं। उनकी भाँति किसी भी अन्य लेखक ने उपर्युक्त विषयों पर इतनी प्रौढ़ता के साथ नहीं लिखा। शुक्ल जी के निबन्धों में उनकी अभिरुचि, विचारधारा, अध्ययन आदि का पूरा-पूरा समावेश है। वे लोकादर्श के पक्के समर्थक थे। इस समर्थन की छाप उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलती है।

प्र.4. जीवनोपयोगी विषय पर लिखा गया उच्चकोटि का निबन्ध है-मित्रता। इसका वर्णन कीजिए।

उत्तर

मित्रता

जब कोई युवा पुरुष अपने घर से बाहर निकलकर बाहरी संसार में अपनी स्थिति जमाता है, तब पहली कठिनता उसे मित्र चुनने में पड़ती है। यदि उसकी स्थिति बिल्कुल एकान्त और निराली नहीं रहती तो उसकी जान-पहचान के लोग धड़ाधड़ बढ़ते जाते हैं और थोड़े ही दिनों में कुछ लोगों से उसका हेल-मेल हो जाता है। यही हेल-मेल बढ़ते-बढ़ते मित्रता के रूप में परिणत हो जाता है। मित्रों के चुनाव की उपयुक्तता पर उसके जीवन की सफलता निर्भर हो जाती है क्योंकि संगति का गुप्त प्रभाव हमारे आचरण पर बड़ा भारी पड़ता है। हम लोग ऐसे समय में समाज में प्रवेश करके अपना कार्य आरम्भ करते हैं जबकि हमारा चित्त कोमल और हर तरह का संस्कार ग्रहण करने योग्य रहता है, हमारे भाव अपरिमार्जित और हमारी प्रवृत्ति अपरिपक्व रहती है। हम लोग कच्ची मिट्टी की मूर्ति के समान रहते हैं जिसे जो जिस रूप में चाहे, उस रूप का करे-चाहे वह राक्षस बनावे, चाहे देवता। ऐसे लोगों का साथ करना हमारे लिए बुरा है जो हमसे अधिक दृढ़ संकल्प के हैं क्योंकि हमें उनकी हर एक बात बिना विरोध के मान लेनी पड़ती है। पर ऐसे लोगों का साथ करना और बुरा है जो हमारी ही बात को ऊपर रखते हैं क्योंकि ऐसी दशा में न तो हमारे ऊपर कोई दाब रहता है और न हमारे लिए कोई सहारा रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिस बात का भय रहता है, उसका पता युवा पुरुषों को प्राय: विवेक से कम रहता है। यदि विवेक से काम लिया जाये तो यह भय नहीं रहता, पर युवा पुरुष प्राय: विवेक से कम काम लेते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि लोग एक घोड़ा लेते हैं तो उसके गुण-दोषों को कितना परख लेते हैं, पर किसी को मित्र बनाने में उसके पूर्व आचरण और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार और अनुसन्धान नहीं करते। वे उसमें सब बातें अच्छी ही अच्छी मानकर अपना पूरा विश्वास जमा देते हैं। हँसमुख चेहरा, बातचीत का ढंग, थोड़ी चतुराई या साहस-ये ही दो चार बातें किसी में देखकर लोग चटपट उसे अपना बना लेते हैं। हम लोग नहीं सोचते कि मैत्री का उद्देश्य क्या है, तथा जीवन के व्यवहार में उसका कुछ मूल्य भी है। यह बात हमें नहीं सूझती कि यह ऐसा साधन है जिससे आत्मशिक्षा का कार्य बहुत सुगम हो जाता है। एक प्राचीन विद्वान का वचन है—"विश्वास-पात्र मित्र से बड़ी भारी रक्षा रहती है। जिसे ऐसा मित्र मिल जाये उसे समझना चाहिए कि खजाना मिल गया।" विश्वास-पात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमें अपने मित्रों से यह आशा रखनी चाहिए कि वे उत्तम संकल्पों में हमें दृढ़ करेंगे, दोष और त्रुटियों से हमें बचायेंगे, हमारे सत्य, पवित्रता और मर्यादा के प्रेम को पुष्ट करें, जब हम कुमार्ग पर पैर रखेंगे, तब वे हमें सचेत करेंगे, जब हम हतोत्साहित होंगे तब हमें उत्साहित करेंगे। सारांश यह है कि वे हमें उत्तमतापूर्वक जीवन निर्वाह करने में हर तरह से सहायता देंगे। सच्ची मित्रता से उत्तम से उत्तम वैद्य की-सी निपुणता और परख होती है, अच्छी से अच्छी माता का-सा धैर्य और कोमलता होती है। ऐसी ही मित्रता करने का प्रयत्न पुरुष को करना चाहिए।

Touch 'n PASS

छात्रावास में तो मित्रता की धुन सवार रहती है। मित्रता हृदय से उमड़ पड़ती है। पीछे के जो स्नेह-बन्धन होते हैं, उसमें न तो उतनी उमंग रहती है, न उतनी खिन्नता। बाल-मैत्री में जो मनन करने वाला आनन्द होता है, जो हृदय को बेधने वाली ईर्ष्या होती है, वह और कहाँ? कैसी मधुरता और कैसी अनुरक्ति होती है, कैसा अपार विश्वास होता है। हृदय के कैसे-कैसे उद्‌गार निकलते हैं। वर्तमान कैसा आनन्दमय दिखायी पड़ता है और भविष्य के सम्बन्ध में कैसी लुभाने वाली कल्पनाएँ मन में रहती हैं। कितनी जल्दी बातें लगती है और कितनी जल्दी मानना-मनाना होता है। 'सहपाठी की मित्रता' इस उक्ति में हृदय के कितने भारी उथल-पुथल का भाव भरा हुआ है। किन्तु जिस प्रकार युवा पुरुष की मित्रता स्कूल के बालक की मित्रता से दृढ़, शान्त और गम्भीर होती है, उसी प्रकार हमारी युवावस्था के मित्र बाल्यावस्था के मित्रों से कई बातों में भिन्न होते हैं। मैं समझता हूँ कि मित्र चाहते हुए बहुत से लोग मित्र के आदर्श की कल्पना मन में करते होंगे, पर इस कल्पित आदर्श से तो हमारा काम जीवन की झंझटो में चलता नहीं। सुन्दर प्रतिमा, मनभावनी चाल और स्वच्छन्द प्रकृति ये ही दो-चार बातें देखकर मित्रता की जाती है। पर जीवन-संग्राम में साथ देने वाले मित्रों में इनसे कुछ अधिक बातें चाहिए। मित्र केवल उसे नहीं कहते जिसके गुणों की तो हम प्रशंसा करें, पर जिससे हम स्नेह न कर सकें, जिससे अपने छोटे-मोटे काम तो हम निकालते जायें, पर भीतर-ही-भीतर घृणा करते रहें। मित्र सच्चे पथ-प्रदर्शक के समान होना चाहिए, जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, भाई के समान होना चाहिए, जिसे हम अपना प्रीति-पात्र बना सकें। हमारे और हमारे मित्र के बीच सच्ची सहानुभूति होनी चाहिए—ऐसी सहानुभूति जिससे एक के हानि-लाभ को दूसरा अपना हानि-लाभ समझे। मित्रता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो मित्र एक ही प्रकार का कार्य करते हों या एक ही रुचि के हों। इसी प्रकार प्रकृति और आचरण की समानता भी आवश्यक या वांछनीय नहीं है। दो भिन्न प्रकृति के मनुष्यों में बराबर प्रीति और मित्रता रही है। राम धीर और शान्त प्रकृति के थे, लक्ष्मण उग्र और उद्धत स्वभाव के थे, पर दोनों भाइयों में अत्यन्त प्रगाढ़ स्नेह था। उदार तथा उच्चाशय कर्ण और लोभी दुर्योधन के स्वभावों में कुछ विशेष समानता न थी, पर उन दोनों की मित्रता खूब निभी। यह कोई भी बात नहीं है कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों में ही मित्रता खूब निभी। यह कोई भी बात नहीं हैं कि एक ही स्वभाव और रुचि के लोगों में ही मित्रता हो सकती है। समाज में विभिन्नता देखकर लोग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं, जो गुण हममें नहीं है, हम चाहते हैं कि कोई ऐसा मित्र मिले, जिसमें वे गुण हों। चिन्ताशील मनुष्य प्रफुल्लित चित्त का साथ ढूँढता है, निर्बल बली का, धीर उत्साही का। उच्च आकांक्षावाला चन्द्रगुप्त युक्ति और उपाय के लिए चाणक्य का मुँह ताकता था। नीति-विशारद अकबर मन बहलाने के लिए बीरबल की ओर देखता था।

मित्र का कर्त्तव्य इस प्रकार बताया गया है—'उच्च और महान कार्य में इस प्रकार सहायता देना, मान बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर का काम कर जाओ।' यह कर्त्तव्य उससे पूरा होगा जो दृढ़-चित्त और सत्य-संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों। मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार का धोखा न होगा।

जो बात ऊपर मित्रों के सम्बन्ध में कही गयी है, वही जान-पहचान वालों के सम्बन्ध में भी ठीक है। जान-पहचान के लोग ऐसे हों जिनसे हम कुछ लाभ उठा सकते हों, जो हमारे जीवन को उत्तम और आनन्दमय करने में कुछ सहायता दे सकते हों, यद्यपि उतनी नहीं जितनी गहरे गहरे मित्र दे सकते हैं। मनुष्य का जीवन थोड़ा है, उसमें खोने के लिए समय नहीं। यदि क, ख और ग न हमारे लिए कुछ कर सकते हैं, न कोई बुद्धिमानी या विनोद की बातचीत कर सकते हैं, न कोई अच्छी बात बतला सकते हैं, न सहानुभूति द्वारा हमें ढाढ़स बंधा सकते हैं न हमारे आनन्द में सम्मिलित हो सकते हैं, न हमें कर्त्तव्य का ध्यान दिला सकते हैं, तो ईश्वर हमें उनसे दूर ही रखें। हमें अपने चारों ओर जड़ मूर्तियाँ सजाना नहीं है। आजकल जान-पहचान बढ़ाना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी युवा पुरुष ऐसे अनेक युवा पुरुषों को पा सकता है जो उसके साथ थियेटर देखने जायेंगे, नाच रंग में आयेंगे, सैर-सपाटे में जायेंगे, भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। यदि ऐसे जान पहचान के लोगों से कुछ हानि न होगी तो लाभ भी न होगा। पर यदि हानि होगी तो बड़ी भारी होगी। सोचो तो तुम्हारा जीवन कितना नष्ट होगा। यदि ये जान-पहचान के लोग उन मनचले युवकों में से निकलें जिनकी संख्या दुर्भाग्यवश आजकल बहुत बढ़ रही है, यदि उन शोहदों में से निकलें जो अमीरों की बुराइयों और मूर्खताओं की नकल किया करते हैं, गलियों में ठट्टा मारते हैं और सिगरेट का धुआँ उड़ाते चलते हैं। ऐसे नवयुवकों से बढ़कर शून्य, नि:सार और शोचनीय जीवन और किसका है? वे अच्छी बातों के सच्चे आनन्द से कोसों दूर है। उनके लिए न तो संसार में सुन्दर और मनोहर उक्ति वाले कवि हुए हैं और न संसार में सुन्दर आचरण वाले महात्मा हुए हैं। उनके लिए न तो बड़े-बड़े वीर अद्‌भुत कर्म कर गये हैं और न बड़े-बड़े ग्रन्थकार ऐसे विचार छोड़ गये हैं जिनसे मनुष्य जाति के हृदय में सात्विकता की उमंगे उठती हैं। उनके

लिए फूल-पत्तियों में कोई सौन्दर्य नहीं। झरनों के कल-कल में मधुर संगीत नहीं, अनन्त सागर तरंगों में गम्भीर रहस्यों का आभास नहीं, उनके भाग्य में सच्चे प्रयत्न और पुरुषार्थ का आनन्द नहीं, उनके भाग्य से सच्ची प्रीति का सुख और कोमल हृदय की शान्ति नहीं। जिनकी आत्मा अपने इन्द्रिय-विषयों में ही लिप्त है; जिनका हृदय नीचाशयों और कुत्सित विचारों से कलुषित है, ऐसे नाशोन्मुख प्राणियों को दिन-दिन अन्धकार में पतित होते देख कौन ऐसा होगा जो तरस न खायेगा? उसे ऐसे प्राणियों का साथ न करना चाहिए।

मकदूनिया का बादशाह डमेट्रियस कभी-कभी राज्य का सब का सब काम छोड़ अपने ही मेल के दस-पाँच साथियों को लेकर विषय वासना में लिप्त रहा करता था। एक बीमारी का बहाना करके इसी प्रकार वह अपने दिन काट रहा था। इसी बीच उसका पिता उससे मिलने के लिए गया और उसने एक हँसमुख जवान को कोठरी से बाहर निकलते देखा। जब पिता कोठरी के भीतर पहुँचा तब डमेट्रियस ने कहा- 'ज्वर ने मुझे अभी छोड़ा है।' पिता ने कहा—'हाँ! ठीक है वह दरवाजे पर मुझे मिला था।'

कुसंग का ज्वर सबसे भयानक होता है। यह केवल नीति और सद्वृत्ति का ही नाश नहीं करता, बल्कि बुद्धि का भी क्षय करता है। किसी युवा-पुरुष की संगति यदि बुरी होगी तो वह उसके पैरों में बंधी चक्की के समान होगी जो उसे दिन-दिन अवनति के गड्ढे में गिराती जायेगी और यदि अच्छी होगी तो सहारा देने वाली बाहु के समान होगी जो उसे निरन्तर उन्नति की ओर उठाती जायेगी।

इंग्लैण्ड के एक विद्वान को युवावस्था में राज-दरबारियों में जगह नहीं मिली। इस पर जिन्दगी भर वह अपने भाग्य को सराहता रहा। बहुत से लोग तो इसे अपना बड़ा भारी दुर्भाग्य समझते, पर वह अच्छी तरह जानता था कि वहाँ वह बुरे लोगों की संगति में पड़ता जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होते। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके घड़ी भर के साथ से भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है क्योंकि उतने ही बीच में ऐसी-ऐसी बातें कही जाती है जो कानों में न पड़नी चाहिए, चित्त पर ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जिनसे उसकी पवित्रता का नाश होता है। बुराई अटल भाव धारण करके बैठती है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती हैं। इस बात को प्राय: सभी लोग जानते हैं कि भद्दे व फूहड़ गीत जितनी जल्दी ध्यान पर चढ़ते हैं, उतनी जल्दी कोई गम्भीर या अच्छी बात नहीं। एक बार एक मित्र ने मुझसे कहा कि उसने लड़कपन में कहीं से एक बुरी कहावत सूनी थी, जिसका ध्यान वह लाख चेष्टा करता है कि न आये, पर बार-बार आता है। जिन भावनाओं को हम दूर रखना चाहते हैं, जिन बातों को हम याद नहीं करना चाहते, वे बार-बार हृदय में उठती हैं और बेधती हैं। अत: तुम पूरी चौकसी रखो, ऐसे लोगों को कभी साथी न बनाओ जो अश्लील, अपवित्र और फूहड़ बातों से तुम्हें हँसाना चाहे। सावधान रहो, ऐसा ना हो कि पहले-पहले तुम इसे एक बहुत सामान्य बात समझो और सोचो कि एक बार ऐसा हुआ, फिर ऐसा न होगा अथवा तुम्हारे चरित्र-बल का ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि ऐसी बातें बकने वाले आगे चलकर आप सुधर जायेंगे। नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब एक बार मनुष्य अपना पैर कीचड़ में डाल देता है। तब फिर यह नहीं देखता कि वह कहाँ और कैसी जगह पैर रखता है। धीरे-धीरे उन बुरी बातों में अभयस्त होते-होते तुम्हारी घृणा कम हो जायेगी। पीछे तुम्हें उनसे चिढ़ न मालूम होगी क्योंकि तुम यह सोचने लगोगे कि चिढ़ने की बात ही क्या है! तुम्हारा विवेक कुण्ठित हो जायेगा और तुम्हें भले-बुरे की पहचान न रह जायेगी। अन्त में होते-होते तुम भी बुराई के भक्त बन जाओगे; अत: हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि बुरी संगत की छूत से बचो। यही पुरानी कहावत है कि—

'काजर की कोठरी में, कैसो हू सयानो जाय।
एक लीक काजर की, लागिहैं, पै लागिहै।'

प्र.5. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जीवन परिचय देते हुए उनके साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दुबे का छपरा नामक गाँव में 19 अगस्त, 1907 को हुआ था। इनके पिता पं० अनमोल द्विवेदी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। जिनका प्रभाव द्विवेदी जी पर स्वाभाविक रूप से पड़ा। इनकी आरम्भिक शिक्षा गाँव में हुई और आगे अध्ययन के लिए ये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय गए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अपनी शिक्षा पूरी करके द्विवेदी जी शांति निकेतन विश्वविद्यालय में अध्यापन करने लगे। द्विवेदी जी शांति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सानिध्य में रहे और उनके विचारों से प्रभावित हुए। यहाँ रहकर इन्होने प्राकृत और बांग्ला भाषा का अध्ययन किया और साथ ही साथ भारतीय इतिहास और दर्शन की गहरी जानकारी प्राप्त की। जिसकी पूरी छाप इनकी रचनाओं में देखने को मिलती है। कुछ वर्षों के पश्चात् यह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय लौट आए और यहाँ अध्यापन आरम्भ कर दिया और यहाँ के हिंदी विभाग के अध्यक्ष भी रहे।

द्विवेदी जी के साहित्य से परिचित होने का अर्थ है सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान, परम्परा, पाण्डित्य एवं गौरवशाली संस्कृति से संवाद स्थापित करना। इनके निबन्धों में कहीं रामायण और महाभारत के प्रसंगों की समीक्षा की गई है तो कहीं वैदिक और बौद्ध धर्म का

निरूपण किया गया है और कहीं संत मत और योग मत का गंभीर विवेचन है। वे कहीं फलित ज्योतिष पर विचार व्यक्त करते हैं तो कहीं केश प्रक्षालन, मुख प्रक्षालन, भोजनोत्तर विनोद पर टीका टिप्पणी करते हैं। साहित्य, संस्कृति, धर्म, राजनीति, क्रीड़ा, विलास, प्रसाधन, प्रकृति, कला, ऋतु-उत्सव, मनोविनोद कुछ भी उनकी दृष्टि से बचा नहीं है। 'भारत वर्ष की सांस्कृतिक समस्या', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'भारतीय फलित ज्योतिष', 'भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत', 'जीवेम शरदः शतम', आदि द्विवेदी जी के शुद्ध सांस्कृतिक निबन्ध हैं। शुद्ध सांस्कृतिक निबन्धों के अतिरिक्त अपने अन्य निबन्धों में भी वे अतीत की ओर झाँकते हुए भारतीय संस्कृति के उद्घाटन का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'देवदारू', 'मेरी जन्मभूमि', 'आम फिर बौरा गए' जैसे निबन्धों में उन्हें जहाँ कहीं भी अवसर मिला; वहाँ इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध लेखन से ही हिन्दी में ललित निबन्धों का प्रभावी प्रारम्भ देखने को मिलता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करते दिखाई देते हैं। संस्कृत, अपभ्रंश, अंग्रेजी, हिंदी आदि पर अधिकार होने के कारण इनकी भाषा बहुत समृद्ध है। इनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली, तद्भव, देशज तथा अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यंत कुशलता से हुआ है। भाषा को गतिशील और प्रवाहपूर्ण बनाने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। इनकी भाषा में अलंकारिकता, चित्रोपमता और सजीवता जैसे गुण हैं। इन्होंने अपनी भाषा में लोकभाषा को भी स्थान दिया है। संस्कृत, बांग्ला, हिंदी की सूक्तियों और उद्धरणों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते हैं। वस्तुतः इनकी भाषा की मूल प्रवृत्ति संस्कृतनिष्ठता है जो इनके अगाध पाण्डित्य और बहुज्ञता की परिचायक है।

साहित्यिक परिचय—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का हिंदी निबन्ध और आलोचनात्मक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे उच्च कोटि के निबन्धकार और सफल आलोचक हैं। उन्होंने सूर, कबीर, तुलसी आदि पर जो विद्वतापूर्ण आलोचनाएँ लिखी हैं, वे हिंदी में पहले नहीं लिखी गईं। उनका निबन्ध-साहित्य हिंदी की स्थाई निधि है। उनकी समस्त कृतियों पर उनके गहन विचारों और मौलिक चिंतन की छाप है। विश्व-भारती आदि के द्वारा द्विवेदी जी ने संपादन के क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। आचार्य द्विवेदी जी के साहित्य में मानवता का परिशीलन सर्वत्र दिखाई देता है। उनके निबन्ध तथा उपन्यासों में यह दृष्टि विशेष रूप से प्रतीत होती है। द्विवेदी जी के निबन्धों में सभ्यता-संस्कृति के प्रति जीवन दृष्टि, जीवन के प्रति मानवतावादी धारणा, फक्कड़पन, उन्मुक्तता, मनुष्य की शक्ति और विश्वास को रेखांकित करने वाले बिन्दु हैं। द्विवेदी जी अपनी उदार सांस्कृतिक दृष्टि और सजग इतिहास बोध से अपने निबन्धों में उच्चतर मानवीय मूल्यों का निर्धारण करते हैं। द्विवेदी जी के निबन्धों के विषय भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य विविध धर्मों और संप्रदायों का विवेचन आदि है। वर्गीकरण की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्ध दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं - विचारात्मक और आलोचनात्मक। विचारात्मक निबन्धों की दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी के निबन्धों में दार्शनिक तत्वों की प्रधानता रहती है। द्वितीय श्रेणी के निबन्ध सामाजिक जीवन संबंधी होते हैं।

आलोचनात्मक निबन्ध भी दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। प्रथम श्रेणी में ऐसे निबन्ध हैं जिनमें साहित्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया गया है और द्वितीय श्रेणी में वे निबन्ध आते हैं जिनमें साहित्यकारों की कृतियों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार हुआ है। द्विवेदी जी के इन निबन्धों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रमुख निबन्ध संकलन हैं—'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'आलोक पर्व', 'गतिशील चिंतन', 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ', 'साहित्य सहचर', 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' आदि।

प्र.6. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'अशोक के फूल' का वर्णन कीजिए।

उत्तर

निबन्ध : अशोक के फूल

अशोक के फिर फूल आ गए हैं। इन छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तबकों में कैसा मोहक भाव है! बहुत सोच-समझकर कंदर्प देवता ने लाखों मनोहर पुष्पों को छोड़कर सिर्फ पाँच को ही अपने तूणीर में स्थान देने योग्य समझा था। एक यह अशोक ही है। लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। इसलिए नहीं कि सुंदर वस्तुओं को हतभाग्य समझने में मुझे कोई विशेष रस मिलता है। कुछ लोगों को मिलता है। वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। जो भी सामने पड़ गया उसके जीवन के अंतिम मुहूर्त तक का हिसाब वे लगा लेते हैं। मेरी दृष्टि इतनी दूर तक नहीं जाती। फिर भी मेरा मन इस फूल को देखकर उदास हो जाता है। असली कारण तो मेरे अंतर्यामी ही जानते होंगे, कुछ थोड़ा-सा मैं भी अनुमान कर सका हूँ। बताता हूँ।

भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, इस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकी व्यापार है। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था, परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है वह पहले कहाँ था! उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भाँति शोभा है,

गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है। फिर एकाएक मुसलमानी सल्तनत की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ यह मनोहर पुष्प साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया गया। नाम तो लोग बाद में भी लेते थे; पर उसी प्रकार जिस प्रकार बुद्ध, विक्रमादित्य का।

अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था। सुंदरियों के आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था। वह महादेव के मन में क्षोभ पैदा करता था, मर्यादा पुरुषोत्तम के चित्त में सीता का भ्रम पैदा करता था और मनोजन्मा देवता के एक इशारे पर कंधे पर से ही फूल उठता था। अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप से निकल जाता है। क्यों ऐसा हुआ? कंदर्प देवता के अन्य बाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनिया में ज्यों-की-त्यों हैं। अरविंद को किसने भुलाया, आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं है; किंतु उसकी इससे अधिक कदर कभी थी भी नहीं। भुलाया गया है अशोक। मेरा मन उमड़-घुमड़कर भारतीय रस-साधना के पिछले हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गई थी? कविता क्या सो गई थी? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है। जले पर नमक तो यह है कि एक तरंगायित पत्रवाले निफूले पेड़ को सारे उत्तर भारत में 'अशोक' कहा जाने लगा। याद भी किया तो अपमान करके।

लेकिन मेरे मानने-न-मानने से होता क्या है? ईसवी सन् के आरंभ के आस-पास अशोक का शानदार पुष्प भारतीय धर्म, साहित्य और शिल्प में अद्‌भुत महिमा के साथ आया था। उसी समय शताब्दियों के परिचित यक्षों और गंधर्वों ने भारतीय धर्म-साधना को एकदम नवीन रूप में बदल दिया था। पंडितों ने शायद ठीक ही सुझाया है कि 'गंधर्व' और 'कंदर्प' वस्तुत: एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं। कंदर्प देवता ने यदि अशोक को चुना है तो यह निश्चित रूप से एक आर्येतर सभ्यता की देन है। इन आर्येतर जातियों के उपास्य वरुण थे, कुबेर थे, वज्रपाणि यक्षपति थे। कंदर्प यद्यपि कामदेवता का नाम हो गया है, तथापि है वह गंधर्व का ही पर्याय। शिव से भिड़ने जाने पर एक बार यह पिट चुके थे, विष्णु से डरते थे और बुद्धदेव से भी टक्कर लेकर लौट आए थे। लेकिन कंदर्प देवता हार मानने वाले जीव न थे। बार-बार हारने पर भी वह झुके नहीं। नए-नए अस्त्रों का प्रयोग करते रहे। अशोक शायद अंतिम अस्त्र था। बौद्ध धर्म को इस नए अस्त्र से उन्होंने घायल कर दिया, शैव मार्ग को अभिभूत कर दिया और शाक्त-साधना को झुका दिया। वज्रयान इसका सबूत है, कौल-साधना इसका प्रमाण है और कापालिक मत इसका गवाह है।

रवींद्रनाथ ने इस भारतवर्ष को 'महामानव समुद्र' कहा है। विचित्र देश है यह! असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए-न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आईं और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गईं। जिसे हमें हिंदू रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येतर उपादानों का अद्‌भुत मिश्रण हैं। एक-एक पशु, एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित हैं। अशोक की भी अपनी स्मृति परंपरा है। आम की भी है, बकुल की है, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट हो सका है? न जाने किस बुरे मुहूर्त में मनोजन्मा देवता ने शिव पर बाण फेंका था? शरीर जलकर राख हो गया है। 'वामन-पुराण' (षष्ठ अध्याय) की गवाही पर हमें मालूम है कि उनका रत्नमय धनुष टूटकर खंड-खंड हो धरती पर गिर गया। जहाँ मूठ थी, वह स्थान रुक्म-मणि से बना था, वह टूटकर धरती पर गिरा और चंपे का फूल बन गया! हीरे का बना हुआ जो नाह-स्थान था, वह टूटकर गिरा और मौलसिरी के मनोहर पुष्पों में बदल गया! अच्छा ही हुआ। इंद्रनील मणियों का बना हुआ कोटि देश भी टूट गया और सुंदर पाटल पुष्पों में परिवर्तित हो गया। यह भी बुरा नहीं हुआ। लेकिन सबसे सुंदर बात यह हुई कि चन्द्रकांत-मणियों का बना हुआ मध्य देश टूटकर चमेली बन गया और विद्रुम की बनी निम्नतर कोटि बेला बन गई, स्वर्ग को जीतने वाला कठोर धनुष, जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया! स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती! परन्तु मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ। इस कथा का रहस्य क्या है? यह क्या पुराणकार की सुकुमार कल्पना है या सचमुच ये फूल भारतीय संसार में गंधर्वों की देन हैं? एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती भी नहीं! सोम तो निश्चित रूप से गंधर्वों से खरीदा जाता था। ब्राह्मण ग्रंथों में यज्ञ की विधि में यह विधान सुरक्षित रह गया है। ये फूल भी क्या उन्हीं से मिले?

कुछ बातें तो मेरी मस्तिष्क में बिना सोचे ही उपस्थित हो रही हैं। यक्षों और गंधर्वों के देवता—कुबेर, सोम, अप्सराएँ—यद्यपि बाद के ब्राह्मण ग्रंथों में भी स्वीकृत है, तथापि पुराने साहित्य में आप देवता के रूप में ही मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में तो बुद्धदेव को ये कई बार बाधा देते हुए बताए गए हैं। महाभारत में ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं जिनमें संतानार्थिनी स्त्रियाँ वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास संतान-कामिनी होकर जाया करती थीं! यक्ष और यक्षिणी साधारणत: विलासी और उर्वरता-जनक देवता समझे जाते थे। कुबेर तो अक्षय निधि के अधीश्वर भी हैं। 'यक्ष्मा' नामक रोग के साथ भी इन लोगों का संबंध जोड़ा जाता है। भरहुत, बोधगया, साँची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियों में संतानार्थिनी स्त्रियों का यक्षों के सान्निध्य के लिए वृक्षों के पास जाना अंकित है। इन वृक्षों के पास

अंकित मूर्तियों की स्त्रियाँ प्राय: नग्न हैं, केवल कटिदेश में एक चौड़ी मेखला पहने हैं। अशोक इन वृक्षों में सर्वाधिक रहस्यमय है। सुंदरियों के चरण-ताड़न से उसमें दोहद का संचार होता है और परवर्ती धर्मग्रंथों से यह भी पता चलता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की संतान-कामना फलवती है। अशोक कल्प में बताया गया है कि अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं—सफेद और लाल। सफेद तो तांत्रिक क्रियाओं में सिद्धिप्रद समझकर व्यवहृत होता है और लाल स्मरवर्धक होता है। इन सारी बातों का रहस्य क्या है? मेरा मन प्राचीन काल के कुंझटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहाँ हैं?

यह मुझे प्राचीन युग की बात मालूम होती है। आर्यों का लिखा हुआ साहित्य ही हमारे पास बचा है। उसमें सबकुछ आर्य दृष्टिकोण से ही देखा गया है। आर्यों से अनेक जातियों का संघर्ष हुआ। कुछ ने उनकी अधीनता नहीं मानी, वे कुछ ज्यादा गर्वीली थीं। संघर्ष खूब हुआ। पुराणों में इसके प्रमाण हैं। यह इतनी पुरानी बात है कि सभी संघर्षकारी शक्तियाँ बाद में देवयोनी-जात मान ली गईं। पहला संघर्ष शायद असुरों से हुआ। यह बड़ी गर्वीली जाति थी। आर्यों का प्रभुत्व इसने कभी नहीं माना। फिर दानवों, दैत्यों और राक्षसों से संघर्ष हुआ। गंधर्वों और यक्षों से कोई संघर्ष नहीं हुआ। वे शायद शांतिप्रिय जातियाँ थीं। भरहुत, साँची, मथुरा आदि में प्राप्त यक्षिणी मूर्तियों की गठन और बनावट देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये जातियाँ पहाड़ी थीं। हिमालय का देश ही गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास-भूमि है। इनका समाज संभवत: उस स्तर पर था, जिसे आजकल के पंडित 'पुनालुअन सोसाइटी' कहते हैं। शायद इससे भी अधिक आदिम! परन्तु वे नाच-गान में कुशल थे। यक्ष तो धनी भी थे। वे लोग वानरों और भालुओं की भाँति कृषिपूर्व स्थिति में भी नहीं थे और राक्षसों और असुरों की भाँति व्यापार-वाणिज्य वाली स्थिति में भी नहीं। वे मणियों और रत्नों का संधान जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे और अनायास धनी हो जाते थे। संभवत: इसी कारण उनमें विलासता की मात्रा अधिक थी। परवर्तीकाल में यह बहुत सुखी जाति मानी जाती थी। यक्ष और गंधर्व एक ही श्रेणी के थे, परन्तु आर्थिक स्थिति दोनों की थोड़ी भिन्न थी। किस प्रकार कंदर्प देवता को अपनी गंधर्व सेना के साथ इंद्र का मुसाहिब बनना पड़ा, वह मनोरंजक कथा है। पर यहाँ वे सब पुरानी बातें क्यों रटी जाए? प्रकृत यह है कि बहुत पुराने जमाने में आर्य लोगों को अनेक जातियों से निपटना पड़ा था, जो गर्वीली थीं, हार मानने को प्रस्तुत नहीं थीं, परवर्ती साहित्य में उनका स्मरण घृणा के साथ किया गया और जो सहज ही मित्र बन गईं, उनके प्रति अवज्ञा और उपेक्षा का भाव नहीं रहा। असुर, राक्षस, दानव और दैत्य पहली श्रेणी में तथा यक्ष, गंधर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, वानर, भालू आदि दूसरी श्रेणी में आते हैं। परवर्ती हिंदू समाज इन सबको बड़ी अद्‌भुत शक्तियों का आश्रय मानता है, सब में देवता-बुद्धि का पोषण करता है।

अशोक वृक्ष की पूजा इन्हीं गंधर्वों और यक्षों की देन है। प्राचीन साहित्य में इस वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। असल पूजा अशोक की नहीं, बल्कि उसके अधिष्ठाता कंदर्प देवता की होती थी, इसे 'मदनोत्सव' कहते थे। महाराज भोज के 'सरस्वती-कंठाभरण' से जान पड़ता है कि यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता था। 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में इस उत्सव का बड़ा सरस, मनोहर वर्णन मिलता है। मैं जब अशोक के लाल स्तबकों को देखता हूँ तो मुझे वह पुराना वातावरण प्रत्यक्ष दिखाई दे जाता है। राजघरानों में साधारणत: रानी ही अपने सनूपुर चरणों के आघात से इस रहस्यमय वृक्ष को पुष्पित किया करती थीं। कभी-कभी रानी अपने स्थान पर किसी अन्य सुंदरी को नियुक्त कर दिया करती थीं। कोमल हाथों में अशोक—पल्लवों का कोमलतर गुच्छ आया, अलक्तक से रंजित नूपुरमय चरणों के मृदु आघात से अशोक का पाद्र-देश आहत हुआ—नीचे हल्की रूनझुन और ऊपर लाल फलों का उल्लास! किसलयों और कुसुम-स्तबकों की मनोहर छाया के नीचे स्फटिक के आसन पर अपने प्रिय को बैठाकर सुंदरियाँ अबीर, कुमकुम, चंदन और पुष्प-संभार से पहले कंदर्प देवता की पूजा करती थीं और बाद में सुकुमार भंगिमा से पति के चरणों पर वसंत पुष्पों की अंजलि बिखेर देती थीं। मैं सचमुच इस उत्सव को मादक मानता हूँ। अशोक के स्तबकों में वह मादकता आज भी है, पर पूछता कौन है। इन फूलों के साथ क्या मामूली स्मृति जुड़ी हुई है! भारतवर्ष का सुवर्ण युग इस पुष्प के प्रत्येक दल में लहरा रहा है।

कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक से उसका स्वार्थ नहीं सधा। क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है। अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु हैं वह उस विशाल सामंत-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थीं, उसके रक्त के ससार कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों-करोड़ों की उपेक्षा से जो समृद्ध हुई थी, वे सामंत उखड़ गए, समाज ढह गए, और मदनोत्सव की धूमधाम भी मिट गई। संतान-कामिनियों को गंधर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा-पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली-दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।

मुझे मानव जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्षों का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती यह जीवन-धारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई हैं। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सबकुछ में मिलावट है, सबकुछ अविशुद्ध है। केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा) शुद्ध है। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सबकुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षणभर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सबकुछ बह जाता है। जितना कुछ इस जीवन-शक्ति को समर्थ बनाता है उतना उसका अंग बन जाता है, बाकी फेंक दिया जाता है। धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदन देवता का गर्व-खंडन किया है, धर्मराज के कारागर में क्रांति मचाई है, यमराज के निर्दय तारल्य को पी लिया है, विधाता के सर्वकर्तृत्व के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें का कितना भाग तुम्हारे कुंठनृत्य से ध्वस्त हो जाएगा, कौन जानता है।

मनुष्य की जीवन-धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जाएगी। आज अशोक के पुष्प-स्तबकों को देखकर मेरा मन उदास हो गया है, कल न जाने किस वस्तु को देखकर किस सहृदय के हृदय में उदासी की रेखा खेल उठेगी! जिन बातों को मैं अत्यंत मूल्यवान समझ रहा हूँ और जिनके प्रचार के लिए चिल्ला-चिल्लाकर गला सूखा रहा हूँ, उनमें कितने जिएँगी और कितनी बह जाएँगी, कौन जानता है! मैं क्या शोक से उदास हुआ हूँ। माया काटे कटती नहीं। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसले दे रहे हैं। अशोक के फूल ही नहीं, किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं। कालिदास जैसे कल्पकवि ने अशोक के पुष्प को ही नहीं, किसलयों को भी मदमत्त करने वाला बताया था-अवश्य ही शर्त यह थी कि वह दयिता (प्रिया) के कानों में झूम रहा हो—'किसलय प्रसवोपि विलासिनां मदयिता दयिता श्रवणार्पितः।' परन्तु शाखाओं में लंबित, वायु-ललित किसलयों में भी मादकता है। मेरी नस—नस से आज करुण उल्लास की झंझा उत्थित हो रही है। मैं सचमुच उदास हूँ।

आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, वह क्या ऐसी ही बनी रहेगी? सम्राटों-सामंतों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था वह लुप्त हो गई, धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्घ समझा था, वह लुप्त हो गया; मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस-राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भाँति उड़ गई, क्या वह मध्य युग के कंकाल में लिखा हुआ व्यावसायिक युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुंठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ-न-कुछ लपेटकर ले जाएगी। सब बदलेगा, सब विकृत होगा—सब नवीन बनेगा।

भगवान बुद्ध ने मार-विजय के बाद वैरागियों की पलटन खड़ी की थी। असल में 'मार' मदन का ही नामांतर है। कैसा मधुर और मोहक साहित्य उन्होंने दिया। पर न जाने कब यक्षों के वज्रपाणि नामक देवता इस वैराग्यप्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गए। फिर वज्रयान नामक देवता इस वैराग्यप्रवण धर्म में घुसे और बोधिसत्वों के शिरोमणि बन गए। फिर वज्रयान का अपूर्व धर्म मार्ग प्रचलित हुआ। त्रिरत्नों में मदन देवता ने आसन पाया। वह एक अजीब आंधी थी। इसमें बौद्ध बह गए, शैव बह गए, शाक्त बह गए। उन दिनों 'श्री सुंदरीसाधनतत्पराणां योगश्च भोगश्च करस्थ एव' की महिमा प्रतिष्ठित हुई। काव्य और शिल्प के मोहक अशोक ने अभिचार में सहायता दी। मैं अचरज से इस योग और भाग की मिलन-लीला को देख रहा हूँ। ग्रह भी क्या जीवनी-शक्ति का दुर्दम अभियान था! कौन बताएगा कि कितने विध्वंस के बाद इस अपूर्व धर्म-मत की सृष्टि हुई थी? अशोक-स्तबक का हर फूल और हर दल इस विचित्र परिणति की परंपरा ढोए आ रहा है। कैसा झबरा-सा गुल्म है!

मगर उदास होना भी बेकार है। अशोक आज भी उसी मौज में हैं, जिसमें आज से दो हजार वर्ष पहले था। कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है। बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरंभ हो जाता—मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता—विज्ञान का सावेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता। हम पिस जाते। अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है। अशोक का फूल तो उसी मस्ती में फँस रहा है। पुराने चित्त से इसको देखने वाला उदास होता है। वह अपने को पंडित समझता है। पंडिताई भी एक बोझ है—जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती। कहाँ! अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूल रहा है! कालिदास इसका रस ले चुके थे—अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ—अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।

प्र.7. 'उत्तराफाल्गुनी के आसपास' निबन्ध का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर

निबन्ध : उत्तराफाल्गुनी के आसपास

वर्षा ऋतु की अंतिम नक्षत्र है उत्तराफाल्गुनी। हमारे जीवन में गदह—पचीसी सावन—मनभावन है, बड़ी मौज रहती है, परन्तु सत्ताइसवें के आते-आते घनघोर भाद्रपद के अशनि-संकेत मिलने लगते हैं और तीसी के वर्षों में हम विद्युन्मय भाद्रपद के काम, क्रोध और मोह का तमिस्त्र सुख भोगते हैं। इसी काल में अपने-अपने स्वभाव के अनुसार हमारी सिसृक्षा कृतार्थ होती है। फिर चालीसवें लगते-लगते हम भाद्रपद की अंतिम नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी में प्रवेश कर जाते हैं और दो-चार वर्ष बाद अर्थात् उत्तराफाल्गुनी के अंतिम चरण में जरा और जीर्णता की आगमनी का समाचार काल-तुरंग दूर से ही हिनहिनाकर दे जाता है। वास्तव में सृजन-संपृक्त, सावधान, सतर्क, सचेत और कर्मठ जीवन जो हम जीते हैं वह है तीस और चालीस के बीच। फिर चालीस से पैंतालीस तक उत्तराफाल्गुनी का काल है। इसके अंदर पग-निक्षेप करते ही शरीर की षटउर्मियों में थकावट आने लगती है, 'अस्ति, जायते, वर्धते'—ये तीन धीरे-धीरे शांत होने लगती हैं, उनका वेग कम होने लगता है और इनके विपरीत तीन 'विपतरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति' प्रबलतर हो उठती हैं, उन्हें प्रदोष-बल मिल जाता है, वे शरीर में बैठे रिपुओं के साथ साँठ-गाँठ कर लेती हैं और फल होता है, जरा के आगमन का अनुभव। पैंतालीस के बाद ही शीश पर काश फूटना शुरु हो जाता है, वातावरण में लोमड़ी बोलने लगती है, शुक और सारिका उदास हो जाते हैं, मयूर अपने शृंगार-कलाप का त्याग कर देता है और मानस की उत्पलवर्णा मारकन्याएँ चोवा-चंदन और चित्रसारी त्याग कर प्रव्रज्या का बल्कल-वसन धारण कर लेती हैं। अत: बचपन भले निर्मल-प्रसन्न हो, गदहपचीसी भले ही 'मधु-मधुनी-मधूनि हो; परन्तु जीवन का वह भाग, जिस पर हमारे जन्म लेने की सार्थकता निर्भर है, पच्चीस और चालीस या ठेल-ठालकर पैंतालीस के बीच पड़ता है। इसके पूर्व हमारे जीवन की भूमिका या तैयारी का काल है और इसके बाद 'फलागम' या 'निमीसिस' (Nemesis) की प्रतीक्षा है। जो हमारे हाथ में था, जिसे करने के लिए हम जन्मे थे, वह वस्तुत: घटित होता है पच्चीस और पैंतालीस के बीच। इसके बाद तो मन और बुद्धि के वानप्रस्थ लेने का काल है—देह भले ही 'एकमधु-दोमधु-असंख्य-मधु' साठ वर्ष तक भोगती चले। इस पच्चीस-पैंतालीस की अवधि में भी असल हीर रचती है तीसोत्तरी। तीसोत्तरी के वर्षों का स्वभाव शाण पर चढ़ी तलवार की तरह है, वर्ष-प्रतिवर्ष उन पर नई धार, नया तेज चढ़ता जाता है चालीसवें वर्ष तक। मुझे क्रोध आता है उन लोगों पर जो विधाता ब्रह्मा को बूढ़ा कहते हैं और चित्र में तथा प्रतिमा में उन्हें वयोवृद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं। मैंने दक्षिण भारत के एक मंदिर में एक बार ब्रह्मा की एक अत्यंत सुंदर तीसोत्तर युवा-मूर्ति को देखा था। देखकर ही मैं कलाकार की औचित्य-मीमांसा पर मुग्ध हो गया। जो सर्जक है, जो सृष्टिकर्ता है, वह निश्चय ही चिरयुवा होगा। प्राचीन या बहुकालीन का अर्थ जर्जर या बूढ़ा नहीं होता है। जो सर्जक है, पिता है, 'प्रॉफेट' है, नई लीक का जनक है, प्रजाता है, वह रूप-माधव काम-किशोर भले ही न हो, परन्तु वह दाँत-क्षरा, बाल-झरा, गलितम् पलितम् मुंडम् कैसे हो सकता है? उसे तो अनुभवी पुंगव तीसोत्तर युवा के रूप में ही स्वीकारना होगा। जवानी एक चमाचम धारदार खड्ग है। उस पर चढ़कर असिधाराव्रत या वीराचार करने वाली प्रतिभा ही पावक-दग्ध होठों से देवताओं की भाषा बोल पाती है। युवा अंग के पोर-पोर में फास्फोरस जलता है और युवा-मन में उस फास्फोरस का रूपांतर हजार-हजार सूर्यों के सम्मिलत पावक में हो जाता है। मेरी समझ से सृष्टिकर्ता की, कवि की, विप्लव नायक की, सेनापति की, शूरवीर की, विद्रोह की कल्पना श्वेतकेश वृद्ध के रूप में नहीं की जा सकती। अत: प्रजापति विधाता को सदैव तीस वर्ष के पट्ठे सुंदर, युवा के सुंदर रूप में ही कल्पित करना समीचीन है।

वास्तव में तीसवाँ वर्ष जीवन के सम्मुख फण उठाए एक प्रश्न-चिन्ह को उपस्थित करता है और उस प्रश्न-चिन्ह को पूरा-पूरा उसका समाधान-मूल्य हमें चुकाना ही पड़ता है। किसी भी पुरुष या नारी की कीर्ति-गरिमा, इसी प्रश्न-चिह्न की गुरुता और लघुता पर निर्भर करती है। गौतम बुद्ध ने उनतीस वर्ष की अवस्था में गृह त्याग कर अमृत के लिए महाभिनिष्क्रमण किया। यीशु क्राइस्ट ने तीस वर्ष की अवस्था में अपना प्रथम संदेश 'सरमन ऑन दी माउंट' (गिरिशिखर-प्रजनन) दिया था और तैंतीसवे वर्ष में उन्हें सलीब पर चढ़ा दिया गया। उनका समूचा उपदेश काल तीन वर्ष से भी कम रहा। वाल्मीकि के अनुसार रामचन्द्र को भी तीस के आसपास ही (वास्तव में 27 वर्ष की वयस में) वनवास हुआ था। उस समय सीता की आयु 18 वर्ष की थी और वनवास के तेरहवें वर्ष में अर्थात् सीता के तीसवाँ पार करते-करते ही सीताहरण की त्रासदी घटित हुई थीं अत: तीसवाँ वर्ष सदैव वरण के महामुहूर्त के रूप में आता है और संपूर्ण दशक उस वरण और तेज के दाह से अविष्ट रहता है। तीसोत्तर दशक जीवन का घनघोर कुरुक्षेत्र है। यह काल गदहपचीसी के विपरीत एक क्षुरधार काल है, जिस पर चढ़कर पुरुष या नारी अपने को अविष्कृत करते हैं, अपने मर्म और धर्म के प्रति अपने को साबित करते हैं तथा अपनी अस्तित्वगत महिमा उद्घाटित करते हैं अथवा कम-से-कम ऐसा करने का अवसर तो अवश्य पाते हैं। चालीसा लगने के बाद पैंतालीस तक 'यथास्थिति' की उत्तराफाल्गुनी चलती है। पर इसमें ही जीवन की

प्रतिकूल और अनुकूल उर्मियाँ परस्पर के संतुलित को खोना प्रारंभ कर देती हैं और प्राणशक्ति अवरोहण की ओर उन्मुख हो जाती है। इसके बाद अनुकूल उर्मियाँ स्पष्टत: थकहर होने लगती हैं और प्रतिकूल उर्मियाँ प्रबल होकर देह की गाँठ-गाँठ में बैठे रिपुओं से मेल कर बैठती हैं, मन हारने लगता है, सृष्टि अनाकर्षक और रति प्रतिकूल लगने लगती है, बुद्धि का तेज घट जाता है और वह स्वीकारपंथी होने लगती है एवं आत्मा की दाहक तेजीमयी शक्ति पर विकार का धूम्र छाने लगता है। मैं तो यहाँ पर पैंतालीसवें वर्ष की बात कर रहा हूँ। परन्तु मुझे स्मरण आती है दोस्तोव्हस्की—जिसने चालीस के बाद ही जीवन को धिक्कार दे दिया था—'मैं चालीस वर्ष जी चुका। चालीस वर्ष ही तो असली जीवन-काल है। तुम जानते हो कि चालीसवाँ माने चरम बुढ़ापा। दरअसल चालीस से ज्यादा जीना असभ्यता है, अश्लीलता है, अनैतिकता है। भला चालीस से आगे कौन जीता है? मूर्ख लोग और व्यर्थ लोग' ('नोट्स फ्रॉम अंडर ग्राउंड' से) दोस्तोव्हस्की की इस उक्ति का यदि शाब्दिक अर्थ न लिया जाए तो मेरी समझ से इसका यही अर्थ होगा कि चालीस वर्ष के बाद जीवन के सहज लक्षणों का, परिवर्तन-परिवर्धन-सृजन का आत्मिक और मानसिक स्तरों पर ह्रास होने लगता है। पर मैं 'साठा तब पाठा' की उक्तिवाली गंगा की कछार का निवासी हूँ, इसी से इस अवधि को पाँच वर्ष और आगे बढ़ाकर देखता हूँ, यद्यपि दोस्तोव्हस्की की मूल थीसिस मुझे सही लगती है। शक्तिक्षय की प्रक्रिया चालीस के बाद ही प्रारंभ हो जाती है, यद्यपि वह अस्पष्ट रहती है।

मैं इस समय 1972 ई० अपना अड़तीसवाँ पावस झेल रहा हूँ। पूर्वाफाल्गुनी का विकारग्रस्त यौवन जल पी-पीकर मैं 'क्षिप्त' से भी आगे एक पग 'विक्षिप्त' हो चुका हूँ और शीघ्र ही मोहमूढ़ होने वाला हूँ! भाद्र की पहली नक्षत्र है मघा। मघा में अगाध जल है। पृथ्वी की तृषा आश्लेषा और मघा के जल से ही तृप्त होती है। यदि मघा में धरती की प्यास नहीं बुझी तो उसे अगले संवत्सर तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। न केवल परिमाण में, बल्कि गुण में भी मघा का जल श्रेष्ठ है। मघा-मेष की झड़ी झकोर का स्तव-गान कवि और किसान दोनों खूब करते हैं—'बरसै मघा झकोरि-झकोरी। मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।' मघा बरसी, मानो दूध बरसा, मधु बरसा। इस मघा के बाद आती है पूर्वाफाल्गुनी जो बड़ी ही रद्दी-कंडम नक्षत्र है। इसका पानी फसल जायदाद के लिए हानिकारक तो है ही, उत्तर भारत में बाढ़-वर्षा का भय भी सर्वाधिक इसी नक्षत्र-काल में रहता है। इसी से उत्तर भारतीय गंगातीरी किसान इसे एक कीर्तिनाशा-कर्मनाशा नक्षत्र मानते हैं। इसके बाद आती है उत्तराफाल्गुनी, भाद्रपद की अंतिम नक्षत्र, जो समूचे पावस में मघा के बाद दूसरी उत्तम नक्षत्र है। इसका पानी स्वास्थ्यप्रद और सौभाग्यकारक होता है। इस अड़तीसवें पावस में अपने जीवन का पूर्वाफाल्गुनी काल भोग रहा हूँ, यद्यपि साथ-ही साथ द्वार पर उत्तराफाल्गुनी का आगमन भी देख रहा हूँ। चालीस आने में अब कितनी देर है।

अत: आज पूर्वाफाल्गुनी का अंतिम पानपात्र मेरे होठों से संलग्न है। क्रोध मेरी खुराक है, लोभ मेरा नयन-अंजन है और काम-भुजंग मेरा क्रीड़ा-भुजंग मेरा क्रीड़ा-सहचर है। इनको ही मैं क्रमश: विद्रोह, प्रगति और नवलेखन कहकर पुकारता हूँ। भले ही यह विकार-जल हो, भले ही इसमें श्रेय-प्रेय, गति-मुक्ति कुछ भी न हो। परन्तु इसमें जीर्णता और जर्जरता नहीं। यह जरा और वृद्धत्व का प्रतीक नहीं। पूर्वाफाल्गुनी द्वारा प्रदत्त विक्षिप्तता भी यौवन का ही एक अनुभव है। मुझे लग रहा था कि मेरे भीतर कोई उपंग बजा रहा है क्योंकि मेरे सम्मुख द्वार पर काल-नट्टिन अर्थात् उत्तराफाल्गुनी त्रिभग रूप में खड़ी है और मैं उसमें मार की तीन कन्याओं तृषा-रति-आर्ति को एक साथ देख रहा हूँ। कांचनपद्म कांति, कर-पल्लव, कुणितकेश, बिंबाधर, विशाल बंकिम भ्रू, दक्षिणावर्त नाभि और त्रिवली रेखा से युक्त इस भुवन-मोहन रूप को मैं देख रहा हूँ और इसको आगमनी में अपने भीतर बजती उपंग को निरंतर सुन रहा हूँ। उपंग एक विचित्र बाजा है। काल-पुरुषों की उँगलियाँ चटाक-चटाक पड़ती है और आहत नाद का छंदोबद्ध रूप निकलता है बीच-बीच में हिचकी के साथ।

यह हिचकी भी उसी काल-विदूषक की भँड़ैती है और यह उपंग के तालबद्ध स्वर को अधिक सजीव और मार्मिक कर देती है। मैं अपने भीतर बजते यौवन का यह उपंग-संगीत सुन रहा हूँ और अपने मनोविकारों का छककर पान कर रहा हूँ। मुझे कोई चिंता नहीं। अभी वानप्रस्थ का शरद काल आने में काफी देर है। इस क्षण उसकी क्या चिंता करूँ? इस क्षण तो बस मौज ही मौज है, भले ही वह कटुतिक्त मौज क्यों न हो; काम भुजंग के डँसने पर तो नीम भी मीठी लगती है। अत: यह काल-नटी, यह पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी, यह 'नैनाजोगिन' कितनी भी भ्रान्ति, माया या मृगजल क्यों न हो, मैं इसके रूप में आबद्ध हूँ। इसमें मुझे वही स्वाद आ रहा है जो मायापति भगवान को अपनी माया के काम मधु का स्वाद लेते समय प्राप्त होता है और जिस स्वाद को लेने के लिए वे परमपद के भास्वर सिंहासन को छोड़कर हम लोगों के बीच बार-बार आते हैं। अत: इस समय मुझे कोई चिंता, कोई परवाह नहीं।

परन्तु एक न एक दिन वह क्षण भी निश्चय ही उपस्थित होगा जिसकी शृंगारहीन शरद यवनिका के पीछे जीर्ण हेमंत और मृत्युशीतल शिशिर की प्रेतछाया झलकती रहेगी। उस दिन, तुम क्या करोगे? है तुम्हारे पास कोई बीज-मंत्र, कोई टोटका, कोई धारणी-मंत्र जिससे तुम अगले बीस-बाईस वर्षों के लिए इस उत्तराफाल्गुनी के पगों को स्तंभित कर दो और वह अगले बीस-बाईस वर्ष तुम्हारे द्वारदेश पर, शिथिल दक्षिण चरण, ईषत कुंचित जानु के साथ आभंग मुद्रा में नतग्रीव खड़ी रहे और तुम्हारे हुकुम की प्रतीक्षा करती रहे? है कोई ऐसा जीवन-दर्शन, ऐसा सिद्धाचार, ऐसी काया सिद्धि जिससे बाहर-बाहर शरद-शिशिर, पतझार-हेमंत आएँ और जूझते-हार खाते चले जाएँ।

परन्तु मनस की द्वार-देहरी पर यह उत्तराफाल्गुनी एक रस साठ वर्ष की आयु तक बनी रहे? है कोई ऐसा उपाय? यह प्रश्न रह-रहकर मैं स्वयं अपने ही से पूछता हूँ। आज से तेरह वर्ष पूर्व भी मैंने इस प्रश्न पर चिंता की थी और उक्त चिंतन से जो समाधान निकला, उसे मैंने कार्य-रूप में परिणत कर दिया। परन्तु इन तेरह वर्षों में असंख्य भाव-प्रतिभाओं के मुंडपात हुए हैं और आज मैं मूल्यों के कबंध-वन में भाव-प्रतिभाओं के केतु-कांतार में बैठा हूँ। आज जगत् वही नहीं रहा जो तेरह वर्ष पूर्व था। एक ग्रीक दार्शनिक की उक्ति है कि एक नदी में हम दुबारा हाथ नहीं डाल सकते क्योंकि नदी की धार क्षण-प्रतिक्षण और ही और होती जा रही है। काल-प्रवाह भी एक नदी है और इसकी भी कोई बूंद स्थिर नहीं। अत: शताब्दी के आठवें दशक के इस प्रथम चरण में मुझे उसी प्रश्न को पुन:-पुन: सोचना है-कैसे जीर्णता या जरा को, यदि संपूर्णत: जीतना असंभव हो तो भी फाँकी देकर यथासंभव दूरी तक वंचित रखा जाए? कैसे अपने दैहिक यौवन को नहीं, तो मानसिक यौवन को ही निरंतर धारदार और चिरंजीवी रखा जाए? उस दिन तो मैंने सीधा-सीधा उत्तर ढूँढ़ निकाला था— 'ययाति की तरह पुत्रों से यौवन उधार लेकर।' अर्थात् मैं कोई नौकरी न करके कॉलेज में अध्यापन करूँ तो मुझे पचपन या साठ वर्ष की आयु तक युवा शिष्य-शिष्याओं के मध्य वास करने का अवसर सुलभ होगा।

मैं इनकी आशा-आकांक्षा, उत्साह, साहस, उद्यमता आदि से वैसे ही अनुप्राणित और आविष्ट रहूँगा जैसे चुंबकीय आकर्षण-क्षेत्र में पड़कर साधारण लोहा भी चुंबक बन जाता है। परन्तु विगत दशक के अंतिम दो वर्षों में जब मेरे ये बालखिल्य सहचरगण छिन्नमस्ता राजनीति के रंगरूट बनने लगे, जब इन्होंने मेरे गुरुओं, गांधी, विवेकानंद, विद्यासागर, सर आशुतोष, की प्रतिमाओं का एवं उनके द्वारा प्रतिपादित मूल्यों का, अनर्गल मुंडपात करना शुरु कर दिया, जब इनके नए दार्शनिकों ने कहना प्रारंभ किया कि अध्यापक और छात्र के बीच भी श्रेणी-शत्रुओं का संबंध है क्योंकि अध्यापक भी स्थापित व्यवस्था का एक अंग है और 'व्यवस्था' का भंजन ही श्रेष्ठतम पुरुषार्थ है, तब देश में घटित होती हुई इन घटनाओं पर विचार करके और क्रांति तथा 'नई पीढ़ी' के दार्शनिकों—यथा हिबर्ट मारक्यूज, चेग्वारा, ब्रैंडिटकोहन आदि की चिंतनधारा से यथासंभव अल्प स्वल्पे परिचय पा करके मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मैं इन अपने भाइयों, अपने हृदय के टुकड़ों के साथ जो आज छिन्नमस्ता राजनीति के रंगरूट हैं, कुछ ही दूर तक, आधे रास्ते ही जा सकता हूँ। विविध प्रकार के नारों से आक्रांत ये नए 'पुरुरवा' ('पुरुरवा' का शब्दार्थ होता है 'रवों', (आवाजों या नारों) से आक्रांत' या पूरित पुरुष। 'ययाति' पुरानी पीढ़ी का प्रतीक है तो पुरूरवा नई पीढ़ी का।) यदि मुझे यौवन उधार देंगे भी तो बदले में मुझे भी कबंध में रूपांतरित होने को कहेंगे। और मैं कैसे अपना चेहरा, अपनी आत्म-सत्ता, अपना व्यक्तित्व त्याग दूँ? 'छिन्नमस्त' पुरुष बनकर यौवन लेने से क्या लाभ? बिना मस्तक के बिना अपने निजी नयन-मुख-कान के इस उधार प्राप्त नवयौवन का नया अर्थ होगा? रूप, रस, गंध और गान से वंचित रह जाऊँगा। केवल शिश्नोदरवाला व्यक्तित्व लेकर कौन जीवन-यौवन भोगना चाहेगा? कम-से-कम बुद्धिजीवी तो नहीं ही। आत्मार्थ पृथिवी त्यजेत? अत: मुझे चिरयौवन को इन शिष्य-पुरूरवाओं की नई पीढ़ी से दान के रूप में नहीं लेना है। तेरह वर्ष पहले का चिंतित समाधान आज व्यर्थ सिद्ध हो गया है। मुझे अन्यत्र चिरयौवन का अनुसंधान करना होगा। जो बाहर-बाहर अप्राप्य है वह सब-कुछ भीतर-भीतर सुलभ है। मैं अपने ही हृदय समुद्र का मंथन करके प्राण और अमृत के स्रोत किसी चन्द्रमा को आविष्कृत करूँगा। तेरह वर्ष पुराना समाधान आज काम नहीं आ सकता।

मैं मानता हूँ कि समाज और शासन में शब्दों के व्यूह के पीछे एक कपट पाला जा रहा है। मैं बालखिल्यों के क्रोध की सार्थकता को स्वीकार करता हूँ। पर साथ ही छिन्नमस्ता शैली के सस्ते रंगांध और आत्मघाती समाधान को भी मैं बेहिचक बिना शील-मुरौवत के अस्वीकार करता हूँ। अपना मस्तक काटकर स्वयं उसी का रक्त पीना तंत्राचार-वीराचार हो सकता है परन्तु यह न तो क्रांति है और न समर। पुरानी पीढ़ी का चिरयक्षत्व मुझे भी अच्छा नहीं लगता। मैं भी चाहता हूँ कि वह पीढ़ी अब खिजाब-आरसी का परित्याग करके संन्यास ले ले। शासन और व्यवस्था के पुतली घरों की मशीन-कन्याएँ उनकी बूढ़ी उँगलियों के सूत्र-संचालन से ऊब गई हैं और उनकी गति में रह-रह कर छंद-पतन हो रहा है। यह बिल्कुल न्याय-संगत प्रस्ताव है कि पूर्व पीढ़ी अपनी मनुस्मृति और

कौपीन बगल में दबाकर पुतलीघर से बाहर हो जाए और नई पीढ़ी को, अर्थात् हमें और हमारे बालखिल्यों को अपने भविष्य के यश-अपयश का पट स्वयं बुनने का अवसर दे जिससे वे भी अपने कल्पित नक्शे, अपने अर्जित हुनर को इस कीर्तिपट पर काढ़ने का अवसर पा सकें। यह सब सही है। परन्तु क्या इन सब बातों की संपूर्ण सिद्धि के लिए इस पुतलीघर का ही अग्निदाह, पुरानी पीढ़ी द्वारा बुने कीर्तिपट के विस्तार का दाह, उनके श्रम फल का तिरस्कार आदि आवश्यक है? क्या ऐसा सब करना एक आत्मघाती प्रक्रिया नहीं? इस स्थल पर डॉ० राधाकृष्णन या आचार्य विनोबा भावे की राय को उद्धृत करूँ तो वह क्रांति के इन 'दुग्ध कुमारों' के लिए कौड़ी की तीन ही होगी। अत: मैं लेनिन जैसे महान क्रांतिकारी की राय उद्धृत कर रहा हूँ। 1922 ई० में लेनिन ने लिखा था, 'उस सारी सभ्यता-संस्कृति को जो पूँजीवाद निर्मित कर गया है, हमें स्वीकार करना होगा और उसके द्वारा ही समाजवाद गढ़ना होगा। पूर्व पीढ़ी के सारे ज्ञान, सारे विज्ञान, सारी यांत्रिकी को स्वीकृत कर लेना होगा। उसकी सारी कला को स्वीकार कर लेना होगा... हम सर्वहारा संस्कृति के निर्माण की समस्या तब तक हल नहीं कर सकते जब तक यह बात साफ-साफ न समझ लें कि मनुष्य जाति के सारे विकास और संपूर्ण सांस्कृतिक ज्ञान को आहरण किए बिना यह संभव नहीं, और उसे समझ कर सर्वहारा संस्कृति की पुनर्रचना करने में हम सफल हो सकेंगे। 'सर्वहारा संस्कृति' अज्ञात शून्य से उपजने वाली चीज नहीं और न यह उन लोगों के द्वारा गढ़ी ही जा सकती है जो सर्वहारा संस्कृति के विशेषज्ञ विद्वान कहे जाते हैं। ये सब बातें मूर्खतापूर्ण हैं। इनका कोई अर्थ नहीं होता। 'सर्वहारा संस्कृति' उसी ज्ञान का स्वाभाविक सहज विकास होगी जिसे पूँजीवादी, सामंतवादी और अमलातांत्रिक व्यवस्थाओं के जुए के नीचे हमारी संपूर्ण जाति ने विकसित किया है। यह बात स्वामी दयानंद या पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की होती तो बड़ी आसानी से कह सकते 'मारो गोली! सब बूर्ज्वा बकवास है। पर कहता है क्रांतिकारियों का पितामह लेनिन, जिसे एक कट्टर बंगाली मार्क्सवादी नीरेंद्रनाथ राय ने अपनी पुस्तक 'शेक्सपियर-हिज ऑडिएंस' के पृष्ठ (40-50) पर उद्धृत किया है। आज प्राय: लोग पुकारकर कहते हैं—'देखो, देखो जोखिम उठा रहा हूँ, मूल्य भंजन कर रहा हूँ। अरे बंधु, जोखिम उठा रहे हो या नाम कमा रहे हो? यह तो आज अपने को प्रतिष्ठित बनाने और जाग्रत सिद्ध करने का सबसे सटीक तरीका 'शॉर्टकट' यानी तिरछा रास्ता है। जोखिम तुम नहीं उठा रहे हो तुम तो धार के साथ बह रहे हो और यह बड़ी आसान बात है। आज जोखिम वह उठा रहा है जो नदी की वर्तमान धारा के प्रतिकूल, धार के हुकुम को स्वीकारते हुए कह रहा है—'मूल्य भी क्या तोड़ने की चीज है जो तोड़ोगे? वह बदला जा सकता है तोड़ा नहीं जा सकता। मूल्य स्थिर या सनातन नहीं होता, यह भी मान लेता हूँ। परन्तु एक अविच्छिन्न मूल्य-प्रवाह, एक सनातन मूल्य-परंपरा का अस्तित्व तो मानना ही होगा।' नए बालखिल्य दार्शनिक कहेंगे - 'यह धारा के विपरीत जाना हुआ। यह तो प्रतिक्रियावाद है।' ऐसी अवस्था में मेरा उन्हें उत्तर है—'कभी-कभी नदी की धारा पथभ्रष्ट भी हो जाती है। वह सदैव प्रगति की दिशा में ही नहीं बहती। वह स्वभाव से अधोगति की ओर जाने वाली होती है। और आज? आज तो वन्याकाल है। वन्याकाल में धारा पथभ्रष्ट रहती है। वह कर्मनाशा-कीर्तिनाशा-कालमुखी बनकर हमारे गाँव को रसातल में पहुँचाने आ रही है।

अत: इस क्षण हमारी प्यारी नदी ही शत्रुरूपा हो गई है। और यदि गाँव को बचाना है तो हम धार के प्रतिकूल समर करेंगे। यदि हम अपना घर-द्वार फूँककर तमाशा देखकर मौज लेने वाले आत्मभोगी 'नीरो' की संतानें नहीं है तो हमें इस नदी से समर करना ही होगा। यही हमारी जिजीविषा की माँग है। और इसके प्रतिकूल जो कुछ कहा जा रहा है, वह 'नई पीढ़ी' की बात हो या पुरानी की, मुमुक्षा का मुक्ति भोग है। यह सब विद्रोह नहीं बूर्ज्वा डेथविश का नया रूप है।'

अत: मैं धार के साथ न बहकर अकेले-अकेले अपने अंदर की अमृता कला का आविष्कार करने को कृत संकल्प हूँ। बिना रोध के, बिना तट के जो धार है वह कालमुखी वन्या है, रोधवती और तटिनी नहीं। यों यह तो मैं मानता ही हूँ कि सर्जक या रचनाकार के लिए 'नॉनकनफर्मिस्ट' होना जरूरी है। इसके बिना उसकी सिसृक्षा प्राणवती नहीं हो पाती और नई लीक नहीं खोज पाती। अत: मुझे भी विद्रोही दर्शनों से अपने को किसी न किसी रूप में आजीवन संयुक्त रखना ही है। एक लेखक होने के नाते यही मेरी नियति है और इस तथ्य को अस्वीकृत करने का अर्थ है-अपनी सिसृक्षा की सारी संभावनाओं का अवरोध। परन्तु लेखक, कवि या किसी भी साहित्येतर क्षेत्र के सर्जक या विधाता को यह बात भी गाँठ में बाँध लेनी चाहिए कि शत-प्रतिशत अस्वीकार या 'नॉनकनफर्मिज्म' से भी रचना या सृजन असंभव हो जाता है। पुराने के अस्वीकार से ही नए का आविष्कार संभव है, यह कुछ हद तक ठीक है। परन्तु नए भावों या विचारों के 'उद्गम' के बाद 'उपकरण' या अभिव्यक्ति के साधन का प्रश्न उठता है और इसके लिए 'नॉनकनफर्मिज्म' को त्यागकर पचहत्तर प्रतिशत पुराने उपकरणों में से ही निर्वाचित-संशोधित करके कुछ को स्वीकार कर लेना होता है। रचना की 'आइडिया' के आविष्कार के लिए तो अवश्य 'विद्रोही मन' चाहिए। परन्तु रचना का कार्य (प्रोसेस) आइडिया के आविष्कार के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। रचना-प्रक्रिया में 'स्वीकारवादी मन' की भी उतनी ही आवश्यकता है। अन्यथा

'आइडिया' या ज्ञान का 'क्रिया' में रूपांतर संभव नहीं। अत: प्रत्येक सर्जक या विधाता, जीवन के चाहे जिस क्षेत्र की बात हो, 'विद्रोही' और 'स्वीकारवादी' दोनों साथ ही साथ होते हैं। 'शत-प्रतिशत अस्वीकार' के फैशनेबुल दर्शन के प्रति मेरा आक्षेप यह भी है कि यह एक स्वयं आरोपित 'नो एक्जिट' (द्वारा या वातायन रहित अवरुद्ध कक्ष) है, इसको लेकर बहुत आगे तक नहीं जाया जा सकता है। यह दर्शन विषय और विधा दोनों की नकारात्मक सीमा बाँधकर बैठा है और इसके द्वारा अपने 'स्व' को भी पूरा-पूरा नहीं पहचाना जा सकता है; तो 'स्व' से बाहर, इतिहास और समाज को समझने की तो बात ही नहीं उठती। यह 'शत-प्रतिशत अस्वीकार' का दर्शन कभी अस्तित्ववाद का चेहरा लेकर आता है तो कभी नव्य मार्क्सवाद का (क्लासिकल मार्क्सवाद से भिन्न); और ये दोनों मानसिक-बौद्धिक स्तर पर मौसेरे भाई हैं। ये एक ही ह्रासोन्मुखी संस्कृति की संतानें हैं। योगशास्त्र में मन की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं—क्षिप्त, विक्षिप्त, विमूढ़, निरुद्ध और आरूढ़। ये दोनों दर्शन विमूढ़ स्थिति के दो भिन्न संस्करण हैं, अतः दोनों त्याज्य हैं।

यह बाढ़-वन्या का काल है। नदी अपनी दिशा भूलकर, कुल छोड़कर उन्मुक्त हो गई है, अत: बुद्धजीवी वर्ग से धीरता और संयम अपेक्षित है। घबराकर वन्या की पथभ्रष्ट धार के प्रति आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा जल के उत्तरण, वन्या के 'उतार' की प्रतीक्षा करना अधिक उचित है। पानी हटने पर नदी फिर कुलों के बीच लौट जाएगी। नदी अपनी शय्या यदि बदल भी दे, तो भी नई शय्या के साथ कोई कुल, कोई अवरोध तो उसे स्वीकार करना ही होगा। यह नया कुल भी उसी पुराने कुल के ही समानान्तर होगा। नदी तब भी समुद्रमुखी ही रहेगी। उलटकर हिमाचलमुखी कभी नहीं हो सकती। अत: इस वन्या नाट्य के विष्कंभक के बीच का समय मैं न तो बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ और न बहुत चिंताजनक। मैं बिल्कुल अविचलित हूँ। मेरा विश्वास है कि कल नहीं तो परसों हम अर्थात पुरानी पीढ़ी का युवा और मेरे बालखिल्य छात्र-छात्राएँ अर्थात नई युवा पीढ़ी, दोनों मिलकर इस शासन एवं व्यवस्था के पुतलीघर की नृत्य कन्याओं के कत्थक नृत्य को साथ-साथ संचालित करेंगे। यह पुतलीघर ऐसा है कि इसमें अनुशासित संयमित तालबद्ध कत्थक ही चल सकता है। अन्यथा जरा भी छंद पतन होने पर कोई न कोई भयावह पुतली एक ही झपट्टे में हड्डी आँत तक का भक्षण कर डालेगी क्योंकि इन पुतलियों में से कोई-कोई विषकन्याएँ भी हैं। अत: मैं चेष्टा करूँगा कि अपने अंदर की अमृता कला का आविष्कार करके इस उत्तराफाल्गुनी काल को बीस-बाइस वर्ष के लिए अपने अंतर में स्थिर अचल कर दूँ, बाहर-बाहर चाहे शरद बहे या निदाघ हू-हू करे। तब मैं अपने बालखिल्य सहचरों के साथ व्यवस्था की इन पुतलियों का छंदोबद्ध नृत्य भोग सकूँगा। और एक दिन वह भी आएगा जब कोई चिल्लाकर मेरे कानों में कहेगा 'फाइव ओ' क्लाक! पाँच बज गए! कोई मेरे शीश पर घंटा बजा जाएगा, कोई मेरे हृदय में बोल जायेगा—'बहुत हुआ। बहुत भोगा। अब नहीं। अब, अहं अमृतं इच्छामि। अहं वानप्रस्थ चरिष्यामि।' और तब मैं व्यवस्था के पुतलीघर की इन यंत्रकन्याओं से माफी माँगकर उत्तर-पुरुष की जय जयकार बोलते हुए मंच से बाहर आ जाऊँगा और अपने को विसर्जित कर दूँगा लोकारण्य में, खो जाऊँगा अपरिचित, वृक्षोपम, अवसर प्राप्त, रिटायर्ड स्थाणुओं के महाकांतार में। पर अभी नहीं। अभी तो मैं विश्वेश्वर के सांड़ की तरह जवान हूँ।

प्र.8. तुम चन्दन हम पानी निबन्ध का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर

निबन्ध : तुम चंदन हम पानी

घर में पिताजी और दो पितृव्य पूजा-पाठ बहुत निष्ठापूर्वक करते हैं, इसलिए तीन होरसे तो कम-से-कम घर में हैं ही प्रतिदिन इन पर चंदन और प्राय: मलयागिरि चंदन ही घिसा जाता है। रक्तचंदन या देवी चंदन तो नवरात्र में या रविवार को ही इन होरसों पर घिसता है। इसलिए चंदन से बड़ी पुरानी जान-पहचान है। पाँच-छ: वर्ष का था, मैं अपने बड़े पितृव्य के पास जाकर चुपचाप बैठ जाता था और उनका महिम्न स्त्रोत पूर्वक चंदन घिसना देखा करता था। पूजा उनकी घण्टों चलती थी। बीच-बीच में किसी वस्तु की आवश्यकता हुई, तो वे देव भाषा में ही संकेत करते और मैं ला देता। पूजा समाप्त होने पर गौरी, गणेश, पार्थिव शिव, एकादश रुद्र और श्री दुर्गासप्तशती तथा श्रीमद् भागवत पर चढ़ने से जो चंदन अवशिष्ट रहता था, उसको पितृव्य मेरे भाल पर या ग्रीवा में चर्चित करते और तब अपने भाल पर तिलक लगाते। इसके बाद प्रसाद देते, जिसके लोभ से मैं इतनी देर तक बैठा रहता था। उस चंदन-तिलक से भाल चर्चित करने के सुअवसर अब नहीं मिलते, पर उसकी सुरभि मन में यत्न से सुरक्षित है। कारण शायद यह हो कि जो उस समय मेरी जिज्ञासा के समाधान में पितृव्य चरण ने बतलाया था कि चंदन अपने-आप घिसकर बिना देवता को चढ़ाये अपने सिर पर लगाने से पाप होता है, उस वाक्य के पीछे युग की शिक्षा पर संघृष्ट महान सत्य की पावन स्मृति हो कि मनुष्य को अपने जीवन-संघर्ष से सुरभि अर्जित करने का अधिकार तभी मिलता है, जब वह अर्पित भाव से संघर्ष में रत होता है। या शायद चंदन के आमोद में पार्थिव आनंद के चरम उत्कर्ष की प्राप्ति होने के कारण जगदात्मा की उस चंदन से एकाकारता का भान

हो, जिससे प्रेरित होकर किसी संत कवि ने गाया था—'प्रभुजी तुम चंदन हम पानी' या शायद चंदन के तिलक से उभरे हुए उन गुरुजनों के व्यक्तित्व की मन पर गहरी छाप हो। बहराल, भाल चंदन-चर्चित हो न हो, मन मलयज से अब भी सुवासित है।

सोचता हूँ प्रभुजी चंदन क्यों हैं? हम जिनके प्रति अपने को अर्पित कर रहे हैं, उन्हें अपने जीवन के साथ घिसने में सार्थकता क्या है? मुझे कभी-कभी तब यह ध्यान आता है कि काठ के टुकड़े की तरह सामान्य रूप से हमारे अंतस् के कोने में पड़ा हुआ चिदंश जब तक हमारे जीवन के साथ सम्पृक्त नहीं होता, तब तक वह निर्गुण, निरामोद और निर्व्यक्त बना रहता है ज्यों ही वह इस पार्थिव शरीर के शिलाखंड पर जीवन के छिड़काव से बार-बार रगड़ खाने लगता है, त्यों ही उसका गुण, उसका आमोद और उसका चैतन्य अभिव्यक्त हो उठते हैं। विश्वात्मा की सुषुप्त शक्ति स्फुरित हो जाती है। पर जो अभागा आदमी इस चंदन को घिसकर अपनी प्रेयसी का अंगराग बना डालता है, या अपने शारीरिक ताप का उपशम-साधन मात्र समझने लगता है, उसका जागरित, परिस्फुरित और प्रमुदित चिदंश पुन: उसकी प्रिया की विलास श्रमबिंदुओं या उसकी ही कायिक, मलिनताओं में घुलकर विलुप्त हो जाता है। जब विश्वात्मा के आनंद का वह लव कायिक धरातल से सुरभिकण के रूप में ऊपर उठता है तब चराचर विश्व में अभिव्याप्त आनंद-पारावार से एक होने के लिए, इसलिए इस सुरभि के अभ्युत्थान की सार्थकता इस पूर्णता की प्राप्ति में है, पूर्णता की प्राप्ति अर्थात् एकांशिता से विमुक्त।

नए मानवीय मानों पर बल देने वाले अभिनव मलयानिलों से मैंने यह संकेत पाया है कि मनुष्य महान है, वह दूसरे किसी महत्तर के प्रति अर्पित क्यों हो। भुजंगों से लिपटा हुआ चंदन का वृक्ष ही स्वत: महान है, वह आस-पास के कंकोल, निम्ब और कुटुज तक को चंदन बना डालता है। विषयों से परिवृत मानव अपने यश से अपने परिवेश में प्रत्येक युग में सुरभि भरता आया है, उसे अर्पित होने की क्या आवश्यकता है। ये मलयानिल दक्षिण से नहीं पश्चिम से आए हैं, अर्थात् दाएँ से नहीं पीछे से आए हैं। इनकी पुकार इसलिए पीछे मुड़कर सुनने की सबके मन में उत्कंठा-सी जग जाती है। सबसे बड़ा सृष्टि में मूर्धन्य कौन है? यह मनुष्य है। वह तब क्यों स्फीत होकर न चले, क्यों वह विनीत होने को विवश हो?

इस प्रश्न का उत्तर देने का साहस कौन करे? मुझे तो जयदेव के प्रसिद्ध विरह-गीत की कड़ियाँ बरबस याद आ जाती हैं—

निंदति चंदनमिंदुकिरणमनुविंदति खेदमधीर
व्यालनिलयमिलनेनगरलमिव कलयति मलयसमीर
सा विरहे तव दीना
माधव मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना

माधव के विरह में राधा अंग में आलिप्त चंदन को अधिक्षिप्त करती हैं और चन्द्रमा की शीतल किरणों से दु:ख पाती हैं। सर्पों के वास से सम्पर्क होने के कारण मलय-समीर को विषतुल्य अनुभव करने लगती हैं, क्योंकि ये माधव के विरह में दी हैं और पुष्पधंवा के बाणों से भयभीत होकर भावना के द्वारा माधव में ही लीन होने का उपाय रच रही हैं। तो ऐसा समय भी आता है, जब चंदन की निंदा होती है, जब माधव, अपने प्रत्यगात्मा, अपने पारमार्थिक रूप, अपनी विश्वप्रसृत क्षमता और अपने आदर्श से बिछुड़ जाते हैं, मलयज का मान तभी है, जब मलयज भारवाही पवन सागर-प्रक्षालित चरणों से हिम मण्डित मुकुट तक उत्तर यान के लिए ललित गति से सतत् प्रवहमान है। चंद्रिका का मान तभी है, जब मन में अविकल और पूर्ण काम चन्द्रप्रकाश मान है, मनुष्य का गौरव भी तभी है जब वह अपने आज में अधिष्ठित है। जिस क्षण वह आत्म-विश्लिष्ट हो जाता है, उस क्षण वह अत्यंत हेय बन जाता है। इसलिए जब वह अपने को परात्पर के लिए अर्पित करता है, तब उस समय वह सचमुच बिकता नहीं है। उल्टे उसी समय उसका गिरा हुआ मूल्य एकदम ऊँचे चढ़ जाता है क्योंकि उसके लघुतर और क्षुद्रतर अंश स्वयं उसी के बृहत्तर और महत्तर अंशी के प्रति प्रणत होते ही उसे बृहत्तर और महत्तर सत्ता से एकाकार कर देते हैं। जो नर के नियत भावी उत्कर्ष में विश्वास करेगा, वही नारायण में भी विश्वास करेगा क्योंकि 'नराणां नरोत्तम' और नारायण दोनों वंदनीयता की समान कोटि में आते हैं। 'नार' का अर्थ पुराणों और स्मृतियों में जल अर्थात आदि सृष्टि कहा गया है, इस आदि सृष्टि में अभिव्याप्त सत्ता का नाम ही नारायण कहा गया है। इसलिए नरों में जो नरोत्तम होना चाहता है, उसे स्वभावत: नारायाभिमुख होना ही पड़ता है, क्योंकि नर का अर्थ ही है अपने में सिमटा हुआ। जिन लोगों ने मनुष्य मात्र को नमो नारायण कहकर प्रणाम करने की परंपरा चलायी, वे मनुष्य की अंतर्निहित शक्ति के सबसे बड़े दृष्टा थे, वे मनुष्य के विस्तार शील रूप को आवाहित करना जानते थे, इसलिए सामान्य से सामान्य जन को देखकर वे यही कहते थे, नारायण को नमस्कार है, तुम्हारे अंदर जो विश्व-भावना तत्त्व है, उसे नमस्कार करता हूँ ताकि वह तत्त्व तुम्हारी क्षुद्रता और संकीर्णता के बहिरावण को फोड़कर बाहर आए।

शायद कुछ लोग 'प्रभुजी हम चंदन तुम पानी' कहकर मानव की क्षुद्रता और दुर्बलता को गौरव देना चाहें और कहें कि जरा-सा-उलट दिया, बात तो वही है, चाहे खरबूजा गिरे छुरी पर या छुरी गिरे खरबूजे पर, खरबूजे का कटना अवश्यम्भावी है,

चाहे प्रभुजी चंदन हों और हम पानी हों चाहे हम चंदन हों, प्रभुजी पानी हों, घिसना तो अवश्यम्भावी है, तो उनका तर्क तो बहुत ठीक है; परन्तु चंदन तब नहीं घिसेगा। तो जरा-सा हमारा पानी लगता है और प्रभु का चंदन पसीज जाता है; पर हमारे छोटा-सा चंदन प्रभु के अपार कृपा सिंधु में होरसा समेत बह निकलेगा, फिर चंदन घिसने की बात भी समाप्त हो जाएगी। इस सम्भावना को वे लोग एकदम भूल जाते हैं वस्तुत: छोटाई-बड़ाई की यह सापेक्षता किसी बाहरी वस्तु की तुलना में नहीं की गई है। प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने में ही छोटाई-बड़ाई दोनों से समवेत है और दोनों की सापेक्षता अपने में ही वह अल्प-मात्र आयास से अनुभव कर सकता है।

मेरे बड़े दादा मिट्टी सानकर पार्थिव शिव की सुंदर आकृति बनाते, उनके आस-पास मिट्टी का ही गौरी गणेश रचते और चारों ओर ग्यारह रुद्रों की पंक्ति मिट्टी की ही खड़ी करते, तदनंतर इनके ऊपर रुद्राभिषेक के मंत्रों से जलाभिसिंचन करते और इन पर चंदन चढ़ाते। चंदन-चर्चित हो जाने पर ही उन्हें वे अन्य गंध-मालय, धूप-दीप और नैवेद्यादि का अधिकारी मानते। मैं समझता हूँ कि वे अपनी पार्थिव सीमा में बँधे महादेवता को अपने पवित्रतम जीवन से रससिक्त करने के अनंतर अपने जीवन के साथ संघृष्ट उत्कृष्टतम महत्त्व वासना का आमोद चढ़ाकर ही अपने महादेवता को पूर्ण प्रतिष्ठा दे पाते थे, या यों कहें अपने में दूर फैलने की महान बनने की और निर्माण करने की जो भी शक्ति सन्निहित है, उसको अपूर्णरूप से जगाकर ही मनुष्य अपने को प्रकाश का अधिकारी बना सकता है। निवेदनीय पात्र बनकर नैवेद्य का भोक्ता बना सकता है। इज्य बनकर धूप अर्थात् आहुति का अधिकारी बना सकता है। इसलिए पहले चंदन को, जो प्रभु का ही जड़ीभूत रूप है, जीवन के संस्पर्श से शरीर को शिला की तरह दृढ़ आधान बनाकर घिसो; तब तक घिसो, जब तक नख न घिस जाएँ। 'चंदन घिसत-घिसत घिस गयो नख मेरो, वासना न पूरत माँग को सँवार।' तानसेन के इस ध्रुपद की यह पुकार है कि जब तक वासना न पूरे तब तक नख घिस भी जाए, घिसने की प्रक्रिया न रुके, वासना पूरी तरह से जब तक इस चंदन के साथ घिसकर उतर न आए, तब तक वह चंदन अर्पणीय कैसे होगा और यदि इस पूर्ण तल्लीनता के साथ चंदन घिसते ही तो चंदन बिना चढ़ाये ही जहाँ चढ़ाना है चढ़ जाएगा और तुम चंदन घिसते ही रहोगे, तुम्हारे चंदन का अर्चनीय तुम्हें तुम्हारे अनजाने में चंदन से तिलक कर जाएगा, 'तुलसीदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर।' यह न हो कि चंदन तो उतारते जाओ, पर उसी को भूल जाओ, जिसके लिए तुम चंदन उतारने बैठे थे, जैसा कि मेरे एक संबंधी के यहाँ के एक ब्राह्मण देवता किया करते हैं। निष्काम-भाव से वे छटाँक-छटाँक भर चंदन उतार डालते हैं और जब चंदन उनकी आवश्यकता से कहीं अधिक उतर जाता है, तो कई घर जाकर अनेक पुजारियों को इस लोभ में दे आते हैं कि चंदन घिसने में उनका जो परिश्रम बचा, उसके बदले में वे कुछ दे दें। मैं जानता हूँ ऐसे पदार्थ-घटकों का, कहीं भी जाइए, अभाव नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में जाइए तो कई एक ऐसे साहित्य के सेवी मिलेंगे, जो किसी-न-किसी पुजारी के लिए रात-दिन चंदन उतारते ही रहते हैं। बदले में कुछ दान-दक्षिणा मिल ही जाती है। राजनीति के क्षेत्र में तो बड़ा पुजारी केवल आरती के समय ही आता है। चंदन उतारना तो हमेशा टुकड़खोरों के कर्तव्य-वितरण की सूची में आता है।

हाँ, केवल रक्तचंदन उतारने वाला पुजारी निष्काम भाव से चंदन नहीं घिसता। वह तो शक्ति का पुजारी होता है। जिसके मस्तक पर वह रक्तचंदन का तिलक लगा देगा, वह या तो पशु होगा या फिर वीर ही होगा। पशु होगा, तो बलि होगा और वीर होगा, तो मुक्त होगा। मलयज घिसा जाता है, तो गंध जगती है; पर रक्तचंदन जब घिसा जाता है, तब राग जगता है। इस राग से रंजित होकर या तो मनुष्य बिल्कुल अध:पतित ही होता है, या फिर ऊँचे उठता है, या तो उसका उठान निस्सीम हो जाता है। मलयज में प्रभु की कृपा अधिक घिसती है और अपना जीवनयापन अल्पमात्र लगता है; रक्तचंदन उतरने में देवी की प्रेरणा कम, अपने जीवन का रस अधिक लगता है। इसलिए यह वक्रपंथगामियों की उपासना में ही अधिक उपयोगी माना जाता है। राजमार्ग पर चलने वाले धवल वेशधारियों के मस्तक पर यह फब ही नहीं सकता। यह तो सुनसान अंधकारित पथों पर निर्भय विचरण करने वाले नीलकंचुक धारियों के उज्ज्वल भाल का शृंगार है।

काव्य में एक पथ के पांथ हैं तुलसीदास और दूसरे के कालिदास। तुलसी शील की छँह में छँहाते चलते हैं और कालिदास बिजलियों की कौंध से आँखें मिलाते चलते हैं। तुलसी में मलयज की तरह ताप-निवारण की क्षमता है, कालिदास में लोहित चंदन की तरह उन्मादन राग-विवर्धन की शक्ति है। एक तीसरा भी पंथ है, केसर या हल्दी के रंग में मलयज को संसक्त करके तिलक देने वालों का। रागात्मिका भक्ति के द्वारा दक्षिण और वामपंथ के बीच सहज समाधान प्राप्त करने वालों का। इनके तिलक में बंकिमा और सादगी दोनों होती है। सूरदास, हितहरिवंश, व्यास आदि इसी पंथ के प्रणेता हैं और एक चौथा चंदन भी है, जिसको वैष्णव जन गोपी-चंदन कहते हैं। मेरी एक परम वैष्णव चाची हैं, वे बतलाती हैं कि जिस सरोवर में गोपियों ने स्नान करके अपने श्रेष्ठ भगवान का साक्षात्कार पाया, उस सरोवर की मिट्टी ही समर्पित गोपी के अंग से लगकर चंदन बन गई है। सम्भवत: जितने भी दुराव, आवरण और आत्मसंकोच आदि कृपणभाव हो सकते हैं, उन सबसे मुक्त होकर अपने को निश्शेष भाव से जो अपने

सर्वश्रेष्ठ काम के लिए अर्पण करते हैं, तो मलयाचल की तरह अपने आश्रय-मात्र को चंदन बनाने में वे समर्थ हो ही जाते हैं। हाँ, यह गोपी-चंदन बहुत ही उच्चतर भूमिका वाले सिद्ध भक्तों के लिए ही है।

पर मैं तो यह मानता हूँ कि चंदन जो भी हो, किसी रंग में भी सना हो, वह हमारी विश्वभावना का ही एक शुष्कप्राय खंड है, जिसे रस-सिक्त करना हमारा सतत् कर्त्तव्य है। जिस किसी भी शिला का हम होरसा बनवाएँ, वह धरती पर टिकी हो, संघर्षण में वह डगमगाने वाली न हो। हम जो कोई भी जल सींच-सींचकर चंदन को आद्र करें; वह शुचि हो, स्वच्छ हो और अभिमंत्रित हो। हम तिलक जो भी लगाएँ, वह अर्पित चंदन का तिलक हो, स्वार्थ संघृष्ट न हो, सुविस्तृत विश्व को सुरभित करने से जो बचा हो, वही हम अपने सिर-आँखों लें, इसी में हमारी भव्य परंपरा की अभिवृद्धि और हम सभी के अंत:करणों का सौमन्य सन्निहित है। तत्त्वत: हमी चंदन हैं, हमीं पानी हैं। हमी होरसा हैं, हमीं कटोरी हैं, जिसमें चंदन रखा जाता है। हमीं अर्चनीय देवता हैं और हमी अर्चक भक्त हैं; पर यह हमारा विस्तार बोध भी तभी जगता है, जब हम प्रभु को चंदन और अपने को पानी मानकर चलते हैं। उदात्त रूपों का आकार सामने रखकर उनसे उनका सार ग्रहण करते हुए जीवन में उतारना है, यह ध्येय सामने रखकर चलते हैं और जो भी उदात्त गुण हम अर्जित करते हैं, उनको विश्वहित में विनियोजित करने का संकल्प लेकर चलते हैं।

यही हमारी चंदन-चर्चा की पारमार्थिक परिभाषा है और इसी से हमारे गंधहीन, नि:स्व, रिक्त सांस्कृतिकम्मन्य जीवन में चंदन मांगल्य का अंग बना हुआ है। लिलार हमारा चाहे चंदन लगाने से चरीने लगे और चंदन लगाते ही हम अपने को दशहरे के हाथी जैसा उपहसनीय प्राणी मानने लगें; पर हमारे अंतर्मन में चंदन का छिड़काव अभी गीला है, क्योंकि हमारे अक्षर अज्ञान के भीतर वह रागिनी अभी जागती है, जिसके किवाड़ चंदन के बनते हैं, जिसकी चौकी चंदन से गढ़ी जाती है, जिसके द्वार पर चंदन का बिरवा रोपा जाता है, जिसके गलहार भी चंदन के ही बनते हैं और जिस पर चंदन लिप्त हथेलियों की छाप पड़े बिना मंगल विधि नहीं पूरी होती। वह रागिनी ही जनता-जनार्दन की चंदन-खण्डिका है, जो एक कठोर विचार-पीठिका पर बराबर ग्राम देवता की विलीयमान आनंदाश्रु बिंदुओं से परिषिक्त होकर घिसी जा रही है, घिसते-घिसते वह अब सूत मात्र रह गई है। उसकी सुरभि बिखर रही है; पर देवता नहीं उठ रहा है। कारण मैं नहीं जानता केवल इतना जानता हूँ कि निर्ममता के इस चंदन के छोटी-सी टुकड़ी को न घिसो। इसे सँभालकर घिसो, देवता को जगाओ, जिसके उद्‌बोधन से प्रत्येक काष्ठ चंदन बन लहक उठे। जिन भुजंगों के विष के भय से पेड़-के-पेड़ सूख-से गए, उनको भुजदंड बजाने वाले हिमवासी शंकर का इस तप्त मिट्‌टी के पिंड में आवाहन करो। वे चंदन स्वीकारें, जिससे जन-चेतना और उमंगित होकर पसरे, चंदन की महक प्रत्येक दिशा में फैले और चंदन का छिड़काव प्रत्येक पथ पर हो जाए। तभी हमारा बचा-खुचा पानी सार्थक होगा और तभी चंदन की प्रचुरता हमें इतना उदार बनने की प्रेरणा देगी कि चंदन की कुटी छवाकर निंदक को भी अपने निकट रख सकें। तभी चंदन-चर्चित संस्कृति का मंगलास्पद रूप अपना नवोत्कर्ष पा सकेगा।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

अन्य गद्य विधाएँ : प्रथम खण्ड

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अमृत राय का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर अमृत राय का जन्म 3 सितम्बर, 1921 को वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ।

प्र.2. 'हंस' और 'नई कहानी' का सम्पादन किसने किया है?
उत्तर हंस और नई कहानी का सम्पादन लेखक अमृत राय ने किया है।

प्र.3. अमृत राय के पिता का क्या नाम है?
उत्तर अमृत राय के पिता मुंशी प्रेमचन्द्र जी हैं।

प्र.4. रेखाचित्र का श्री गणेश करने का श्रेय किसे माना जाता है?
उत्तर रेखाचित्र का श्री गणेश करने का श्रेय श्री राम शर्मा को माना जाता है।

प्र.5. रिपोर्ताज विधा के प्रवर्तक के रूप में किसे जाना जाता है?
उत्तर रिपोर्ताज विधा के प्रवर्तक के रूप में कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर को जाना जाता है।

प्र.6. कन्हैया लाल मिश्र का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर कन्हैया लाल मिश्र का जन्म 29 मई, 1906 को देवबन्द; सहारनपुर में हुआ।

प्र.7. 'श्रम ही साधना की सबसे बड़ी पूँजी है' यह कथन किसके द्वारा कहा गया है?
उत्तर यह कथन लेखक व कवि कन्हैया लाल मिश्र द्वारा कहा गया है।

प्र.8. महादेवी वर्मा की भाषा शैली किस प्रकार की है?
उत्तर महादेवी वर्मा की भाषा शैली शुद्ध खड़ी बोली है।

प्र.9. महादेवी वर्मा का जन्म कब और कहाँ पर हुआ?
उत्तर महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में फर्रूखाबाद जिले के एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ।

प्र.10. कवि निराला ने महादेवी वर्मा को किस नाम से सम्बोधित किया है?
उत्तर कवि निराला ने महादेवी वर्मा को 'हिन्दी के विशाल मंदिर की सरस्वती' कहा है।

प्र.11. 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति' की रेखाओं, किसकी रचनाएँ हैं?
उत्तर 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाओं' महादेवी वर्मा की रचनाएँ हैं।

प्र.12. मंगलाप्रसाद पुरस्कार एवं सेकसरिया पुरस्कार किसे मिला।
उत्तर मंगलाप्रसाद पुरस्कार एवं सेकसरिया पुरस्कार लेखक महादेवी वर्मा को मिला है।

प्र.13. 'चकल्लस' पत्रिका का सम्पादन किसने किया?
उत्तर 'चकल्लस' पत्रिका का सम्पादन लेखक अमृतलाल नागर ने किया।

प्र.14. अमृतलाल नागर का जन्म कब और कहाँ हुआ?
उत्तर अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त, 1916 को गोकुलपुरा, आगरा में हुआ।

TOUCH 'n' PASS

प्र.15. 'पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ' किसका कहानी संग्रह है?

उत्तर 'पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ' अमृत लाल नागर की कहानी संग्रह है।

प्र.16. संस्मरण किसे कहा जाता है?

उत्तर स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित किसी लेख या ग्रन्थ को संस्मरण कहते हैं।

प्र.17. संस्मरण विधा का प्रथम लेखक किसे माना जाता है?

उत्तर संस्मरण विधा का प्रथम लेखक पद्म सिंह शर्मा को माना जाता है।

प्र.18. 'कलम का सिपाही' किसकी रचना है?

उत्तर कलम का सिपाही अमृत राय की रचना है। जिसमें मुंशी प्रेमचन्द्र के जीवन पर उल्लेख किया गया है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. रेखाचित्र विद्या का परिचय देते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

रेखाचित्र का स्वरूप

रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है। इसे चित्रकला और साहित्य के सुन्दर समन्वय से उद्भूत एक अभिनव कला का प्रतिबिम्ब माना जाता है। इस विधा में किसी विषय-विशेष का उसकी बाह्य विशेषताओं को उभारते हुए, विभिन्न संक्षिप्त घटनाओं को समेटते हुए, शब्द-रेखाओं के माध्यम से सजीव, सरस, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्र उभारा जाता है। इसका कार्य यह है कि वह वर्णित पात्र के रूप-सौन्दर्य तथा विभिन्न परिस्थितियों में उसके द्वारा की गई विभिन्न घटनाओं की सहायता से उसके चरित्र का एक प्रभावी एवं संवेदनशील चित्र अंकित कर दे। डॉ० मक्खनलाल शर्मा की मान्यता है—"जिस प्रकार चित्र का उद्देश्य किसी भाव विशेष को दृष्टा के हृदय से जागृत कर देना होता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र भी इतिहास, घटना, मनोविज्ञान, वातावरण आदि की सहायता से अभीप्सित भाव की अनुभूति करा देता है और थोड़ी देर के लिए पाठक एक नवीन मानसिक अवस्था को प्राप्त कर रसमग्न हो जाता है?

पद्मसिंह शर्मा को कुछ विद्वान रेखाचित्र विधा का जनक मानते हैं, परन्तु इसका स्वतन्त्र रूप से और 'रेखाचित्र' नाम से श्रीगणेश करने का श्रेय श्रीराम शर्मा को दिया जाता है। श्रीराम शर्मा के 'बोलती प्रतिमा' शीर्षक में कई रेखाचित्र हैं, जिनमें 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव', 'वे जीव कैसे हैं' आदि उनके रेखाचित्र हैं। रेखाचित्र की यात्रा पर्याप्त सुपुष्ट एवं लम्बी हैं रेखाचित्र अस्तित्व प्रदान करने में बनारसीदास चतुर्वेदी का भी योगदान कम नहीं है। उन्होंने एक ओर तो उत्कृष्ट कोटि के चालीस रेखाचित्र लिखे, दूसरी ओर उनकी भूमिका में प्रकाश भी डाला—"जिस प्रकार अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लैंस बढ़िया होना चाहिए और फिल्म भी काफी सेन्सिटिव, उसी प्रकार साफ चित्र के लिए रेखाचित्रकार में विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भावुकतापूर्ण हृदय दोनों का सामंजस्य होना चाहिए, परदुखकातरता, संवेदनशीलता, विवेक और सन्तुलन-इन सब गुणों की आवश्यकता है।" महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में ये विशेषताएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए—'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि। कुछ विद्वान इन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र मानते हैं।

प्र.2. अमृतराय के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

अमृतराय का जीवन परिचय

अमृतराय प्रेमचन्द के छोटे बेटे थे और अपने पिता 'प्रेमचन्द' की भाँति मूलत: कहानीकार व उपन्यासकार थे। आपका जन्म 3 सितम्बर, 1921 को वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपका विवाह सुभद्राकुमारी चौहान की बेटी सुधा चौहान से हुआ। अमृतराय को अनुवादक व जीवनीकार के रूप में भी बहुत ख्याति मिली। इसके अतिरिक्त आपने व्यंग्य और समालोचनाएँ भी लिखी। प्रेमचन्द की जीवनी 'कलम का सिपाही' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी पर अमृतराय का समान रूप से अधिकार था इसलिए साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं में निरन्तर लेखन करते हुए इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शेक्सपियर, ब्रेख्त, जूलियस, हावर्ड फास्ट जैसे विश्वचर्चित लेखकों की महत्त्वपूर्ण कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। अमृतराय नाट्य-लेखन में भी सक्रिय रहे। इसके साथ ही आपने प्रेमचन्द की बिखरी रचनाओं का संपादन किया तथा 'हंस' और 'नई कहानी' जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी किया। 14 अगस्त, 1996 को आपका देहावसान हो गया।

TOUCH 'n' PASS

अमृतराय की प्रमुख कृतियाँ हैं—'साहित्य में संयुक्त मोर्चा' 'सुबह का रंग', 'लाल धरती', 'नई समीक्षा', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत', 'अग्निशिखा', 'फांसी के तख्ते से', 'कस्बे का एक दिन', 'गीली मिट्टी', 'जंगले', 'सहचिंतन', 'भटियाली', 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा', 'बतरस', 'चतुरंग', 'सारंग' और 'धुआं'।

प्र.3. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का जीवन परिचय एवं कृतियों पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का जीवन परिचय

देश के जाने माने कवि और लेखक कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का जनम 29 मई, 1906 को देवबन्द (सहारनपुर) में हुआ था। इन्होंने कुछ समय तक खुर्जा की संस्कृत पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की। वहाँ पर आसफ अली के भाषण से प्रभावित होकर इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। तत्पश्चात इन्होंने अपना सारा जीवन राष्ट्र सेवा को समर्पित कर दिया। सन् 1930-32 और 1942 में जेल में राष्ट्रीय नेताओं के सम्पर्क में रहे। स्वतंत्रता के पश्चात् इन्होंने स्वयं को पत्रकारिता में लगा दिया। 9 मई, 1995 में इनका देहावसान हो गया।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार एवं स्वतंत्रता सेनानी कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर उन अनूठे और विलक्षण रचनाकारों में हैं जिन्हें साहित्य और पत्रकारिता में सिरमौर माना गया पत्रकारिता के क्षेत्र में इन्हें विशिष्ट ख्याति प्राप्त है। इन्हें रिपोर्ताज विधा के प्रवर्तक के रूप में भी जाना जाता है। हिन्दी साप्ताहिक व मासिक पत्रों में साहित्यिक टिप्पणियों का स्तम्भ सबसे पहले प्रभाकर जी ने ही आरम्भ किया था। पत्रकारिता को सेवा भावना के रूप में स्वीकार किया और तदनुरूप ही अपने लेखन को अंजाम दिया। प्रभाकर जी की भाषा आम आदमी की भाषा थी। हिन्दी के साथ-साथ आपने उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। आपकी भाषा में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सहज प्रयोग हुआ है। जनता को सीधे सम्बोधित शब्दों में अपनी बात कहते थे। बिना लाग लपेट के अपने वाक्यों को प्रस्तुत करते थे।

रचनाएँ—जिंदगी मुस्कुराई, जिंदगी लहराई, बाजे पायलिया के घुँघरू, महके आंगन चहके द्वार, आकाश के तारे धरती के फूल, माटी हो गई सोना, जियो तो ऐसे जियो, दीप जले शंख बजे, तपती पगडंडियों पर पदयात्रा, सतह से तह में, अनुशासन की राह में, यह गाथा वीर जवाहर की, एक मामूली पत्थर, दूध का तालाबा, भूले हुए चेहरे, नई पीढ़ी नए विचार, बढ़ते चरण उनकी प्रमुख कृतियाँ है।

मानवीय गुणों के सजग प्रहरी के रूप में प्रभाकरजी को सदैव स्मरण किया जाएगा। जिंदादिली, विनम्रता, धैर्य और विवेक प्रभाकर जी के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण रहा। उनके द्वारा रचित साहित्य एवं उनके बहुमुखी प्रेरक व्यक्तित्व के लिए मेरठ विवि द्वारा डी लिट की मानद उपाधि, भारतेन्दु पुरस्कार, गणेश शंकर विद्यार्थी व पराडकर पुरस्कार, महाराष्ट्र भारती पुरस्कार सहित दो दर्जन से अधिक सम्मान उन्हें मिले थे। प्रभाकर जी ने कहा था कि श्रम ही साधना की सबसे बड़ी पूँजी है और उसी से प्रतिभा का विकास होता है।

प्र.4. हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज के स्वरूप पर एक लेख लिखिए।

उत्तर

रिपोर्ताज का स्वरूप

'रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है तथा इसकी गणना नव्यतम साहित्य-रूपों के अन्तर्गत की जाती है। जिस रचना में वार्य विषय का आँखों-देखा तथा कानों-सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हत्तत्री के तार संकृत हो उठे और वह उसे मूल न सके, उसे 'रिपोर्ताज' कहते हैं। रिपोर्ट से यह इस अर्थ में भिन्न है कि उसमें जहाँ कलात्मक अभिव्यक्ति का अभाव होता है तथा तथ्यों का लेखा-जोखा-मात्र रहता है, वहाँ रिपोर्ताज में तथ्यों को कलात्मक एवं प्रभावोत्पादक दंग से व्यक्त किया जाता है। इस रचना-विधा का प्रादुर्भाव सन् 1936 के आस-पास द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुआ था। रूसी साहित्यकारों ने इसका विशेष प्रचार-प्रसार किया तथा इलिया एहरेनकुने रिपोर्ताज के कुशल लेखक के रूप में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। हिन्दी में रिपोताव-लेखन की परम्परा शिवदानसिंह चौहान की रचना लक्ष्मीपुरा (रूपाम, दिसम्बर, 1938) से आरम्भ हुई। हेस के समाचार और विचार तथा अपना देश स्तम्भों के अन्तर्गत भी उनकी इस शैली की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई जिनमें 'मोत के खिलाफ जिन्दगी की लड़ाई विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। बंगाल के दुर्मिक्ष तथा महामारी के सन्दर्भ में रांगेय राघव द्वारा 'विशाल भारत' के लिए लिखित रिपोर्ताज भी अपनी मार्मिकता के लिए प्रसिद्ध है।

अकालग्रस्त क्षेत्र में पहुँचकर उन्होंने पूँजीपतियों, व्यापारियों तथा मुनाफाखोरों के अमानवीय कृत्यों और मुख से बिलबिलाते नर-कंकालों पर जो ममस्पर्शी रिपोर्ताज लिखे, वे आगे चलकर 'तूफानों के बीच' (1946) में संकलित या प्रकाशित हुई। प्रकाशचन्द्र गुप्त, उपेन्द्रनाथ अश्क तथा रामनारायण उपाध्याय ने अपने रिवाजों के स्वतन्त्र संग्रह प्रकाशित करने के स्थान पर उन्हें अपनी अन्यविषयक कृतियों में संकलित कर डाला है। प्रकाशचन्द्र गुप्त ने घटनाप्रधान रिपोर्ताज लिखे हैं जो उनके रेखाचित्र-संग्रह

'रेखाचित्र' में संगृहीत है। स्वराज्य भवन', 'अल्मोड़े का बाजार' और 'बंगाल का अकाल' उनके उल्लेखनीय रिपोर्ताज है। उपेन्द्रनाथ अश्क के रिपोर्ताज 'रेखाएँ और चित्र' (1955) में संकलित हैं। पहाड़ों में प्रेममय संगीत उनका उल्लेखनीय कलात्मक रिपोर्ताज है जिसमें पहाड़ी गीतों के प्रतिपाच विषय 'प्रेम' पर अत्यन्त ज्ञानवर्धक सामग्री जुटायी गयी है। रामनारायण उपाध्याय के रिपोर्ताज उनके व्यंगात्मक निबन्धों के संग्रह 'गरीब और अमीर पुस्तके (1958) में से संगृहीत है। 'नववर्षाक समारोह में उनका एक अत्यन्त उत्कृष्ट रिपोर्ताज है जिसमें जन्मदिन-समारोह, अभिनन्दन समारोह, ग्रन्थ-विमोचन समारोह आदि के पैटन पर आयोजित पत्रिकाओं के नववर्षाक-समारोह की अच्छी खबर ली गयी है।

रिपोर्ताज की दिशा में कतिपय अन्य उल्लेखनीय हस्ताक्षर है—भदन्त आनन्द कौसल्यायन, शिवसागर मिश्र डॉ० धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकान्त वर्मा तथा फणीश्वरनाथ रेणु जिन्होंने क्रमश: ''देश की मिट्टी बुलाती है, 'वे लगे हजार साल (1966), युद्ध-यात्रा' (1972), 'वाणी बोले कण मुस्काए', 'जाट का मोच, 'अपोली का रव' तथा अणकल धनजल (1975) सदृश सशक्त रचनाओं के माध्यम से रिपोर्ताज-लेखन को नये आयाम दिये है। यह तर्क उल्लेखनीय है कि हिन्दी का अधिकांश रिपोर्ताज-साहित्य पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ है। नया पच ज्ञानोदय, कल्पना, माध्यम, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, दिनमान आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर अनेक महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज प्रकाशित हुए हैं जिनमें डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, फणीश्वरनाथ रेणु, रामकुमार, विवेकी राय, कैलाश नारद, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, निर्मल वर्मा, सतीश कुमार, श्रीकान्त वर्मा, कमलेश्वर आदि द्वारा लिखित 'खून के छीटे', एकतच के नोट्स', 'पेरिस के नोट्स', 'बाद। बाद बाद!, 'घर के लिए, ''चीनियों द्वारा निर्मित काठमाण्डू-लासा सड़क' 'प्राग—एक स्वप्न', 'क्या हमने कोई षड्यन्त्र रचा था, 'मुक्ति फौज और 'क्रान्ति करते हुए आदमी को देखना' विशेषरूपेण उल्लेखनीय है।

प्र.5. रविन्द्र नाथ त्यागी की व्यंग्य लेखन की विशेषताओं पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर

व्यंग्य लेखन की विशेषताएँ

उनका व्यंग्य लेखन काफी वृहत था। वे चाहे राजनीति की खिलाफ करें या रूढ़ियों की, साहित्य की विकृतियों का पर्दाफाश करें या नौकरशाही के भ्रष्ट व्यवस्था का गहराई से विश्लेषण करें, अभिप्राय: एक ही होता था—परिवर्तन और समाज एवं देश की सड़ी-गली परम्पराओं का निराकरण। रवीन्द्रनाथ त्यागी की दृष्टि बहुत विस्तृत है जो वर्तमान तक ही नहीं सिमटती, भविष्य के निर्माण तक पहुँचती दिखाई पड़ती है। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने मानव मन की गहरी पड़ताल की थी वे उन स्थितियों पर चोट करते हैं जिनसे मनुष्य का जीवन संकटग्रस्त है। सत्य का उद्‌घाटन उनकी लेखनी की प्रमुख विशेषता रही है। तभी तो उनके लेखन में समाज की त्रासदी के जीवन्त चित्र देखने को मिल जाते हैं। आजादी के बाद नैतिक और सामाजिक राजनैतिक पतन का दौरा भी रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अपने लेखन में जीवन्त किया है। भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था की विकृति और खोखलेपन को उजागर करते हुए रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं कि, ''हालाँकि हमारे संविधान में हमारी सरकार को ''एक प्रजातान्त्रिक सरकार' कह कर पुकारा गया है पर सच्चाई यह है कि चुनाव सम्पन्न होते ही 'प्रजा' वाला भाग जो है वह लुप्त हो जाता है और 'तन्त्र' वाला जो भाग होता है वही, सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो जाता है।'' भारतीय विवाह पद्धति में दहेज जैसी विकराल परम्परा पर उन्होंने लिखा हैं कि—'लोग लड़की की शादी में बुरी तरह टूट जाते थे, घर गिरवी रखे जाते थे, गया-बैल बिक जाते थे और स्थिति कभी-कभी यह होती थी कि घर से कन्या के विदा होने के साथ-ही-साथ घर भी समाप्त हो जाता था।'' साहित्यकारों की समाज में आर्थिक दशा पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि—''मैं, हरिशंकर परसाई और शरद जोशी सारी उम्र लिखते रहेंगे, यश और सम्मान पाते रहेंगे पर आर्थिक हस्ती वही, रहेगी जिसकी चर्चा गालिब ने की थी—

''चन्द तस्वीरें बुतां, चन्द हसीनों के खुतूत
बाद मरने के मेरे घर से यह सामां निकला।''

रवीन्द्रनाथ त्यागी ने 'मुंशी प्रेमचन्द की शताब्दी', 'आओ मेरे वर्य तुम साहित्यकार बनो''', 'डायरी के पन्ने, 'बीच का आदमी', 'हिन्दी साहित्य में मुझे क्या ज्यादा प्रिय है?' शीर्षक रचनाओं में भी साहित्यकारों की आर्थिक विपन्नताओं को अभिव्यक्ति दी है। एक अफसर होने के नाते रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अफसरशाही, अफसरों की अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, लालफीताशाही, अफसरों के दौरे और उनके द्वारा आश्रयदाताओं की जी-हुजूरी करना आदि बातों पर प्रत्यक्ष व्यंग्य किया है। 'जब मैं दौरे पर गया' रचना में उन्होंने आत्म-व्यंग्य द्वारा सरकारी अफसरों की कार्य-प्रणाली, उनका रोब और आतिथ्य की पोल खोलते हुए लिखा है—''मैंने पत्नी की बात की कद्र की और डाकबंगले के बिल के भुगतान का भार भी अपने एक नायब पर ही छोड़ दिया। और हाँ, डाकबंगले की चम्मचें बहुत बढ़िया थी, खानसामा की निगाह बचा कर हम लोग दो अदद चम्मच भी उठा लाये।'' डॉ० जगदीश गुप्त ने उनकी साफगोई की विशेषता को सराहते हुए लिखा है कि, ''रवीन्द्रनाथ त्यागी स्वभाव से जिन्दादित, विनयी परन्तु साफगोई पसन्द, भीतरी सच्चाई को पकड़ने की कोशिश करने वाले व्यक्ति हैं।''

प्राय: विद्वानों ने उनकी रचनाओं में लालित्य के प्राधान्य को स्वीकार किया है। स्वयं रवीन्द्रनाथ त्यागी हरिशंकर परसाई एवं शरद जोशी की रचनाओं से अपनी रचनाओं की तुलना करते हुए मानते हैं कि, "परसाई राजनीतिक सामाजिक सुधारक हैं, जोशी और श्रीलाल शुक्ल बड़े शिल्पकार हैं और मेरी प्रवृत्ति साहित्य और लालित्य की ओर है, यद्यपि राजनीतिक-सामाजिक व्यंग्य मैंने भी लिखे हैं।"

प्र.7. महादेवी वर्मा के जीवन परिचय एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

महादेवी वर्मा का जीवन परिचय

महादेवी वर्मा हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। आपका जन्म फर्रूखाबाद जिले के एक सम्पन्न कायस्थ परिवार में सन् 1907 ई० में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए० करने के बाद महादेवी प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रधानाचार्या बनी और अन्त तक इसी पद पर कार्य करती रहीं। महादेवी हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। कवि निराला ने उन्हें 'हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती' भी कहा है। महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। उन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके समाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि दीपशिखा में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुईं और उन्होंने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया। महादेवी जी का मुख्य साहित्यिक क्षेत्र काव्य है तथापि ये उच्चकोटि की गद्य रचनाकार भी हैं। एक ओर जहाँ वे विशिष्ट गम्भीर शैली में आलोचनाएँ लिख सकती हैं, दूसरी ओर 'शृंखला की कड़ियाँ' में विवेचनात्मक गद्य भी प्रस्तुत कर सकती हैं। इन्होंने नारी-जगत् की समस्याओं को प्राय: अपने निबन्धों का वर्ण्य-विषय बनाया है। 'पथ के साथी' में कुछ प्रमुख साहित्यकारों के संस्मरण 'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाओं' में मार्मिम रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। मेरा परिवार में कुछ पालतू पशु-पक्षियों के शब्द-चित्र बड़ी ही मार्मिक शैली में चित्रित किए गये हैं। महादेवी जी के काव्य में आध्यात्मिक वेदना का पुट है। इनका काव्य वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक न होकर गीतिकाव्य है जिसमें लाक्षणिकता और व्यंजकता का बाहुल्य है।

महादेवी की भाषा शुद्ध खड़ीबोली है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा में मोहक चित्रमयता सर्वत्र देखने योग्य है। इनकी गद्य रचनाओं में भी काल की चित्रमयता, मधुरता एवं कल्पनाशीलता विद्यमान रहती है जिसमें पाठकों को एक अनोखी आत्मीयता के दर्शन होते हैं। शब्दों का चयन एवं वाक्य-विन्यास अत्यन्त ही कलात्मक हैं। गद्य में लाक्षणिकता के पुट से एक मधुर व्यंग्य की सृष्टि होती है। भाषा संस्कृतनिष्ठ होने पर भी उसमें शुष्कता और दुर्बोधता का अभाव है। भावों की अभिव्यक्ति में आपको अद्‌वितीय सफलता मिली है।

कुछ वर्षों के लिए महादेवी ने 'चाँद' और 'आधुनिक कवि' नामक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया था। महादेवी को 'सेकसरिया' एवं 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' भी प्राप्त हुए तथा आपकी विद्वता के लिए भारत सरकार ने इन्हें 'पद्‌मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया है। महादेवी उत्तर प्रदेश विज्ञान परिषद् की सम्मानित सदस्या भी रह चुकी हैं। सन् 1987 में इनका देहावसान हो गया था।,

प्रमुख कृतियाँ—महादेवी जी का कृतित्व गुणात्मक दृष्टि से तो अति समृद्ध है ही, परिमाण की दृष्टि से भी कम नहीं है। इनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—'क्षणदा', 'शृंखला की कड़ियाँ', साहित्यकार की आस्था तथा निबन्ध उनके प्रसिद्ध निबन्ध-संग्रह हैं। अतीत के चलचित्र, 'पथ के साथी' 'स्मृति की रेखाएँ', 'मेरा परिवार' उनके संस्मरणों और रेखाचित्रों के संग्रह हैं। 'हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य' और काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं तथा फुटकर आलोचनात्मक निबन्धों में उनका सजग आलोचक-रूप व्यक्त हुआ है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' 'दीपशिखा' आदि उनके कविता-संग्रह हैं जिन्हें 'यामा' नामक संग्रह में एक साथ संकलित किया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'गिल्लू' का विस्तृत उल्लेख कीजिए।

उत्तर

रेखाचित्र-गिल्लू

सोनजुही में आज एक पीली कली लगी है। उसे देखकर अनायास ही उस छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता की सघन हरीतिमा में छिपकर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुँचते ही कन्धे पर कूदकर मुझे चौंका देता था। तब कली की खोज रहती थी,

पर आज उस लघुप्राणी की खोज है। परन्तु वह तो इस सोनजुही की जड़ में मिट्टी होकर मिल गया होगा कौन जाने स्वर्णिम कली के बहाने वहीं मुझे चौंकाने ऊपर आ गया हो। अचानक एक दिन सवेरे कमरे के बराबदे में आकर मैंने देखा, दो कौए एक गमले के चारों ओर चोंचों से छुवा-छुवौवल जैसा खेल-खेल रहे हैं। यह कागभुशुण्डि भी विचित्र पक्षी है एक साथ समादरित, अनादरित, अति अम्मानित, अति अवमानित।

हमारे बेचारे पुरखे न गरूड़ के रूप में आ सकते हैं, न मयूर के, न हंस के। उन्हें पितरपक्ष में हमसे कुछ पाने के लिए काक बनकर ही अवतीर्ण होना पड़ता है। इतना ही नहीं, हमारे दूरस्थ त्रियजनों को भी अपने आने का मधु सन्देश इनके कर्कश स्वर में ही देना पड़ता है। दूसरी ओर हम कौआ और कॉव-कॉव करने की अवमानना के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं।

मेरे काकपुराण के विवेचन में अचानक बाधा आ पड़ी, क्योंकि गमले और दीवार की सन्धि में छिपे एक छोटे-से जीव पर मेरी दृष्टि रुक गयी। निकट जाकर देखा, गिलहरी का छोटा-सा बच्चा है, जो सम्भवत: घोंसले से गिर पड़ा है और अब कौए जिसमें सुलभ आहार खोज रहे हैं। काकद्वय की चोंचों के दो घाव उस लघुप्राण के लिए बहुत थे। अत: वह निश्चेष्ट-सा गमले में चिपटा पड़ा था। सबने कहा कि कौए की चोंच का घाव लगने के बाद यह बच नहीं सकता, अत: इसे ऐसे ही रहने दिया जाए। परन्तु मन नहीं माना, उसे हौले से उठाकर अपने कमरे में ले आयी, फिर रूई से रक्त पोंछकर घावों पर पेन्सिलीन का मरहम लगाया। रूई की पतली बत्ती दूध में भिगोकर जैसे-तैसे उसके नन्हें-से मुँह में लगायी, पर मुँह खुल न सका और दूध की बूँदें दोनों ओर लुढ़क गयीं। कई घण्टे के उपचार के उपरान्त उसके मुँह में एक बूँद पानी टपकाया जा सका। तीसरे दिन वह इतना अच्छा और आश्वस्त हो गया कि मेरी उँगली अपने दो नन्हें पंजों से पकड़कर, नीले काँच की मोतियों-जैसी आँखों से इधर-उधर देखने लगा।

तीन-चार मास में उसके स्निग्ध रोएँ, झब्बेदार पूँछ और चंचल चमकीली आँखें सबको विस्मित करने लगीं। हमने इसकी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे दिया और इस प्रकार हम उसे 'गिल्लू' कहकर बुलाने लगे। मैंने फूल रखने की एक हल्की डलिया में रूई बिछाकर उसे तार से खिड़की पर लटका दिया वही दो वर्ष 'गिल्लू' का घर रहा। वह स्वयं हिलाकर अपने घर में झूलता और अपनी काँच के मनकों-सी आँखों से कमरे के भीतर और खिड़की से बाहर न जाने क्या देखता-समझता रहता था, परन्तु समझदारी और कार्यकलाप पर सबको आश्चर्य होता था।

जब मैं लिखने बैठती तब अपनी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की उसे इतनी तीव्र इच्छा होती थी कि उसने एक अच्छा उपाय खोज निकाला। वह मेरे पैर तक आकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेजी से उतरता। उसका यह दौड़ने का क्रम तब तक चलता, जब तक मैं उसे पकड़ने के लिए न उठती।

कभी मैं 'गिल्लू' को पकड़कर एक लम्बे लिफाफे में इस प्रकार रख देती कि अगले दो पंजे और सिर के अतिरिक्त सारा लघु गात लिफाफे के भीतर बन्द रहता। इस अद्‌भुत स्थिति में कभी-कभी घण्टों मेंज पर दीवार के सहारे खड़ा रहकर वह अपनी चमकीली आँखों से मेरा कार्यकलाप देखा करता।

भूख लगने पर चिक-चिक करके मानो वह मुझे सूचना देता है और काजू या बिस्कुट मिल जाने पर उसी स्थिति में लिफाफे से बाहर वाले पंजों से पकड़कर उसे कुतरता रहता। फिर 'गिल्लू' के जीवन का प्रथम बसन्त आया। नीम-चमेली की गन्ध मेरे कमरे में हौले-हौले आने लगी। बाहर की गिलहरियाँ खिड़की की जाली के पास आकर चिक-चिक करके न जाने क्या कहने लगी। 'गिल्लू' को जाली के पास बैठकर अपनेपन से बाहर झाँकते देखकर मुझे लगा कि इसे मुक्त करना आवश्यक है।

मैंने कीलें निकालकर जाली का एक कोना खोल दिया और इस मार्ग से गिल्लू ने बाहर जाने पर सचमुच मुक्ति की साँस ली। इतने छोटे जीव को घर में पले कुत्ते और बिल्लयों से बचाना भी एक समस्या ही थी।

आवश्यक कागज-पत्रों के कारण मेरे बाहर जाने के बाद कमरा बन्द ही रहता है। मेरे कॉलेज से लौटने पर जैसे ही कमरा खोला गया और मैंने भीतर पैर रखा, वैसे ही 'गिल्लू' जाली के द्वार से भीतर आकर मेरे पैर से सिर और सिर से पैर तक दौड़ लगाने लगा। तब से यह नित्य का कर्म हो गया।

मेरे कमरे से बाहर जाने पर 'गिल्लू' भी खिड़की की खुली जाली की राह बाहर चला जाता और दिनभर गिलहरियों के झुण्ड का नेता बना, हर डाल पर उछलता-कूदता रहता और ठीक चार बजे वह खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता।

मुझे चौंकाने की इच्छा उसमें न जाने कब और कैसे उत्पन्न हो गयी थी। कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी पदरे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में।

मेरे पास बहुत से पशु-पक्षी हैं और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परन्तु उनमें से किसी को मेरे साथ थाल में खाने की हिम्मत नहीं हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता। 'गिल्लू' इनमें अपवाद था। मैं जैसे ही खाने के कमरे में पहुँचती, वह खिड़की से निकलकर आँगन की दीवार, बरामदा पार करके मेज पर पहुँच जाता और मेरी थाली में बैठ जाना चाहता। बड़ी कठिनाई से मैंने

उसे थाल के पास बैठना सिखाया, जहाँ बैठकर वह मेरी थाली में से एक-एक चावल उठाकर बड़ी सफाई से खाता रहता। काजू उसका प्रिय खाद्य था और कई दिन काजू न मिलने पर वह अन्य खाने की चीजें या तो लेना बन्द कर देता था या झूले के नीचे फेंक देता था।

उसी बीच मुझे दुर्घटना में आहत होकर कुछ दिन अस्पताल में रहना पड़ा। उन दिनों जब मेरे कमरे का दरवाजा खोला जाता, 'गिल्लू' अपने झूले से उतरकर दौड़ता और फिर किसी दूसरे को देखकर उसी तेजी से अपने घोंसले में जा बैठता। सब उसे काजू दे जाते, परन्तु अस्पताल से लौटकर जब मैंने उसके झूले की सफाई की तो उसमें काजू भरे मिले, जिनसे ज्ञात हुआ कि वह उन दिनों अपना प्रिय खाद्य कम खाता रहा।

मेरी अस्वस्थता में वह तकियें पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हें-नन्हें पंजों से मेरे सिर और बालों को इतने हौले-हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान लगता।

गर्मियों में जब मैं दोपहर में काम करती तो 'गिल्लू' न बाहर जाता, न अपने झूले में बैठता, उसने मेरे निकट रहने के साथ गर्मी से बचने का एक सर्वथा नया उपाय खोज निकाला। वह मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता और इस प्रकार समीप भी रहता और ठण्डक में भी।

गिलहरियों के जीवन की अवधि दो वर्ष में अधिक नहीं होती, अत: 'गिल्लू' की जीवन-यात्रा का अन्त आ ही गया। दिनभर उसने न कुछ खाया और न बाहर गया। रात में अन्त की यातना में भी वह अपने झूले से उतरकर मेरे बिस्तर पर आया और ठण्डे पंजों से मेरी वही उँगली पकड़कर हाथ से चिपक गया, जिसे उसने अपने बचपन की मरणासन्न स्थिति में पकड़ा था। पंजे इतने ठण्डे हो रहे थे कि मैंने जाकर हीटर जलाया और उसे उष्णता देने का प्रयास किया, परन्तु प्रभाव की प्रथम किरण के स्पर्श क साथ ही वह किसी और जीवन में जागने के लिए सो गया। उसका झूला उतारकर रख दिया है और खिड़की की जाली बन्द कर दी गयी है, परन्तु गिलहरियों की नई पीढ़ी जाली के उस पार चिक-चिक करती ही रहती है और सोनजुही पर बसन्त आता ही रहता है।

सोनजुही की लता की नीचे 'गिल्लू' को समाधि दी गयी इसलिए भी कि उसे वह लता सबसे अधिक प्रिय थी इसलिए भी कि लघुगात का, किसी वासन्ती दिन, जुही के पीलाभ फूल में खिल जाने का विश्वास मुझे सन्तोष देता है।

प्र.2. अमृतलाल नागर के जीवन परिचय एवं कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

अमृतलाल नागर का जीवन परिचय

हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर का जन्म 17 अगस्त, 1916 ई० को गोकुलपुरा, आगरा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। अमृतलाल नागर के पिता का नाम राजाराम नागर था। आपके पितामह शिवराम नागर 1895 से लखनऊ आकर बस गए थे। अमृतलाल की पढ़ाई हाईस्कूल तक ही हुई। फिर स्वाध्याय द्वारा साहित्य, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व व समाजशास्त्र का अध्ययन किया तथा बाद में उन्होंने हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेजी पर भी अधिकार प्राप्त किया। पहले नौकरी, फिर स्वतन्त्र लेखन एवं फिल्म लेखन के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'चकल्लस' नामक पत्रिका का संपादन भी किया गया था आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा प्रोड्यूसर भी रहे। 1932 में निरन्तर लेखन किया। शुरुआत में मेघराज इंद्र के नाम से कविताएँ लिखीं। 'तस्लीम लखनवी' नाम से व्यंग्यपूर्ण स्केच व निबन्ध लिखे तो कहानियों के लिए अमृतलाल नागर मूल नाम रखा। अमृतलाल नागर की भाषा सहज, सरह दृश्य के अनुकूल है। मुहावरों, लोकोक्तियों, विदेशी तथा देशज शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रात्मक शैली का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है।

अमृतलाल नागर की रचनाएँ

उपन्यास—महाकाल (1947) (1970 से 'भूख' शीर्षक प्रकाशित), सेठ बांकेलाल (1955), बूँद और समुद्र (1956), शतरंज के मोहरे (1959), सुहाग के नुपूर (1960) (यह तमिल महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम:दु:ख की लड़ी' के आधार पर लिखा माना जाता है)। अमृत और विष (1966), सात घूँघट वाला मुखड़ा (1968), एकदा नैमिषारण्ये (1972), मानस का हंस (1973), नाच्यौ बहुत गोपाल (1978), खंजन नयन (1981), बिखरे तिनके (1982), अग्निगर्भा (1983), करवट (1985), पीढ़ियाँ (1990)।

कहानी संग्रह—वाटिका (1935), अवशेष (1937), तुलाराम शास्त्री (1941), आदमी, नहीं! नहीं! (1947), पाँचवा दस्ता (1948), एक दिल हजार दास्ताँ (1955), एटम बम (1956), पीपल की परी (1963), कालदंड की चोरी (1963), मेरी प्रिय कहानियाँ (1970), पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ (1970), भारत पुत्र नौरंगीलाल (1972), सिकन्दर हार गया (1982), एक दिल हजार अफसाने (1986)—लगभग सभी कहानियों का संकलन)।

TOUCH n PASS

नाटक—युगावतार (1956), बात की बात (1974), चंदन वन (1974), चक्कसरदार सीढ़ियाँ और अँधेरा (1977), उतार चढ़ाव (1977), नुक्कड़ पर (1981), चढ़त न दूजो रंग (1982)।

व्यंग्य—नवाबी मसनद (1939), सेठ बाँकेमल (1944), कृपया दाएँ चलिए (1973), हम फिदाये लखनऊ (1973), मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (1985), चकल्लस (1986)—उपलब्ध स्फुट हास्यव्यंग्य रचनाओं का संकलन।

अन्य कृतियाँ—गदर के फूल (1957-1857 की इतिहास-प्रसिद्ध क्रांति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सर्वेक्षण), ये कोठेवालियाँ (1960 वेश्याओं की समस्या पर एक मौलिक एवं अनूठा सामाजिक सर्वेक्षण), जिनके साथ जिया (1973—साहित्यकारों के संस्मरण), चैतन्य महाप्रभु (1978—आत्म परक लेखों का संकलन), टुकड़े-टुकड़े दास्तान (1986—आत्मोपरक लेखों का संकलन) साहित्यत और संस्कृति (1986—साहित्यिक एवं ललित निबन्धों का संस्मरण), अमृत मंथन (1991—अमृतलाल नागर के साक्षात्कार (संपादक—डॉ० शरद नागर एवं डॉ० आनन्द प्रकाश त्रिपाठी), अमृतलाल नागर रचनावली (संपादक—डॉ० शरद नागर, 12 खंडों में, 1992), फिल्मक्षेत्र, रंगक्षेत्र एवं (2003—नागरजी के फिल्मी, रंगमंच तथा रेडियो नाटक सम्बन्धी लेखों का संकलन), अत्र कुशलं तत्रास्तु (2004—नागरजी एवं रामविलास शर्मा के व्यक्तिगत पत्राचार का संग्रह)।

बाल साहित्य—नटखट चाची (1941), निंदिया आजा (1950), बजरंगी नौरंगी (1969), बजरंगी पहलवान (1969), बाल महाभारत (1971), इतिहास झरोखे (1970), बजरंग स्मडगलरों के फंदे में (1972), हमारे युग निर्माता (1982), छः युग निर्माता (1982), अक्ल बड़ी या भैंस (1982), आओ बच्चों नाटक लिखें (1988), सतखंडी हवेली का मालिक (1990), फूलों की घाटी (1997), बाल दिवस की रेल (1997), सात भाई चंपा (1998), इकलौता लाल (2001), साझा (2001), सोमू का जन्म-दिन (2001), शाँति निकेतन के संत का बचपन (2001), त्रिलोक विजय (2001)।

अनुवाद—बिसाती (1935—मोपासाँ की कहानियाँ), प्रेम की व्याकस (1937—गुस्तामव फ्लाबेर के उपन्यास 'मादाम बोवरी' का संक्षिप्त भावानुवाद), काला पुरोहित (1939—एंटन चेखव की कहानियाँ), आँखों देखा गदर (1948—विष्णु भट्ट गोडसे की मराठी पुस्तक 'माझा प्रवास' का अनुवाद), 5 दो फक्कड़ (1955—कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी के तीन गुजराती नाटक), सारस्वत (1956—मामा वरेरकर के मराठी नाटक का अनुवाद।

संपादन—सुनिति (1934), सिनेमा समाचार (1935—1936), अल्ला कह दे (20 दिसम्बर, 1937 से 3 जनवरी, 1938, साप्ताहिक), चकल्लस (फरवरी, 1938 से 3 अक्टूबर, 1938, साप्ताहिक), नया साहित्य (1945), सनीचर, (1949), प्रसाद (1953—1954) मासिक पत्रों का संपादन किया।

प्र.3. संस्मरण से क्या तात्पर्य है? इसके स्वरूप को भी स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

संस्मरण का स्वरूप

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में संस्मरण आधुनिक काल की विधा है। स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखित किसी लेख या ग्रंथ को संस्मरण कहते हैं। संस्मरण लेखक अतीत की अनेक स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कल्पना भावना या व्यक्तित्व की विशेषताओं से अनुरंजित कर (युक्त कर) प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है, उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं का समावेश रहता है। संस्मरण के लेखक के लिए यह नितांत आवश्यक है कि लेखक ने उस व्यक्ति या वस्तु का साक्षात्कार किया हो जिस पर संस्मरण लिखना चाहता है। वह अपने समय के इतिहास को लिखना चाहता है परन्तु इतिहासकार की भाँति वह विवरण प्रस्तुत नहीं करता। संस्मरण कथात्मक साहित्य विधा है। यह कथा काल्पनिक न होकर सत्य पर आधारित होती है। कथा का ताना-बाना जीवन की घटनाओं से बुना जाता है और पाठक के साथ सहज तादात्म्य हो जाता है। तटस्थता संस्मरण की अनिवार्य शर्त है। लेखक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को महिमामंडित करने की प्रवृत्ति से दूर रहकर जीवन में घटित सत्य को सामने लाए, भले ही वह सत्य स्वयं के लिए कितना ही कटु क्यों न हो?

संस्मरण अतीत पर आधारित होता है। इसमें लेखक अपने यात्रा, जीवन की घटना, रोचक पल, आदि जितनी भी दुनिया में रोचक स्मृतियाँ होती हैं, उसको सहेज कर उन घटनाओं को लिखित रूप में व्यक्त करता है। जिसे पढ़कर दर्शक को ऐसा अनुभव होता कि वह उस अतीत की घटना से साक्षात्कार कर रहा है या उसको आत्मसात कर रहा है। किन्तु संस्मरण को रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज, यात्रा आदि से अलग महत्त्व दिया गया है। संस्मरण बहुत ही लचकदार विधा है। इसके तत्त्व और गुण अन्य अनेक विधाओं में मिल जाते हैं। बहुत समय तक रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज आदि विधाओं और संस्मरण को एक समझा जाता रहा। संस्मरण और रेखाचित्र एक-दूसरे के साथ कहीं-कहीं इस तरह जुड़ते हैं कि एक-दूसरे के पर्याप्य मान लिए जाते हैं। महादेवी

TOUCH 'n' PASS

वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ' इसका उदाहरण हैं। 'स्मृति' शब्द जहाँ उस कृति को संस्मरण की ओर ले जा रहा हैं वहीं 'रेखाएँ' रेखाचित्र विधा की ओर। संस्मरण में सम्पूर्ण जीवन का चित्रण न करके कुछ घटनाओं का विवेचन होता हैं। लेखक अपने जीवन की किसी घटना विशेष या सम्पर्क में आए हुए व्यक्ति विशेष के चरित्र के महत्त्वपूर्ण पक्ष की झाँकी प्रस्तुत कर जीवन के खंडरूप या किसी पक्ष का ही चित्रण करता है।

हिन्दी के संस्मरणकारों में पदम सिंह शर्मा को इस विधा का पहला लेखक माना जाता है। आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' इस क्षेत्र के बड़े नाम हैं। महादेवी वर्मा हिन्दी संस्मरण-साहित्य में मील का पत्थर हैं। इनके प्रारम्भिक संस्मरण 'कमला' पत्रिका में प्रकाशित हुए। 'पथ के साथी', इनके संस्मरण संकलन हैं। हालाँकि आत्मीयता की गहनता और चित्रात्मक शैली ने भ्रम पैदा किए हैं और इन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र कहा जाना चाहिए। किन्तु निश्चित तौर पर महादेवी अपने आप में संस्मरण का स्वर्णिम इतिहास हैं।

संस्मरण साहित्य अपने आप में प्रमाणिक इतिहास और समय का साक्ष्य है। इस प्रकार संस्मरण में व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित विवरण के आधार पर उसकी चारित्रिक रेखाओं को जोड़ कर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के प्रभाव को ग्रहण करने का प्रयास होता है। इसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। यह किसी व्यक्ति का भी हो सकता है और वस्तु का भी। उसमें मात्र वर्णन या विवरण नहीं होता अपितु वर्ण्य विषय के साथ लेख के आत्मीय या निजी सम्बन्ध से उद्‌भूत प्रतिक्रियाओं का आकलन होता है। संस्मरण बहुत ही लचकदार विधा है। इसके तत्त्व और गुण अन्य अनेक विधाओं में मिल जाते हैं। बहुत समय तक रेखाचित्र, जीवनी, रिपोर्ताज आदि विधाओं और संस्मरण को एक समझा जाता रहा। इस तरह कई विधाओं के साथ संस्मरण का घोलमेल होता प्रतीत होता है। किन्तु हिन्दी साहित्य के विशाल फलक पर संस्मरण विधा ने अपनी छोटी-सी विकास यात्रा में पर्याप्त प्रगति की है। साहित्य-रसिकों का रुझान धीरे-धीरे इस विधा की ओर बढ़ रहा है। अत: संस्मरण का भविष्य आशा और आत्मीयता के मध्य गोते खाता एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ रहा है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी अमृतलाल नागर ने हिन्दी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन किया है। सामान्यत: हम यह देखते हैं कि अधिकतम लेखकों ने कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, एकांकी, निबन्ध, आदि में अपना साहित्य उत्कर्ष बनाया है। किन्तु नागर ने इनके साथ-साथ संस्मरण साहित्य में भी विशेष योगदान दिया है। 'जिनके साथ जिया।' (1973) यह नागर का साहित्यकारों पर लिखे संस्मरणों का संग्रह है। जिसमें शरत के साथ बिताया कुछ समय (1938), प्रसाद जैसा मैंने पाया (1950) तीस बरस का साथी—रामविलास शर्मा (1962) आदि महत्त्वपूर्ण संस्मरण है। स्वयं अमृतलाल नागर अपने जीवन एवं साहित्यिक संस्कारों को इनके साथ उत्कर्षित होने के भाव स्पष्ट करते हैं। अत: एक-एक अनुभव को स्मरण करते हुए उक्त तीनों भी रचनाकारों पर वैचारिक साहित्यिक तटस्थता से लिखते हैं। उपरोक्त तीनों संस्मरण हिन्दी संस्मरण साहित्य की अमूल्य निधि हैं हिन्दी संस्मरण साहित्य में अमृतलाल नागरजी का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

अपने अतीत को अभिव्यक्ति करने की ललक मनुष्य में स्वभावत: होती ही है। इसी दृष्टि से नागर जी ने अपने अतीत के महत्त्वपूर्ण साथियों के साथ बिताये समय की स्मृतियों को संस्मरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। विगत अनुभवों का स्मरण व्यक्ति को हर मोड़ पर किसी-न-किसी कारण होता रहता है और उनके आधार पर कुछ नयी कड़ियाँ जोड़ने का वह प्रयास करता जाता है। यह अनुभव और यादें व्यक्तित्व का मानो एक पुंज बनकर रह जाती हैं। लेखक की दृष्टि से अमृतलालजी ने अपने यादों और अनुभवों के सहारे संस्मरण लिखे हैं। अत: उनके संस्मरणों पर एक दृष्टिक्षेप निम्न रूप में हैं—

शरत के साथ बिताया कुछ समय (1938) बंगला के प्रसिद्ध लेखक शरत चंद चटोपाध्याय के साथ बिताये समय की यादों पर आधारित है यह संस्मरण। शरतजी की रचनाओं को पढ़कर उनके आदर्श की एक गहरी छाप नागरजी पर रही है। इतना ही नहीं उनकी मूल रचनाओं को पढ़ने के लिए नागर ने बंगला भाषा सीखी। नागर जी इस संस्मरण में स्वयं लिखते हैं कि, एक-एक पुस्तक को कई-कई बार पढ़ा और आज जब उपन्यास अथवा कहानी पढ़ना मेरे लिए केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं, वरन् अध्ययन का प्रधान विषय हो गया हैं, तब भी मैं उनकी रचनाओं को अक्सर बार-बार पढ़ा करता हूँ। उनकी रचनाओं को मूल भाषा में पढ़ने के लिए ही मैंने बंगला सीखी। इससे एक पाठक की प्रबुद्धता, बेलाग लगन और उत्सुकता स्पष्ट होती है। संस्मरण में नागर जी शरत के साथ कलकत्ता के प्रसंग को विशद करते हैं।

प्रसाद—जैसा मैंने पाया (1950)—यह संस्मरण हिन्दी के महान लेखक जयशंकर प्रसाद के साथ बिताये समय और अनुभवों पर आधारित हैं। नागर इनमें बताते हैं कि, लगभग बीस-पच्चीस बार प्रसाद के साथ उनकी भेंट हुई है। आदरणीय भाई विनोदशंकर व्यास ने उनका प्रसाद से परिचय कराया था। प्रसाद के व्यक्तित्व के संदर्भ में वे लिखते हैं, "साहित्य की उस गंभीर

मूर्ति को खिलखिलाकर हँसते हुए देखा है। चिंतन के गहरे समुद्र को चीरकर निकली हुई सरल हँसी उनके सहज सामर्थ्य की थाह बतलाती थी। यहीं उनका परिचय है जो मैंने पाया है।'' प्रसाद के दृढ़ विश्वास की पृष्ठभूमि इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा;
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा।

इस संस्मरण में नागर ने लिखा है कि वे अपने आदर्शों में प्रसाद को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। प्रसाद की व्यक्तिगत तथा साहित्य झलक इस संस्मरण में नागर ने प्राणवान बनाई है।

प्र.4. हिन्दी साहित्य में जीवनी के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

हिन्दी साहित्य में जीवनी का स्वरूप

आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में लिन विधाओं का विशेष योगदान रहा है, 'जीवनी' का उनमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य-साहित्य और जीवन दोनों का केन्द्र है। जीवनी उसके जीवन और व्यक्तित्व को समग्रत: अभिव्यक्त करने वाली साहित्यिक विधा है। जीवनी के विषय में 'हिन्दी साहित्य कोश' में कहा गया है—''किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृतांत को जीवनी कहते हैं।'' अर्थात् जीवनी में व्यक्ति विशेष के जीवन को उसकी सम्पूर्णता एवं व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। जीवन का यह विवरण स्व-रचित न होकर किसी अन्य द्वारा तटस्थ तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण के आधार पर रचा जाता है। इस दृष्टि से यह आत्मकथा के विपरीत 'परकथा' है। जीवनी का लेखक अपने चरित्र नायक के जीवनवृत को साकार करने के लिए व्यक्ति विशेष के जीवन की घटनाओं पर बहुत बल देता है लेकिन घटनाओं का परिगणन मात्र जीवनी नहीं है; उसमें घटनाएँ और चरित्र, युग और पृष्ठभूमि सबका समंजन रहता है। अत: जीवनी का रचना विधान लेखक से विशिष्ट रचना सामर्थ्य की भी अपेक्षा रखता है। कुल मिलाकर, जीवनी व्यक्ति विशेष के जीवन का ऐसा चित्र है जहाँ उसके जीवनगत तथ्यों और चरित्र की विशेषताओं को ऐसी कलात्मकता के साथ विन्यस्त किया जाता है कि वह शब्द चित्र सजीव हो उठता है। बाबू गुलाबराय ने जीवनी को परिभाषित करते हुए इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है—जीवनी लेखक अपने चरित्रनायक के अंतर-बाह्य स्वरूप का चित्रण कलात्मक ढंग से करता है।

इस चित्रण में वह अनुपात और शालीनता का पूर्ण ध्यान रखता हुआ सहृदयता, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के साथ अपने चरित्रनायक के गुण दोषमय सजीव व्यक्तित्व का एक आकर्षक शैली में उद्घाटन करता है।

जीवनी के केन्द्र में चरित्र नायक और उसका कर्त्तव्य रहता है इसलिए जब जीवनी के चरित्रनायक का चयन किया जाता है जब जीवनीकार के मन में यही तत्त्व सर्वप्रमुख रहता है कि चरित्रनायक का चरित्र प्रेरक और आकर्षक हो अर्थात् मनुष्य की मानवीयता, कर्मठता और सदस्यता को प्रकाशित करने वाला व्यक्तित्व ही किसी भी जीवनी का केन्द्र-बिन्दु बनता है। किसी समय यह धारणा महत्त्वपूर्ण थी कि जीवनी का चरित्र नायक ऐसा विख्यात ही हो सकता था जिसका चरित्र महिमामंडित रहा हो और जिसके प्रति जीवनीकार की श्रद्धा हो लेकिन आधुनिक युग में यह दृष्टि बदली है और यह अनुभव किया गया है कि जीवनी व्यक्ति केन्द्रित विधा होते हुए भी समूचे युग और उसकी पृष्ठभूमि को प्रति-ध्वनित करने वाली विधा है इसलिए अति सामान्य दिखने वाला साधारण-जन भी जीवनी का चरित्र-नायक हो सकता है। प्राय: ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखते हुए लेखक का उद्देश्य समाज और व्यवस्था तथा उसमें निहित मानव मूल्यों की स्थिति को उजागर करना रहता है।

जीवनी लेखन में जितना बल चरित्र-नायक के चुनाव पर दिया जाता है, उतनी ही महत्ता उसके सजीव व्यक्तित्वांकन की भी है। जीवनी का नायक कोई कल्पना निर्मित पात्र नहीं है इसलिए उसके चरित्र का निर्माण भी उसके जीवन तथ्यों एवं सत्य घटनाओं के आधार पर किया जाता है। नायक का जीवन चरित्र सत्य के जितना निकट होगा उसकी जीवनी उतनी ही प्रामाणिक एवं विश्वसनीय होगी लेकिन इन सबके बावजूद जीवनी नायक के जीवन की घटनाओं का विवरण भी नहीं हैं।

बाबू गुलाबराय का मत है—''जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवनधारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है, वहाँ जीवनी लेखन कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला संतुष्ट नहीं होती, वह उस आवरण को भेदकर अंत:स्वरूप और आंतरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।''

इस दृष्टि से जीवनी को चरित्र-नायक के जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी कहा गया है जहाँ लेखक अपने चरित्रनायक के गुण-दोषमय चरित्र को एक तटस्थ एवं ईमानदार दृष्टि से पहचानकर उसका सहृदयता, स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षतापूर्ण अंकन करता है। जीवनी लेखक अपने चरित्रनायक की जीवन यात्रा का सहयात्री बनता है। वह अपने चरित्र नायक को सतह की वास्तविकताओं से नहीं समझता, उसके जीवन की सच्चाइयों में गहरे पैठकर जीवन के उतार चढ़ावों में सामाजिक संचरण करता हुआ अपने

TOUCH 'n' PASS

नायक के जीवन चरित्र को परत-दर-परत उघाड़कर प्रस्तुत करता है। न तो अतिरिक्त श्रद्धावश वह उसे केवल गुणों पुतला बनाकर प्रस्तुत करता है न ही दुर्बलताओं का पुंज। जीवनी की सार्थकता इसी बात में निहित है कि उसके चरित्रनायक का स्वरूप एक जीते-जागते इंसान की तरह सप्राण हो।

जीवनी लेखन चरित्र-नायक के जीवन-तथ्यों पर आधारित होती है। उसे प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए लेखक को सामग्री संकलन के लिए उसे भगीरथ प्रयास करना पड़ता है। एक शोधकर्ता की भाँति वह विभिन्न स्रोतों का संकलन एवं अध्ययन-मनन करता है। यदि चरित्र-नायक द्वारा आत्मकथा लिखी गई हो तो वह जीवनी लेखक के लिए भी प्रमुख स्रोत बनती है। इसके साथ-साथ स्वयं नायक द्वारा लिखे गए संस्मरण या अन्य लोगों द्वारा नायक के विषय में लिखे संस्मरण, नायक की डायरी, पत्र चरित्र-नायक द्वारा लिखा गया सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य उसकी वक्तृताएँ, भेटवार्ताएँ, पेंटिग, फोटोग्रॉफ इत्यादि विभिन्न सामग्री जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में चरित्र-नायक से हो—वह सब जीवनीकार के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त, वह स्वयं उन लोगों से मिलता है जो चरित्र-नायक के घनिष्ठ रहे हों। अपने चरित्र-नायक के युग और पृष्ठभूमि को समझने के लिए लेखक तत्कालीन समाचार-पत्रों, इतिहास-ग्रन्थों आदि में बिखरी सामग्री का भी संचयन कर उस पर चिंतन करता है और तभी एक सफल जीवनी का निर्माण संभव होता है।

तथ्य-संकलन की इतनी महत्ता के बावजूद अनुभूति और कल्पना के अभाव में जीवनी साहित्य विधा न होकर निष्प्राण इतिहास ग्रंथ के समान हो जाती है। यदि जीवन-तथ्य जीवनी का कलेवर हैं तो अनुभूति और कल्पना उसमें प्राण-संचार करने वाला तत्त्व हैं लेकिन कल्पना का प्रयोग कलात्मक विन्यास के साथ तत्त्व के रूप में ही किया जाता है।

जीवनीकार का लक्ष्य व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण संदर्भों में प्रस्तुत करने का रहता है, इसलिए व्यक्ति के भावलोक एवं विचार क्षेत्र के साथ-साथ उसका बहिर्जगत भी जीवनीकार के लिए महत्त्वपूर्ण है। वस्तुत: व्यक्ति को गढ़ने में उसकी परिस्थितियों और सामाजिक शक्तियों का अद्‌वितीय योगदान है। जीवनीकार के लिए व्यक्ति जीवन की घटनाएँ मात्र सत्य नहीं है, घटनाओं की पृष्ठभूमि, उनको निर्धारित करने वाले प्रेरणा स्रोत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से लेखक तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिपेक्ष्य को खंगालता है और उन सक्रिय शक्तियों की पहचान करता है जो उसके चरित्र-नायक के जीवन का नियमन करती रहीं या चरित्र-नायक ने जिस रूप में सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रकार, जीवनी एक गुम्फित विधा है जिसके केन्द्र में व्यक्ति और उसका अन्तर बाह्य जगत है। दूसरी ओर, उस व्यक्ति के माध्यम से ही पूरा युग और पृष्ठभूमि भी वर्धनित होती है। कुल मिलाकर जीवनी लेखन एक चुनौतीपूर्ण विधा है जो लेखक से विशिष्ट रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है। अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचन्द्र—कलम का सिपाही जीवनी विधा की परिपक्वता की पहचान है और हिन्दी साहित्य की एक अन्यतम उपलब्धि भी। प्रेमचंद केवल एक व्यक्ति-विशेष नहीं हैं, वे एक समूचे युग के प्रणेता हैं। उनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व जीवन और साहित्य की खाई को पाटने वाला अथक प्रयास है। प्रेमचंद के अनुसार साहित्य की सार्थकता उसके मानव समाज से जुड़े रहने में ही है। साहित्य और समाज का दिशा-निर्देश करने वाले प्रेमचन्द का जीवन अति साधारण होते हुए भी अपने युग के अंतर्विरोधों का प्रतिबिंब है। अमृतराय ने उनके जीवन के इसी रूप को साकार किया है।

प्रेमचन्द का जीवन औसत भारतीय जन जैसा है। यह साधारणत्व एवं सहजता प्रेमचन्द की विशेषता है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—'मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।' (भूमिका, कलम का सिपाही)।

प्रेमचन्द की यह सहजता यत्न-साधित या एक लेखक की ओढ़ी हुई विशिष्ट मुद्रा नहीं है। अमृतराय कहते हैं—'प्रेमचन्द की सरलता सहज है। नहीं, वह कस्तूरी मृग नहीं है जिसे अपनी भीतर की कस्तूरी का पता नहीं। उसे पता है कि उसके भीतर ऐसा भी कुछ है जो मूल्यवान है, उसका अपना है, नितांत अपना, मौलिक, विशेष वही उसका है, मानिक है।' (भूमिका, कलम का सिपाही)।

प्रेमचन्द की सरलता, सहज होते हुए भी जटिल है। वह इकहरी नहीं है—केवल उसी व्यक्ति तक सीमित नहीं है। वस्तुत: प्रेमचंद का 'स्व', 'सर्व' से जुड़े बिना परिभाषित किया ही नहीं जा सकता। प्रेमचन्द की चेतना भारतीय पुनर्जागरण के दौर में विकसित हुई है। राजनीतिक दृष्टि से यह गहरी उथल-पुथल और मानसिक ऊहापोह का युग था। अमृतराय ने इसीलिए कांग्रेस के इतिहास के लम्बे विवरण दिए है और प्रेमचन्द का युवा-मानस किस तरह उन सबसे प्रवाहित होता है लेखक ने इसका उचित रेखांकन किया है। आरम्भ में प्रेमचन्द गोखले से प्रभावित होते हैं और बाद में तिलक का व्यक्तित्व उन्हें अधिक आकर्षित करता है। लेखक की दृष्टि में इन दोनों का समंजन गाँधी जी की नैतिक सुधारपरक चेतना में मिलता है जो एक लम्बे समय तक प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व पर हावी रहा।

चरित्र-लेखक अमृतराय ने अपने चरित्र-नायक प्रेमचन्द के वैचारिक और भावात्मक विकास को तत्कालीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। अत: उनके व्यक्तित्व में उस युग-यथार्थ की जटिलतर अभिव्यक्ति संभव हुई है। कलम का सिपाही की भूमिका में अमृतराय ने प्रेमचन्द की विचारधारा को वाणी देते हुए लिखा है—"मैं तो नदी किनारे खड़ा हुआ नरकुल हूँ, हवा के थपेड़ों से मेरे अंदर भी आवाज पैदा हो जाती है। बस इतनी-सी बात है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है इन हवाओं का है जो मेरे भीतर बजीं।" (भूमिका, कलम का सिपाही)

अमृतराय ने इन्हीं हवाओं को पकड़ने की कोशिश की है। स्वातंत्रय-पूर्व युग में प्रेमचन्द ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी राष्ट्रीय-सामाजिक परिवर्तन लाने में एक सक्रिय भूमिका रही है। प्रेमचन्द का रचनात्मक साहित्य, संपादकीय टिप्पणियाँ और उनके पत्र आदि इस सत्य के साक्षी हैं। प्रेमचन्द के जीवन-चरित्र को उभारने में एक ओर यदि लेखक ने युग की विस्तृत पृष्ठभूमि को लिया है तो दूसरी ओर छोटे-छोटे पारिवारिक प्रसंगों का संयोजन हैं जिनमें प्रेमचन्द के मानसिक द्वन्द्व और आर्थिक परेशानियों की अभिव्यक्ति हुई है। अमृतराय ने प्रेमचन्द का पुत्र होते हुए भी जीवनी लेखन के लिए पूर्ण तटस्थता का निर्वाह किया है। डॉ० बच्चन सिंह के शब्दों में जब पुत्र पिता की जीवनी लिख रहा हो तो यह काम और भी जोखिम का हो जाता है लेकिन कुल मिलाकर अमृतराय ने जिस तटस्थता का परिचय दिया है वह श्लाघ्य है।' (डॉ० बच्चन सिंह—कलम का सिपाही—एक युग का संदर्भ; संपा—मन्मथनाथ गुप्त—समसामयिक हिन्दी साहित्य।

प्रेमचन्द की कहानियों और उनके जीवन संदर्भों पर लेखक की ऐसी अनेक टिप्पणियाँ हैं जो प्रेमचन्द की कमजोरियों और उनकी सीमाओं को भी प्रत्यक्ष करती हैं। पुत्री को उच्च शिक्षा न दिला सकने के प्रसंग में अमृतराय ने यहाँ तक कहा है कि अन्य मजबूरियों के साथ मुंशी जी के मन की वह मजबूरी भी रही होगी जो स्त्री की नयी शिक्षा के प्रति कुछ संशयग्रस्त थी। जैसे 'राम की शक्ति पूजा में निराला राम के उस मन की बात करते हैं जो कभी नहीं थकता'—'एक और मन रहा राम का जो न थका' उसी तरह प्रेमचन्द भी यहाँ गहरे मानसिक द्वन्द्व और अंत:संघर्ष से गुजरते दिखाई पड़ते हैं। एक ओर तो ऊपर से देखने पर प्रेमचन्द का समाज-भी-व्यक्तित्व है और दूसरी ओर समाज में परिवर्तन लाने वाली प्रगतिशील शक्तियों के हाथ मजबूत करने के लिए उनकी कलम बराबर चलती रही। लेकिन प्रेमचन्द की यह जीवन-यात्रा अत्यन्त कठिन है। जीवन के अन्त में मृत्यु शैया पर पड़े प्रेमचन्द का जैनेन्द्र से यह कहना कि 'अब आदर्श से काम नहीं चलेगा।' कहीं उनकी आशाओं और दृढ़ विश्वासों के स्खलन का सूचक है। प्रेमचन्द के मन की इसी पीड़ा को अमृतराय ने बखूबी शब्दबद्ध किया है। इसलिए प्रेमचन्द की यह जीवनी मात्र उनके जीवन की घटनाओं का ब्यौरा भर नहीं है बल्कि उनके जीवन का ऐसा पुन: सृजन है जहाँ पाठक भी अपने युग के इतने बड़े साहित्यिक की जीवन यात्रा का सहयात्री बन जाता है। प्रेमचन्द को पूर्णत: समझने के लिए उनकी यह जीवनी एक सार्थक सोपान है।

प्रेमचन्द ने स्वयं कोई आत्मकथा नहीं लिखी, न ही अपने विषय में कोई लेख लिखा और न ही वे डायरी लिखा करते थे। यहाँ तक कि अपने पत्रों को भी संभाल कर नहीं रखते थे। इससे जीवनी लेखक का काम और भी कठिन हो गया। सामग्री संकलन के लिए उन्हें विशेष प्रयास करने पड़े हैं। लेखक ने जहाँ से हो सका उनके पत्रों को इकट्ठा किया, उनपर लिखे गए संस्मरणों का आश्रय लिया और साथ ही उनके रचनात्मक साहित्य के पात्रों में भी प्रेमचन्द के जीवन-प्रसंगों को ढूँढ़ा हैं। यहाँ एक खतरा पैदा हो जाता है। कथा-साहित्य के पात्रों की प्रेरणा स्वानुभूत जीवन-प्रसंगों की हो सकती है लेकिन उनके सृजन में लेखक की कल्पना का भी बहुत बड़ा योगदन रहता है। अत: पात्रों के जीवन में प्रेमचन्द के जीवन को तलाशना बहुत उचित नहीं हैं। इसी तरह, संस्मरणों के प्रयोग में भी अतिरिक्त सावधानी की अपेक्षा रहती है क्योंकि संस्मरण लेखक का 'स्व' या उसके श्रद्धापरक दृष्टिकोण को अपने चरित्र-नायक के व्यक्तित्व को उभारने में अधिक क्रियाशील रहता है। जीवनी के अंत में, अमृतराय ने प्रेमचन्द के अंतिम दिनों का वर्णन किया है और उसमें उनपर लिखे गए संस्मरणों का बहुत प्रयोग हुआ है। ये संस्मरण मार्मिक होते हुए भी भावाविष्ट हैं, इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता।

जीवनी, कलम का सिपाही जहाँ तक उनके व्यक्तित्व का प्रश्न है, तो उसमें उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उभरे हैं—सुख दु:ख, आशा-आकांक्षाएँ, आर्थिक तंगहाली, वैचारिक संघर्ष आदि। कुल मिलाकर इन सभी स्रोतों से संकलित सामग्री के आधार पर अमृतराय ने प्रेमचन्द के जीवन को जिस समग्रता से प्रस्तुत किया है वह रोचक भी है और आकर्षक भी। इस सब में अमृतराय की भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है और शब्दों के वे धनी हैं। अत: भाषा की सजीवता एवं सशक्तता ने इस जीवनी को और भी महत्त्वपूर्ण बन दिया है।

प्र.5. 'कलम का सिपाही' जीवनी की विषय-वस्तु तथा संवेदना पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

कलम का सिपाही में विषय-वस्तु और संवेदना

जीवनी विधा की दृष्टि से कलम का सिपाही की अद्‌वितीयता स्वत:सिद्ध है, जिस रूप में यह जीवनी प्रेमचन्द जैसे साहित्य-सेवी के जीवन संघर्ष और उनकी विचारधारा को प्रस्तुत करती है, वह अपने आप में इस विधा की प्रभविष्णुता का प्रमाण है। कलम का

सिपाही में उनके व्यक्तित्व के सभी रंग दिखाई पड़ते हैं। परिवार के छोटे-छोटे सुख-दुखों में फंसे साधारण व्यक्ति जीवन से लेकर राष्ट्रीय-सामाजिक और साहित्यिक मसलों पर गंभीरता से विचार करने वाले बुद्धिजीवी जीवन तक प्रेमचन्द का जीवन फैला हुआ था। प्रेमचन्द का साहित्यिक व्यक्तित्व भले ही समृद्धि के शिखर पर रहा हो लेकिन व्यक्तिगत जीवन में वे सदैव अभावों और तकलीफों से घिरे रहे। अपने मित्रों को लिखे पत्रों में प्रेमचन्द ने बार-बार अपनी स्थितियों का उल्लेख किया है। अमृतराय ने कुछ ऐसे पत्र उद्धृत किए हैं, जिनमें प्रेमचन्द के संघर्षरत जीवन की व्यथा-कथा झलकती है—"मैं तो इधर बहुत परेशान रहा। बेटी के पुत्र हुआ और उसे प्रसूत ज्वर ने पकड़ लिया, मरते मरते बची। मैं अकेला रह गया था। बीमार पड़ा, दाँतों ने कष्ट दिया...बुढ़ापा स्वयं रोग है और अब मुझे उसने स्वीकार करा दिया कि अब मैं पंजे में आ गया हूँ।" किन्तु बुढ़ापे का यह एहसास, अस्वस्थता और बेचारगी, प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर कभी हावी नहीं रहे, भले ही शारीरिक स्तर पर उन्होंने इसकी पीड़ा को भोगा हो। अमृतराय ने बहुत सुन्दर सटीक शब्दों में प्रेमचन्द के जीवन का परिचय दिया है—"बुढ़ापा वह है जब चित्त बुड्ढा हो जाता है और आदमी केवल साँस के आने-जाने को जिन्दगी समझने लगता है, जब निष्ठा के पैर डगमगाने लगते हैं और तरूणाई के आदर्श संकल्प सदा झूठे जान पड़ते हैं। जब अन्याय देखकर आँखों में खून नहीं उतरता, बुढ़ापा वह हैं। यहाँ तो अपनी वैसी कोई बात नहीं है।"

वस्तुत: प्रेमचंद के व्यक्तित्व में जो उत्कट जिजीविषा और जीवंतता है वहीं इस जीवनी में दिखाई देती है। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ता हुआ, साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति सचेत, साहित्यिक मसलों पर निडर और दो-टूक बात करने वाला प्रेमचंद का जुझारू रूप अनेक घटनाओं के माध्यम से उभरकर सामने आया है। जैसा कि अमृतराय ने टिप्पणी की है—"कोई भी बात हो, छोटी हो बड़ी हो, अपनी हो पराई हो, जहाँ भी कोई अन्याय हो रहा हो, मुंशीजी जूझने के लिए तैयार है।"

प्रेमचंद के भीतर एक बेचैनी है परिवर्तन की। समाज की प्रत्येक गतिविधि पर उनकी राय है और जहाँ भी, जो कुछ भी विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला है उससे डटकर लोहा लेना, अपनी कलम की ताकत से उसके समस्त छिद्रों का उद्घाटन कर अपना विरोध प्रकट करना, प्रेमचंद के व्यक्तित्व का हिस्सा है। चाहे परंपरागत समाज में कोढ़ की भाँति फैली कुरीतियाँ हों, चाहे आधुनिक समाज में पूँजीवाद की स्वार्थ नीति का विषय हो। प्रेमचंद इन ह्रासशील और समाज का अहित करने वाले विशिष्ट वर्गों का खुलकर विरोध करते दिखते हैं।

'कलम का सिपाही' की शिल्पगत विशेषताएँ—

कलम का सिपाही एक जीवनी है और जीवनी का शिल्प अत्यन्त विशिष्ट होता है। यह एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की कथा है लेकिन कथात्मक होते हुए भी उपन्यास की भाँति इसके पात्र कल्पना निर्मित नहीं हैं। सत्य घटनाओं और तथ्यात्मकता का निर्वाह इसके लिए परमावश्यक है। अत: यहाँ लेखक तथ्यों से बंधा रहता है, वह स्वेच्छा से न तो घटनाओं को बदल सकता है न मनचाहा मोड़ दे सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना जरुरी है कि तथ्यात्मकता पर बल देते हुए भी यह कोरा इतिहास नहीं हैं उसमें कल्पना, भावनुभूति का भी योगदान रहता है। इस दृष्टि से जीवनी लेखन रचनाकार से विशिष्ट रचना सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। जीवनी लेखन एक प्रक्रिया है जहाँ रचनाकार चरित्र नायक की जीवन यात्रा का सहचर बनकर पाठक को भी उसका सहभागी बनाता है। अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' की रचना द्वारा भाषा और शिल्प पर अपनी पकड़ को सिद्ध कर दिया है। लेखक ने कथात्मक शैली में प्रेमचंद के जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध संयोजन किया है। वस्तुत: यहाँ कथा जैसा प्रवाह और सरसता भी है और वैज्ञानिक दृष्टि की तटस्थता और निरपेक्षता भी। शिल्प के स्तर पर अमृतराय की शैली प्रौढ़ एवं प्रभावाभिव्यंजक है। उनके चरित्र चित्रण की पद्धति सजीव एवं आकर्षक है। उसमें कथात्मकता की सरसता तथा प्रवाह है। भाषा पर अमृतराय का अद्वितीय अधिकार है। वे शब्दों के धनी हैं और उनके वाक्य-विन्यास में एक कसावट है। उनमें कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है।

प्रेमचंद के चरित्र को समग्रता से प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने उसके चरित्र के मुख्यत: दो पक्षों को उजागर किया है। एक उनका निजी व्यक्तिगत पक्ष जहाँ वे बराबर अर्थाभाव से जूझते, छोटी-छोटी पारिवारिक परेशानियों में फंसे दिखाई पड़ते हैं तो उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष सामाजिक-राष्ट्रीय उत्थान के लिए संकल्पबद्ध नजर आता है। चरित्र चित्रण के लिए लेखक ने जो शैली अपनाई है उसमें प्रेमचंद के लंबे-लंबे वक्तव्यों के उदाहरण हैं और बीच-बीच में उन पर लेखक की अपनी टिप्पणियाँ हैं। जीवनी में अनेक मुद्दों पर जैसे कि पूँजीवाद, साम्प्रदायिकता, साहित्यिक गुटबाजी, साहित्य में अर्थ के हस्तक्षेप आदि पर प्रेमचन्द के विचार संकलित हैं। इन सबमें प्रेमचन्द के बहुआयामी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। लम्बे उदाहरण होने से लेखक का अपना हस्तक्षेप बहुत सीमित हो गया है। सवाल यह है कि क्या यह पद्धति जीवनी की सरसता को बाधित करती है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ऐसा जीवनी की प्रमाणिकता और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए किया गया है। इससे पूरी जीवनी में प्रेमचंद की मौजूदगी का अहसास भी बढ़ा है और बीच-बीच में जहाँ लेखक की टिप्पणियाँ हैं वे अत्यन्त सशक्त हैं जैसे बनारसीदास

चतुर्वेदी के प्रसंग में जहाँ प्रेमचन्द ने 'साहित्यिक गुंडापन' का पर्दाफाश करते हुए व्यावसायिकता के लिए सनसनी पैदा करने की पद्धति से बचने का आग्रह किया है। अमृतराय लिखते हैं—"चतुर्वेदी जी शायद शुद भी अपनी वकालत इतने जोरदार शब्दों में न कर पाते। मैदान में उतरने पर मुंशी जी फिर सुध-बुध खोकर लड़ते हैं, न आगे देखते हैं न पीछे।"

अमृतराय प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन इस रूप में किया है कि उसके माध्यम से युगीन अभिव्यक्ति भी सस्वर हो गई है। वस्तुत: इस जीवनी में व्यक्ति और युग का अद्‌भुत समन्वय जीवनी की रचना प्रक्रिया में पूर्णत: अनुस्यूत है।

अमृतराय ने इस जीवनी की रचना एक विस्तृत फलक पर की है। इसलिए उन्हें सामग्री संकलन के लिए भी कठोर परिश्रम करना पड़ा है। वस्तुत: एक ही अध्याय में प्रेमचंद के व्यक्तित्व के कितने पक्ष उजागर हुए हैं यह लेखक के श्रम का प्रमाण है। उनके पत्रों, संपादकीय टिप्पणियों और कहानी के साक्ष्य से प्रेमचंद की एक समग्र छवि उभारने में अमृतराय सफल रहे हैं।

कलम का सिपाही की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय इसकी भाषा को भी है। डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा है—'भाषा और शैली तो लेखक को प्रेमचंद से विरासत में मिली है। सारी जीवनी अद्‌भुत प्रवाहमयता से युक्त है। यह लेखक की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवनी साहित्य के लिए उसने भाषा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है।' (डॉ० बच्चन सिंह—कलम का सिपाही एक युग का संदर्भ; संपा, मन्मथनाथ गुप्त—समसामयिक हिन्दी साहित्य)।

वस्तुत: पूरी जीवनी में प्रेमचन्द के लम्बे-लम्बे उदाहरण दिए गए हैं। अत: जीवनी में प्रेमचंद और अमृतराय दोनों के ही भाषाधिकार का परिचय मिलता है। प्रेमचंद की भाषा भावाविष्ट भाषा है, उनकी तुलना में अमृतराय ने अधिक संयम का परिचय दिया है। मुख्यत: प्रेमचन्द को प्रेमचन्द के ही शब्दों में चित्रित किया गया है लेकिन जहाँ बीच में रुककर लेखक ने अपनी टिप्पणी की है वहाँ उसके शब्द चयन और वाक्य विन्यास उसकी भाषा की प्रौढ़ता के सूचक हैं। अमृतराय में कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है। सरसता, रोचकता और प्रवाह के गुण उनकी भाषा में सहज ही समाविष्ट हो गए हैं। कलम का सिपाही को प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानते हुए शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं—"कलम का सिपाही अमृतराय की प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानी जाएगी। यह अद्‌भुत किस्सागोई और षट्‌स जबान किसी को भी एक बार अपनी लपेट में ले लेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।" (शिवप्रसाद सिंह 'एक व्यक्ति एक युग', संपा, देवीशंकर अवस्थी, विवेक क रंग)।

प्र.6. अमृतराय के 'कलम का सिपाही' जीवनी का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर

'कलम का सिपाही' का मूल्यांकन

जीवनी व्यक्ति जीवन और युग सत्य के समंजन से नि:सृत एक अनूठी विधा है और जब यह जीवनी एक साहित्यकार की होती है तब उसे एक और आयाम मिल जाता है। उसमें लेखक की रचना-प्रक्रिया भी स्पष्ट होने लगती है। प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही' इस दृष्टि से उनके जीवन के सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज है। शिवप्रसाद सिंह मानते हैं—"यह जीवनी एक प्रकार से हिन्दी के आधुनिक युग के आरम्भ का ज्ञानकोश बन गई है। इसके माध्यम से अनेक समस्याएँ—राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक जो हमारे देश के इतिहास का अंग बन गई हैं, नए सिरे से एक व्यक्ति का संदर्भ बनकर उठी हैं और ये 'प्रेमचंद व्यक्ति' को समझने में सहायक हुई है। उनसे हमारे साहित्य पर एक नया प्रकाश पड़ा है।" (शिवप्रसाद सिंह एक व्यक्ति एक युग, संपा, देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग)।

प्रेमचंद पर तीन जीवनियाँ लिखी गई हैं। उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद—घर में शीर्षक से उनके जीवन प्रसंगों का संयोजन किया। श्री मदन गोपाल ने 'कलम का मजदूर' लिखकर प्रेमचंद के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डाला। कलम का सिपाही इन दोनों जीवनियों से भिन्न है। उसमें रचनात्मक साहित्य जैसी सरसता और प्रवाह है। साथ ही, प्रेमचंद के बहु-आयामी व्यक्तित्व को उनके युग और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। जीवनी के लेखक के लिए उन शक्तियों की पहचान करना आवश्यक है जो उसके चरित्र नायक के जीवन को गढ़ती है। इस दृष्टि से अमृतराय द्वारा लिखित 'प्रेमचंद—कलम का सिपाही' हिन्दी जीवनी साहित्य को उनका प्रशंसनीय योगदान है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिसे किसी परिचय की अपेक्षा नहीं। उनका साहित्य सोद्‌देश्य साहित्य है। वस्तुत: पुनर्जागरण के उस दौर में प्रेमचंद के लिए साहित्य एक अस्त्र है—राजनीतिक सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाने का। इसलिए उनके द्वारा लिए गए प्रत्येक शब्द प्रत्येक पंक्ति में उनका वैचारिक संघर्ष प्रतिध्वनित होता है। प्रेमचंद ने न केवल अपने साहित्य में तत्कालीन युग यथार्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की है अपितु उस युग यथार्थ को निर्मित करने में एक सक्रिय भूमिका भी निभाई है। अमृतराय ने प्रस्तुत जीवनी में उनके इसी स्वरूप को उभारने का प्रयत्न किया है।

यह जीवनी एक पुत्र द्वारा लिखी गई अपने पिता की जीवनी है। अत: प्रेमचंद के निजी जीवन से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन अमृतराय ने प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन केवल उस घर के दायरे में रखकर नहीं किया। हर प्रकार की अतिरेकी दृष्टि से बचते हुए

TOUCH 'n PASS

पूर्ण तटस्थता के साथ लेखक ने अपने चरित्र-नायक को उसके साहित्य और परिवेश के समस्त संदर्भों के बीच एक क्रांतिदर्शी विचारक, संघर्षशील चेतना के अग्रदूत, परिवर्तन कामी शक्तियों के पक्षधर के रूप में चित्रित किया है। यही इस जीवनी की सबसे बड़ी विशेषता है। जीवनी व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व को समग्रत: अभिव्यक्त करने वाली गद्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। जीवनी के केन्द्र में चरित्र नायक का जीवन एवं चरित्र, युग और पृष्ठभूमि सबका विशिष्ट कलात्मक समंजन रहता है। तथ्यपरकता तथा जीवनगत सत्य जीवनी के लिए जितने आवश्यक हैं उतनी ही अनिवार्यता उन अंत:प्रेरणाओं की है जिनसे चरित्र-नायक का विशिष्ट व्यक्तित्व निर्मित होता है। चरित्र-नायक के चयन में यह दृष्टि महत्त्वपूर्ण रहती है कि चरित्र-नायक कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जिसका चरित्र समाज के लिए प्रेरक एवं व्यक्तित्व आकर्षक हो लेकिन आधुनिक युग में यह भावना भी दृढ़ हुई है कि अति-सामान्य जन-साधारण भी जीवनी का चरित्र-नायक हो सकता है। ऐसे लोगों की जीवनी तत्कालीन समाज व्यवस्था तथा उसमें निहित मानव मूल्यों की स्थिति को अनावृत्त करने वाली होती है। सामग्री संकलन जीवनी लेखन का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। एक प्रामाणिक जीवनी के लिए जीवनी लेखक विभिन्न स्रोतों जैसे कि चरित्र-नायक की आत्मकथा, डायरी, पत्र उसके द्वारा लिखा गया—साहित्य, उसकी वक्तृताएँ आदि से सामग्री संकलन करता है। तथ्य संकलन जहाँ जीवनी को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाता है, वहीं अनुभूति और कल्पना का प्रयोग चरित्र-नायक के चरित्रांकन में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। चरित्र-नायक के भावलोक और विचार क्षेत्र को साकार करने के लिए जीवनीकार तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में चरित्र-नायक के व्यक्तित्व को उभारता है। एक सजीव जीवनी के लिए लेखक की दृष्टि को तटस्थ एवं निष्पक्षतापूर्ण होना परमावश्यक है।

जीवनी की परम्परा साहित्य के आदिकाल से ही चली आ रही है। आदिकालीन वीर काव्य, भक्तिकाल में परचई साहित्य एवं 'वार्ता साहित्य' क्रमश: राजा-महाराजाओं एवं भक्तों के जीवन चरित्र पर ही आधारित है। उत्तर-मध्यकाल में भी चरित्र लेखन की परम्परा बनी रही लेकिन यह समस्त साहित्य जीवनी की पूर्व परम्परा के रूप में ही महत्त्व रखता है।

अन्यथा इसमें तथ्यपरकता एवं ऐतिहासिकता का सर्वथा अभाव रहा। आधुनिक युग में भारतेंदु मुंशी देवी प्रसाद कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने जीवनी रचना को अधिक प्रामाणिक एवं सरस बनाया। स्वातंत्र्योत्तर युग में ही जीवनी साहित्य अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच। चरित्र-नायक के प्रति श्रद्धापरक दृष्टिकोण के स्थान पर रचनाकारों ने तटस्थ दृष्टि से अपने चरित्र-नायक के गुण-दोषमय का सजीव अंकन किया।

अमृतराय द्वारा लिखित जीवनी 'कलम का सिपाही' जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। प्रेमचंद जैसे युग-प्रवर्तक साहित्य सर्जक वैचारिक भावात्मक विकास को लेखक ने तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में ही प्रस्तुत किया है। युग जीवन के साथ-साथ पारिवारिक प्रसंगों, मित्रों को लिखे गए पत्रों आदि के सदंर्भ से अमृतराय ने प्रेमचंद के अंत:संघर्षों, मानसिक उथल-पुथल, आशाओं-निराशाओं को समग्र अभिव्यक्ति दी है। निष्कर्षत: यह जीवनी हिन्दी साहित्य को अमृतराय की एक विशिष्ट देन है।

प्र.7. व्यंग्यकार रविन्द्रनाथ त्यागी के जीवन परिचय तथा उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

रविन्द्र नाथ त्यागी का जीवन परिचय एवं कृतियाँ

स्वतंत्रता के बाद हास्य-व्यंग्य लेखकों की एक सशक्त पीढ़ी ने साहित्य क्षितिज को अभिभूत किया है, उनमें एक महत्त्वपूर्ण नाम हैं—रवीन्द्रनाथ त्यागी 'हिन्दी-व्यंग्यकार-त्रयी' में रवीन्द्रनाथ त्यागी का नाम हरशिंकर परसाई और शरद जोशी के साथ तीसरे स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। डॉ० कमल किशोर गोयनका इस सन्दर्भ में लिखते हैं, "हिन्दी-व्यंग्य में यह त्रयी छायावाद के प्रसाद-पंत-निराला तथा नई कहानी के कमलेश्वर मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव के समान प्रसिद्ध हुई, और इन्होंने हिन्दी व्यंग्य को न केवल विस्तार और घनत्व प्रदान किया बल्कि कलात्मक दृष्टि से नए शिखरों तक पहुँचाया।" रवीन्द्रनाथ त्यागी ने शिष्ट व्यंग्य लेखन के साथ-साथ अपनी प्रतिभा और बौद्धिकता के सहारे हास्य-व्यंग्य की नींव डाली है। उन्होंने अपनी बात कहने के लिए नवीन कथ्य और शैली को विकसित किया। त्यागी जी का व्यंग्य लेखन उनकी साफगोई, गहन अध्ययन-मनन, भाषाई सहजता, आनन्द की अनूठी सृष्टि करने और स्थितियों के प्रति सोचने के लिए बाध्य करने में सक्षम है। समकालीन परिदृश्य का पूरा कैनवास इनके व्यंग्य में मिलता है। उनमें जितनी विषय की व्यापकता और वैविध्य मिलता है उतना उनके समकालीन किसी व्यंग्यकार में नहीं है। व्यंग्य लेखन में भाषा सबसे महत्त्वपूर्ण होती है। उनकी रचनाओं में उद्धरण, सिनेगीत, लोकगीत, शेर-शायरी, इतिहास कथन आदि का प्रयोग कर विषय को विस्तार देने में सफल रहे हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अपने लेखन में समर्थ व्यंग्य भाषा का प्रयोग किया है। जो आम जन के निकट होते हुए भी उच्चतर साहित्यिक मापदण्डों पर खरी उतरती है। इस दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तर युग में शिल्प और कथ्य की दृष्टि से हिन्दी-व्यंग्य को एक सशक्त और सुगठित स्वरूप प्रदान करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

एक रचनाकार का असली व्यक्तित्व तो तब निखरता है, जब वह जिन्दगी की जिम्मेदारियों को स्वीकार करता हुआ स्वतन्त्र चिन्तन को विकसित कर लेता है। आज रवीन्द्रनाथ त्यागी हमारे बीच नहीं है, किन्तु उनके व्यक्तित्व की प्रतिच्छवियों और चिन्ताओं से नि:सृत उनका साहित्य हमें उपलब्ध है। लेखक कोई भी हो उसका व्यक्तित्व उसके सृजन को प्रमाणित करता हैं और सृजन व्यक्तित्व का परिचायक होता है। जब हम रवीन्द्रनाथ त्यागी जी के व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करते हैं तो उनका साहित्य उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है। रवीन्द्रनाथ त्यागी के साहित्य में दो प्रमुख रूप सामने आते हैं—एक कवि और दूसरा हास्य व्यंग्यकार का। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यासकार, बाल साहित्याकार, समीक्षक, सम्पादक के रूप में भी लेखन किया है, परन्तु इन रूपों में उनकी रचनाएँ अत्यल्प हैं।

1 सितम्बर, 1931 को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में स्थित नहटौर नामक कस्बे में जन्में रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अपना बचपन बहुत ही गरीबी और अभाव में बिताया था। पिता के अकर्मण्य जीवन एवं माता की असहायता और दरिद्रता, और छ: छोटे और तीन बड़े भाई-बहन की मृत्यु ने इनके जीवन को बहुत कठिन और संघर्षशील बनाया। त्यागीजी के शब्दों में—"मुर्दों को देखने की आदत मुझे बचपन से ही पड़ गयी थी क्योंकि हर साल कोई भाई या बहन मरता ही रहता था और उसके लिए कफन भी मुश्किल से ही मिलता था।" भयंकर गरीबी के कारण वे 'डिप्रेशन' के मरीज बने। "मेरा आरम्भिक जीवन बड़ी असहायता की स्थिति में व्यतीत हुआ। बाद में मुझे मानसिक रोग हो गया और डिप्रेशन का मरीज हो गया।" गरीबी ने उन्हें बहुत कुछ सिखाया। इसलिए उन्होंने गरीबी को वरदान माना है। उनकी गरीबी ने ही उन्हें साहित्यकार बनने के लिए प्रेरणा दी। बचपन में गरीबी तथा विषय परिस्थितियों के कारण त्यागीजी के लिए स्कूल की पढ़ाई एक असंभव स्वप्न की बात थी पर इस सपने को उन्होंने वर्षों तक के स्वाध्याय द्वारा साकार किया। मध्यमा की परीक्षा पास कर वे किसी तरह पाठशाला में भरती हुए। वर्षों तक संस्कृत पढ़ी और बाद में मेहनत-मजदूरी करके नियमित शिक्षा प्राप्त की प्रयाग विश्वविद्यालय से एम०ए० किया, उसमें प्रथम स्थान प्राप्त किया और देश की सर्वोच्च सिविल सर्विसेज की प्रतियोगिता परीक्षा में बैठे और उसमें चुन लिए गए। अनेक विषय परिस्थितियों में भी उन्होंने शिक्षा जारी रखी थी इस सम्बन्ध में त्यागीजी लिखते हैं—"मेरी आर्थिक स्थिति इतनी नाजुक थी कि यदि सारे समुद्रों की स्याही बने, सारे वृक्षों की कलम बने और सरस्वती जी यदि खुद ही वर्णन करने बैठें तो भी शायद सफलता को प्राप्त न हो। मगर हिममत थी कि मैं किसी तरह भी चौबीस घंटे का सफर तय करके इलाहाबाद पहुँच ही गया।....खैर, मेरे भाग्य में शिक्षित होना लिखा था और शिक्षा मुझे काफी मिकदार में मिली थी पहले एक पाठशाला में संस्कृत पढ़ी अष्टाध्यायी के आठों अध्याय पढ़े। कालिदास और जयदेव ने मुझे अभिभूत कर दिया और उनका जादू अभी तक कायम है। शिल्प की पूर्णता क्या चीज होती है—यह मैंने संस्कृत से सीखा। इसके बाद एक परम दयालु हेडमास्टर की कृपा से मैं फिर स्कूल में भरती हो गया। उसके बाद में पढ़ता गया और पढ़ता गया।"

सन् 1950 में वे प्रयाग विश्वविद्यालय में आये थे। उन दिनों प्रयाग कवियों का नगर था। पंत, निराला, महादेवी वर्मा, बच्चन, फिराक और बिस्मिल इलाहाबाद में रहकर काव्य-सृजन करते थे। प्रयाग विश्वविद्यालय में आने के बाद उन्हें अनेक महान् लेखकों व विद्वानों का सानिध्य प्राप्त हुआ, जिनका उनके साहित्यिक जीवन पर बहुत प्रभाव रहा। कमलेश्वर, रामावतार चेतन, दुष्यंत कुमार, रमेश कुंतल मेघ जैसे महान साहित्यकार उनके सहपाठी थे। हरिवंशराय बच्चन, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त जैसे दिग्गज उस समय उनके प्रेरक गुरु थे। उनके बारे में त्यागीजी ने लिखा है—"जिन दिनों मैं वहाँ पढ़ता था तब प्राय: प्रत्येक विभाग में अपने विषय का कोई दिग्गज वहाँ जरूर विराजमान था। इतिहास डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद पढ़ाते थे, अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष सतीशचन्द्र देव थे, अर्थशास्त्र में जमशेद कै० खुसरू मेहता थे, गणित को डॉ० गोरखप्रसाद संभालते थे और रसायनशास्त्र में नीलरतन धर थे। हिन्दी विभाग जो था वह डॉ० रामकुमार वर्मा की 'रेशमी टाई' से बँधा था।" डॉ० धर्मवीर भारती ने उन्हें 'परिमल' का जूनियर सदस्य भी बनाया। रवीन्द्रनाथ त्यागी का परिचय सुमित्रानन्दन पंत, निराला, वाचस्पति पाठक, अमृतराय, बच्चन, प्रकाशचंद्र गुप्त तथा जगदीश गुप्त, शमशेर, विनोदचंद्र पांडेय से रहा। निराला ने तो रवीन्द्रनाथ त्यागी की लेखकीय प्रतिभा को पहचानकर उनके आगे चलकर महान साहित्यकार बनने की भविष्यवाणी भी की थी प्रयाग में उन्होंने पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, महादेवी वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, धर्मवीर भारती आदि को काफी नजदीक से जाना था।

प्रयाग विश्वविद्यालय से शुरू हुआ उनका काव्य-सृजन का सिलसिला बाद में भी जारी रहा। 'भारती-भंडार' द्वारा उनकी कविता की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। अपनी पहली पुस्तक देखकर वे फूले नहीं समाये। इस संदर्भ में त्यागीजी ने स्वयं लिखा है—"भगवान ने दिया तो छप्पर फाड़कर दिया। या तो पोथी छपती ही नहीं थी और छपी तो ऐसे संस्थान से छपी जहाँ से पोथी छपाने के लिए आपको प्रसाद, पंत या निराला होना जरूरी था। सूची-पत्र में इन लोगों के साथ अपना नाम देखकर मुझे महसूस हुआ कि मैं अगर इन कवियों से बड़ा नहीं तो कम-से-कम इनके बराबर जरूर हूँ। खैर, किताब जो छपी वह शान से छपी "फ्लैप

पर सुमित्रानन्दन पंत, उपेन्द्रनाथ अश्क और रघुपति सहाय 'फिराक' की सम्मतियाँ थी, छपाई सम्मेलन मुद्रणालय में कराई गई थी, जिल्द रेक्सीन की थी, आवरण सोना घोषाल का था और कागज जो था वह शहर में सबसे बढ़िया था।'' रवीन्द्रनाथ त्यागी मूलत: कवि हैं तथा उन्हें कविताओं से ज्यादा सन्तुष्टि मिलती है। वे कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य में भी कवि हो जाते हैं। उनके लेखकीय जीवन का आरम्भ कविता से हुआ था। कविता उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का आधार हैं। अब तक उनके सात कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—1. सूखे और हरे पत्ते (1962), 2. कल्प वृक्ष (1965), 3. आदिमराग (1978), 4. आखिरकार (1978), 5. सलीब से नाव तक (1983), 6. अंतिम बसंत (1988) 7. कृष्णपक्ष की पूर्णिमा (1996)। डॉ० कमल किशोर गोयनका उनके कवि व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि, ''त्यागीजी की काव्य यात्रा निजी जीवन की व्यथा, उदासी, प्रकृति विहीन शहरी जीवन, मानव की विभीषिका तथा उनकी नियति, मानव मुक्ति के साथ प्रकृति के प्रांगण में लौटने की अदम्य आकांक्षा तक, अपनी अलग पहचान बनाती हुई निरन्तर आगे बढ़ती गई है। कवि की अनुभूतियाँ बहुआयामी हैं।''

रवीन्द्रनाथ त्यागी जब दु:खी होते हैं तब हास्य-व्यंग्य लिखते हैं और प्रसन्नचित होते हैं तो उदास कविता। अमृतराय उनके उत्कृष्ट हास्य-व्यंग्य लेखन का कारण उनकी उदासी ही मानते हैं। उनकी कविताओं में उदासी और गद्य में हास्य-व्यंग्य है। ''मूलत: मैं कवि हूँ। व्यंग्य रचनाओं को जब मान्यता मिलने लगी तो मैं उन्हें लगातार लिखने लगा।'' रवीन्द्रनाथ त्यागी के लगभग चौबीस व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें 'खुली धूप में नाव पर' (1963), 'भित्ति-चित्र' (1966), 'मल्लिनाथ की परम्परा' (1969), ''कृष्णवाहन की कथा' (1971), 'शोकसभा' (1974), 'अतिथि-कक्ष' (1977), 'फूलों वाले कैक्टस' (1978), 'ऋतु वर्णन' (1979), 'भद्र पुरुष' '1980), 'इस देश के लोग' (1982), पदयात्रा (1985), 'पराजित पीढ़ी के नाम' (1988), 'आत्मलेख' (1988) 'विषकन्या' (1990), 'गणतन्त्र दिवस की शोभायात्रा' (1991), 'इतिहास का शव' (1993), 'देश-विदेश की कथा' (1994), 'भाद्रपद की सांझ' (1996), लाल पीले फूल (1997) 'बादलों का गाँव' (1999) आदि उनके प्रसिद्ध व्यंग्य-संग्रह हैं। अपनी सृजन प्रक्रिया के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है—''मैं अपने वातावरण के प्रति सचेत रहता हूँ काफी पढ़ता-लिखता हूँ, कागज-कलम और टेबल का इंतजाम करता हूँ और बस लिखने बैठ जाता हूँ। आमतौर पर वही, लिखता हूँ जो कि लिखना चाहता हूँ, पर कभी-कभी इरादा होता है विद्यापति पर लिखने का और लेख का अंत होता है मेढक पर।'' ''प्राय: रात को ही लिखता हूँ। रिटायरमेंट के बाद दिन में भी लिखने लगा हूँ। मैं प्रत्येक रचना को दो बार तो लिखता ही हूँ। कुछ रचनाओं को पाँच-पाँच दफा भी लिखा है।'' यह सच है कि लेखक सृजन-प्रक्रिया के समय भारी दबाव में रहता है, परन्तु रवीन्द्रनाथा त्यागी तनाव और लेखन में भी मस्त रहते थे। उनके लेखन में एक विरोधाभास अवश्य मिलता है। अपने लेखन के संदर्भ में उनका कथन है—''मैं एक भावुक, उदास और बेहद खुशमिजाज व्यक्ति हूँ। तीनों एक साथ।''

वस्तुत: रचनाकार, विशेषकर व्यंग्यकार के लिए तो यह आवश्यक होता है कि उसमें अपने परिवेश की सही समझ हो। उसकी विसंगतियों विकृतियों, को वह पहचान सके। यह पहचान और गहरी तब हो जाती है जब व्यंग्यकार ने स्वयं उन्हें अनुभव किया हो। अनुभव भोगे हुए यथार्थ से ही उपजता है और देखे गए परिवेश से भी। देखे हुए परिवेश से इसलिए कि रचनाकार अतिरिक्त रूप से संवेदनशील होता है। इसी कारण वह आस-पास की त्रासदियों से आम व्यक्तियों की तुलना में ज्यादा प्रभावित होता है और जिन बातों से वह प्रभावित होता है उन्हीं का प्रभाव उसके साहित्य में दिखाई देता है। रवीन्द्रनाथ त्यागी के सन्दर्भ मे भी यही कहना ठीक है कि जिन लोगों के साथ वे रहे, जिन परिस्थितियों में रहे, जिनके जीवन से अपने जीवन को प्रभावित किया उन सबको अपनी रचना में कही-न-कही स्थान दिया। कुल मिलाकर जीवन के विविध अनुभवों ने ही उन्हें व्यंग्य करना सिखाया है। रवीन्द्रनाथ त्यागी हिन्दी व्यंग्य साहित्य में एक विलक्षण व्यक्तित्व लेकर आये। उन्होंने उसे एक नई गति, नई रंगत, नई दिशा दी और उसे परिवेश से जोड़कर यथार्थ का अभिव्यंजक बनाया। रवीन्द्रनाथ त्यागी मानते हैं कि व्यंग्य-लेखन चुनौती भरा है। थोड़ी-सी असावधानी रचना को सतही बना देती है और थोड़ी-सी सजगता तथा कुशलता रचना को सार्थक बनाने के लिए सहायक होती है। इस जोखिम को रवीन्द्रनाथ त्यागी ने झेला एवं निभाया है। इसलिए उनका व्यंग्य कलात्मक कुशलता का प्रमाण बना है। उनका व्यंग्य एक विशिष्टता लिए हुए है बिना लाग-लपेट, छल-प्रपंचों से दूर समाज के यथार्थ का पर्दाफाश करते थे। इस विशिष्टता के पीछे एक कारण यह भी था कि वे देश की सर्वोच्च सिविल सेवा के एक बड़े अफसर थे। जिससे सत्य कहने में कही कोई हिचकिचाहट नहीं थी।

❐

UNIT-VIII

अन्य गद्य विधाएँ : द्वितीय खण्ड

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राहुल सांकृत्यायन का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर राहुल सांकृत्यायन का जन्म 9 अप्रैल, 1898 में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पंदहा गाँव में हुआ।

प्र.2. मेरी तिब्बत यात्रा कितने खण्डों में विभाजित है?

उत्तर मेरी तिब्बत यात्रा पाँच खण्डों में विभाजित है—

1. ल्हासा से उत्तर की ओर
2. चाड की ओर
3. सन्क्य की ओर
4. त्रेनम की ओर
5. नेपाल की ओर

प्र.3. यात्रा वृतान्त की क्या विशेषताएँ होती हैं?

उत्तर यात्रा वृतान्त की दो विशेषताएँ होती हैं—

1. सौंदर्य का बोध
2. कौतूहल को जगाए रखना।

प्र.4. यात्रा वृतान्त में किसकी होना आवश्यक है?

उत्तर यात्रा वृतान्त में आत्मीयता का भाव होना आवश्यक है।

प्र.5. मुक्तिबोध को उनके घर पर क्या कहकर पुकारा जाता था?

उत्तर मुक्तिबोध उनके घर पर बाबूसाहब कहकर पुकारा जाता था।

प्र.6. मुक्तिबोध की कहानी संग्रह कौन-से है?

उत्तर मुक्तिबोध के कहानी संग्रह है—काठ का सपना तथा सतह से उठता आदमी।

प्र.7. मुक्तिबोध किस विचारधारा के समर्थक थे?

उत्तर मुक्तिबोध अस्तित्ववादी विचारधारा के समर्थक थे।

प्र.8. डायरी लेखन कितने प्रकार का होता है?

उत्तर डायरी लेखन मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है—

1. व्यक्तिगत डायरी
2. वास्तविक डायरी
3. काल्पनिक डायरी तथा
4. साहित्यिक डायरी।

प्र.9. डॉ० पद्मसिंह शर्मा का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर पद्मसिंह शर्मा (कमलेश) का जन्म 22 जनवरी, 1915 को उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में बरी का नगला नामक गाँव में हुआ था।

प्र.10. 'दूब के आँसू' तथा 'धरती पर उतरों' किसका काव्य संग्रह हैं?

उत्तर 'दूब के आँसू' तथा 'धरती पर उतरों' कमलेश जी के काव्य संग्रह हैं।

TOUCH 'n PASS

प्र.11. आधुनिक हिन्दी में इंटरव्यू विधा के सूत्रपात का श्रेय किसको जाता है?

उत्तर आधुनिक हिन्दी में इंटरव्यू विधा के सूत्रपात का श्रेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को जाता है।

प्र.12. जूठन किसकी आत्मकथा है?

उत्तर जूठन ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा है।

प्र.13. ओमप्रकाश वाल्मीकि कर कहानी संग्रह कौन-से हैं?

उत्तर ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहानी संग्रह है—सलाम, हतरी, घुसपैठिया तथा अम्मा एंड अदर स्टोरीज।

प्र.14. 'जूठन' नाम किसके द्वारा सुझाया गया था?

उत्तर 'जूठन' नाम हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक राजेन्द्र यादव द्वारा सुझाया गया था।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गजानन माधव मुक्तिबोध के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

गजानन माधव मुक्तिबोध : जीवन परिचय

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर, 1917 को श्योपुर में माधवराव-पार्वती दंपति के घर हुआ। वे माता-पिता की तीसरी संतान थे। उनसे पहले के दोनों शिशु अधिक जीवित नहीं रह सके थे। इस कारण मुक्तिबोध के लालन-पालन और देख-भाल पर अधिक ध्यान दिया गया। उन्हें खूब स्नेह और ठाठ मिला। शाम को उन्हें बाबागड़ी में हवा खिलाने के लिए बाहर ले जाता। सात-आठ की उम्र तक अर्दली ही उन्हें कपड़े पहनाते थे। उनकी सभी जरूरतों का ध्यान रखा जाता रहा। इनकी हर माँग पूरी की जाती थी तथा इन्हें घर में 'बाबूसाहब' कहकर पुकारा जाता था। वे परीक्षा में सफल होते तो घर में उत्सव मनाया जाता था। इसके अतिरिक्त लाड़-प्यार और राजसी ठाट-बाट में पला बालक हठी और जिद्दी हो गया।

इनके पिता पुलिस विभाग के इंस्पेक्टर थे। अक्सर उनका स्थानांतरण होता रहता था। इसलिए मुक्तिबोध की पढ़ाई में बाधा पड़ती रहती थी। सन् 1930 में मुक्तिबोध ने मिडिल की परीक्षा उज्जैन से दी और फेल हो गए। कवि ने इस असफलता को अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने 1953 में साहित्य रचना का कार्य प्रारम्भ किया और सन् 1939 में इन्होंने शांता जी से प्रेम विवाह किया। 1942 के आस-पास वे वामपंथी विचारधारा की ओर झुके तथा शुजालपुर में रहते हुए उनकी वामपंथी चेतना मजबूत हुई। मुक्तिबोध अस्तित्ववादी विचारधारा के समर्थक थे।

मुक्तिबोध तारसप्तक के पहले कवि थे। मनुष्य की अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनैतिक चेतना से समृद्ध उनकी कविता पहली बार 'तारसप्तक' के माध्यम से सामने आई, लेकिन उनका कोई स्वतन्त्र काव्य-संग्रह उनके जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो पाया। मृत्यु के पहले श्रीकांत वर्मा ने उनकी केवल 'एक साहित्यिक की डायरी' प्रकाशित की थी। ज्ञानपीठ ने ही 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रकाशित किया था। इसी वर्ष नवम्बर, 1964 में नागपुर के विश्वभारती प्रकाशन ने मुक्तिबोध द्वारा 1963 में ही तैयार कर दिये गये निबंधों के संकलन नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध को प्रकाशित किया था। पारवर्ती वर्षों में भारतीय ज्ञानपीठ से मुक्तिबोध के अन्य संकलन 'काठ का सपना' तथा 'विपात्र' (लघु उपन्यास) प्रकाशित हुए। पहले कविता संकलन के 15 वर्ष बाद, 1980 में उनकी कविताओं का दूसरा संकलन 'भूरी भूर खाक धूल' प्रकाशित हुआ और 1985 में 'राजकमल' से पेपरबैक में छः खंडों में 'मुक्तिबोध रचनावली' प्रकाशित हुई, वह हिन्दी के इधर के लेखकों की सबसे तेजी से बिकने वाली रचनावली मानी जाती है। कविता के साथ-साथ, कविता विषयक चिंतन और आलोचना पद्धति को विकसित और समृद्ध करने में भी मुक्तिबोध का योगदान अन्यतम हैं। उनके चिंतनपरक ग्रंथ हैं—एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता का आत्मसंघर्ष और नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र। इनके द्वारा लिखी गई पुस्तक भारत का इतिहास और संस्कृति इतिहास है। काठ का सपना तथा सतह से उठता आदमी उनके कहानी संग्रह हैं तथा विपात्र उपन्यास है। उन्होंने 'वसुधा', 'नया खून' आदि पत्रों में संपादन-सहयोग भी किया। मात्र 46 वर्ष की आयु में गजानन माधव मुक्तिबोध का देहावासान 11 सितंबर, 1964 को भोपाल में हो गया।

प्र.2. डायरी के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

डायरी का स्वरूप

वस्तुत: दैनंदिनी आधुनिक काल की ही देन है जो डायरी विधा से प्रचलन में आई और आज डायरी का गद्य साहित्य की कथित विधाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसे तो 'डायरी' अंग्रेजी शब्द है पर अब उसे हिन्दी में पूरी तरह मान्यता मिल चुकी है। हिन्दी में

TOUCH 'n PASS

दैनंदिनी, वासुरी या वासुरिका शब्द का प्रयोग डायरी के अर्थ में होता है। यह विधा पश्चिम की देन है। हिन्दी में गद्य के विकास के साथ-साथ डायरी विधा का विकास हुआ पत्र-पत्रिकाओं का इस विधा को बढ़ाने में विशेष योगदान रहा है। डायरी का प्रमुख उद्देश्य आत्म-विश्लेषण एवं आत्मिक विवेचन होता हैं। इसमें से किसी व्यक्ति विशेष, जो स्वयं को लिखने वाला होता है, का ही व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। यह अलग बात है कि दिनभर में जो व्यक्ति के साथ होता है या जिसका उस पर प्रभाव है या उसके संपर्क में आता है, के बारे में भी उल्लेख होता हैं पर मुख्य रूप से लिखने वाले का व्यक्तित्व ही प्रधान होता है। इसमें लेखक समय और स्थान के अनुसार घटनाओं का वर्णन करता है, यह घटना उसके व्यक्तित्व विश्लेषण में सहायक होती हैं। कई डायरी लेखक विस्तार से उसकी दैनिक चर्चा का वर्णन करते हैं, कुछ ऐसी भी बातें होती हैं जिनका कोई महत्त्व नहीं होता। लेखक घटनाओं का प्रकार इस प्रकार वर्णन करता है कि पाठक सहज ही आकर्षित हो जाता है और उसे लगता है कि यह सब कुछ मेरे साथ ही घटित हुआ और वह उसके साथ अपने को आत्मसात् कर लेता हैं।

डायरी में रोज के अनुभवों, घटनाओं और प्रतिक्रियाओं को कोई लेखक जब लिखता है तो उससे डायरी नामक विधा का जन्म होता है। इस विधा में संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, यात्रा-वृतांत आदि सभी अनुभव एक साथ घुलमिल जाते हैं। डायरी किसी व्यक्ति की निजी संपति होती हैं, किन्तु जब डायरी प्रकाशित कर दी जाती है तो वह सामान्य पाठक के लिए भी उपलब्ध हो जाती है और इससे निजीपन समाप्त हो जाता है और साहित्य संसार की एक संपति बन जाती है। कोई भी डायरी कितनी अधिक लोकप्रिय है, यह लेखक की महानता या लोकप्रियता पर निर्भर होता है। यदि किसी व्यक्ति विशेष के निजी जीवन में झाँकना हो तो उसकी डायरी के पन्ने सबसे महत्वपूर्ण साबित होते हैं। डायरी के सिर्फ तिथि क्रम का ही उल्लेख नहीं करते हैं बल्कि यह एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से हम व्यक्ति विशेष के निजी अनुभव, उसकी प्रतिक्रियाओं और उसकी रुचियों से भी अवगत हो सकते हैं। लेखक की अनुभूतियों की छाप डायरी में सदैव बनी होती है।

डायरी साहित्य का विभाजन व्यक्तिगत डायरी और साहित्यिक डायरियों के रूप में किया जा सकता है। व्यक्तिगत डायरी का संबंध व्यक्ति विशेष से होता है जिसमें लेखक अपने जीवन की घटनाओं, प्रसंगों, निजी अनुभूतियों, विचारों तथा तथ्यों को लिखता रहता है। ये डायरियाँ उसका अपना गोपन होती हैं। ये लेखक की, परिस्थितियों का लेखा-जोखा होती हैं। साहित्यिक डायरियाँ वस्तुत: दैनंदिनी नहीं होतीं, इनमें इसे शिल्प के रूप में अपनाया जाता है। साहित्यिक डायरी में कल्पना को अधिक स्थान दिया जाता है। ऐसी डायरी में रचनात्मक साहित्य का सृजन होता है। उदाहरण के लिए डॉक्टर देवराज का उपन्यास 'अजय की डायरी' और मुक्तिबोध की पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी'। हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास जितना ही पुराना है डायरी का इतिहास भी उतना ही पुराना है। पत्र-पत्रिकाओं का इसके विकास में विशेष योगदान रहा। इनमें विभिन्न लेखकों की डायरियों के अंश प्रकाशित होते रहे हैं। राधाचरण गोस्वामी की दैनंदिनी 1885 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। इसमें अपने हाथ से लिखी दिनचर्या और कुछ प्रतिज्ञाएँ मिलती हैं।

अत: कह सकते हैं कि मानव के समस्त भावों मानसिक उद्वेगों, अनुभूति और विचारों को अभिव्यक्त करने में साहित्य का सर्वोच्च स्थान है। समीक्षकों ने डायरी को साहित्य की कोटि में इसलिये रखा हैं क्योंकि वह किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्व का उद्घाटन करती है या मानव समाज के विभिन्न पक्षों का सूक्ष्म और जीवंत चित्र उपस्थित करती हैं। डायरी लेखक अपनी रुचि व आवश्यकतानुसार राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि विभिन्न पक्षों के साथ निजी अनुभूतियों का चित्रण कर सकता है। डायरी लेखन मुख्य चार प्रकार का होता है—1. व्यक्तिगत डायरी 2. वास्तविक डायरी 3. काल्पनिक डायरी 4. साहित्यिक डायरी।

प्र.3. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के जीवन परिचय एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' : जीवन परिचय

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का जन्म 22 जनवरी, सन् 1915 में उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में 'बरी का नगला' नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम श्री किशनलाल शर्मा तथा माता का नाम धर्मवती था। बचपन में ही इनके पिता की मृत्यु के पश्चात् इनका पालन-पोषण अत्यन्त कठिनता से हुआ। अनेक आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए भी इन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० प्रथम श्रेणी से करने के बाद इसी विश्वविद्यालय से ही पी०एच०डी० की उपाधि ग्रहण की। अपनी लगन और कठिन परिश्रम के परिणामस्वरूप ये कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर प्रतिष्ठित हुए। यद्यपि ये अधिकतर समय पंजाब, दक्षिण भारत, गुजरात और आगरा में रहे किन्तु जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल हरियाणा में ही बीता। इनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए हरियाणा के भाषा-विभाग, ने इन्हें अनेक बार सम्मानित किया। 5 फरवरी, 1974 को

TOUCH 'n PASS

हृदयगति रुकने से इनका आकस्मिक निधन हो गया। रचनाएँ—डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। यह एक सफल कवि, लेखक, निबन्धकार होने के साथ-साथ साक्षात्कार विधा के जन्मदाता भी हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं—
काव्य संग्रह—'तू युवक है', 'दूब के आँसू', 'धरती पर उतरो', 'एक युग बीत गया'।
निबन्ध संग्रह—'साहित्यिक निबन्ध मणि', साहित्य—'संदर्भ और दिशाएँ'

खण्डकाव्य-'दिग्विजय'

इन रचनाओं के अतिरिक्त कमलेश जी ने हिन्दी के साहित्यकारों से साक्षात्कार करके उन्हें लिपिबद्ध किया हैं तथा 'मैं इनसे मिला' नाम से दो भागों में प्रकाशित करवाया है।

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' को विशेष प्रसिद्धि एक संवेदनशील कवि के रूप में मिली हैं। इनका 'एक युग बीत गया' काव्य संग्रह उत्कृष्ट कोटि का है। इनके साहित्य में मान प्रेम और क्रांति के दो स्वरों को स्पष्ट देखा जा सकता है। इन्होंने क्रांति का प्रचार-प्रसार जन सामान्य से किया। देश को एकता के सूत्र में बाँधने का स्वर इनकी रचनाओं से मिलता है। इन्होंने अपने 'दिग्विजय' खंड काव्य में राष्ट्र की एकता को राष्ट्र की जीवनी शक्ति माना है। डॉ० कमलेश एक सफल प्राध्यापक के साथ-साथ एक अच्छे समीक्षक एवं शोधकर्ता थे। इनके द्वारा लिखित 'हिन्दी गद्य विधाएँ और विकास' इनके समय का श्रेष्ठ शोध प्रबन्ध है। ये सरस साहित्य के सर्जक होने के साथ-साथ एक सफल अनुवादक भी थे। इन्होंने अंग्रेजी और गुजराती के अनेक ग्रंथों का अनुवाद किया। इन्हें हिन्दी गद्य की साक्षात्कार विधा का जन्मदाता माना जाता है। हिन्दी के शीर्ष साहित्यकारों से साक्षात्कार करके उनके बाह्य जीवन, विचार और साहित्य सम्बन्धी अनेक प्रश्नों व उत्तरों को लिपिबद्ध करके इन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है मैं इनसे मिला' नामक इनके साक्षात्कार संग्रह की साहित्य जगत में पर्याप्त चर्चा हुई है। समीक्षा के क्षेत्र में भी इनकी देन अद्वितीय है। कमलेश जी की भाषा सरल, सहज और स्पष्ट हैं। इनकी भाषा में प्रवाहमयता और लयात्मकता विद्यमान हैं। भाषा में सरसता और उसका भावानुकूल होना इनकी भाषा की अपनी विशेषता हैं। कमलेश जी को भाषा का शिल्पी कहा जाता है।

प्र.4. कमलेश के 'मै इनसे मिला' साक्षात्कार की भाषा-शैली की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

भाषा-शैली की विशेषताएँ

कमलेश जी की भाषा-शैली में सरलता, स्पष्टता और व्यावहारिकता है। कमलेश जी की भाषा में चित्रात्मकता का गुण विद्यमान हैं। वे शब्दों के माध्यम से चित्र प्रस्तुत करने में निपुण है। प्रस्तुत साक्षात्कार की भाषा में भी चित्रात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरणस्वरूप—'मैंने एक दिन दुछती में पहुँचने के लिए रस्सी बाँधी और ऊपर चढ़ गया। जल्दी में एक पुस्तक हाथ लगी-लल्लूलाल जी की 'प्रेमसागर'। उसे लेकर मैं नीचे उतर आया और बस्ते में ज्यों-त्यों जमा दिए।' डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' की भाषा में प्रवाहमयता एक ऐसा गुण है जो आरम्भ से अन्त तक विद्यमान है। प्रवाहमयता होने से पूरा विषय परस्पर गुंथा हुआ प्रतीत होता है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी साक्षात्कार में भी यह प्रवाहमयता दिखाई देती है। उदाहरणस्वरूप—'उनके शब्दों में जादू का असर हैं। शब्द निकलते हैं और सुनने वाले के हृदय को व्यंजना के पंखों पर उठाकर किसी सुदूरलोक में ले जाते हैं। उनका व्याख्यान, जिन्होंने सुना है, वे जानते हैं कि वह साहित्य बोलते हैं। फिर कविता-पाठ का तो कहना ही क्या? जब मैं चला तो उनकी पंक्तियाँ मेरे मानस-पट पर अंकित थी।' कमलेश जी का शब्द-भंडार विपुल है। इनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों की बहुलता है। अंग्रेजी तथा उर्दू-फारसी के शब्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है। भिन्न-भिन्न शब्दों को एक सूत्र में पिरोकर उन्होंने जो माला प्रस्तुत की है वह अत्यन्त प्रभावशाली एवं विषय को रोचक बनाने में सक्षम है। कमलेश जी की भाषा में सरसता और सहजता है। कमलेश जी की शैली अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक है। उनकी शैली में सरसता और रोचकता निरन्तर विद्यमान रहती है।

प्र.5. साक्षात्कार के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

साक्षात्कार का स्वरूप

साक्षात्कार का तात्पर्य उस विधि से है जिसमें साक्षात्कर्ता सम्बन्धित लोगों से व्यक्तिगत रूप से मिलकर और उनसे प्रश्न पूछकर एवं उनसे उत्तर प्राप्त करके किसी विषय पर वास्तविक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रणाली में आपसी बातचीत एवं आमने-सामने के सम्बन्ध के आधार पर मनुष्यों की भावनाओं, मनोवृत्तियों मूल्यों के बारे में बहुत कुछ ज्ञात किया जाता है। 'साक्षात्कार' के लिए 'इण्टरव्यू', 'भेंट', 'भेंटवार्ता', 'चर्चा', 'विशेष परिचर्चा', 'साक्षात्कार' आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु अधिकांशत: इण्टरव्यू शब्द ही प्रचलित है। 'इण्टरव्यू' का शाब्दिक अर्थ आन्तरिक दृष्टिकोण होता है। इस प्रकार 'भेंटवार्ता' वह विधा है, जिसके माध्यम से भेंटकर्त्ताकार किसी महान् व्यक्ति के मन और जीवन में प्रश्नों के झरोखे से झाँककर, उसके आन्तरिक

TOUCH 'n' PASS

दृष्टिकोण को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। प्राय: इण्टरव्यू उन विशिष्ट एवं ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों का लिया जाता है जिनके विचारों को जानने की जनसाधारण के हृदय में सहज जिज्ञासा होती है। 'इण्टरव्यू' शब्द से आज एक ऐसी विशिष्ट कोटि में विद्यमान अन्य किसी व्यक्ति (विशेषकर प्रख्यात और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति) से प्रत्यक्ष मिलकर उसके बारे में सीधे-सीधे जानकारी प्राप्त करता है।

साक्षात्कार साहित्य का इतिहास उतना ही नवीन है जितना कि पत्रकारिता का। आधुनिक हिन्दी में इण्टरव्यू विधा के सूत्रपात का श्रेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को है। सितम्बर, 1931 के 'विशाल भारत' में इनका 'रत्नाकरजी से बातचीत' शीर्षक इण्टरव्यू प्रकाशित हुआ। इनका दूसरा इण्टरव्यू जनवरी, 1932 के 'विशाल भारत' में 'प्रेमचन्द' जी के साथ दो दिन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके कुछ समय उपरान्त नवम्बर, 1933 में पं० श्रीराम शर्मा का 'कबूतर' शीर्षक इण्टरव्यू प्रकाशित हुआ। सन् 1941 में 'साधना' में सत्येन्द्रजी ने एक निश्चित प्रश्नावली के आधार पर गणमान्य साहित्यकारों के इण्टरव्यू प्रकाशित किये। इनमें जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा भदन्त आनन्द कोसल्यायन से तथा चिरंजीलाल 'एकांकी' द्वारा महादेवी वर्मा से लिया गया इण्टरव्यू विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्रन्थ रूप में भेटवार्ताओं के प्रथम संग्रह रूप का श्रेय बेनी माधव शर्मा कृत 'कविदर्शन' को प्राप्त है, जिसमें अयोध्या सिंह उपाध्याय, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त सदृश साहित्यकारों के लिए गये इण्टरव्यू संगृहीत हैं।

इण्टरव्यू से साहित्य का अगला चरण का प्रारम्भ होता है। डॉ० कमलेश के 'मैं इनसे मिला' शीर्षक से, जो दो भागों में प्रकाशित (1952 ई०) 22 व्यक्तियों की भेटवार्ताओं से है। इन भेटवार्ताओं में लेखक ने अनेक प्रयोग भी किये हैं। पहले निश्चित प्रश्नों के आधार पर व्यक्ति विशेष पर परिचय देने की चेष्टा की, फिर महादेवीजी तथा निराला जैसे व्यक्तियों से सीधे प्रश्न न पूछ जाने पर कुछ 'इम्प्रेशन' के सहारे भेंटवार्ताएँ प्रस्तुत की और फिर स्वच्छन्दतापूर्वक बिना प्रश्नों के पूर्वाग्रह के, आवश्यकतानुसार प्रश्नों से प्रश्न निकालते हुए व्यक्ति विशेष की भेंटवार्ताएँ प्रस्तुत की। वस्तुत: यह उनकी कला के विकास के सोपान थे, जो व्यक्ति विशेष के प्रभाव से विकसित होते रहे।

प्र.6. ओमप्रकाश वाल्मीकि के जीवन परिचय एवं उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

ओमप्रकाश वाल्मीकि : जीवन परिचय

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 को उत्तर प्रदेश के जनपद मुजफ्फरनगर, ग्राम बरला में एक तथाकथित अछूत (दलित) वाल्मीकि परिवार में हुआ। उन्होंने अपनी शिक्षा अपने पैतृक गाँव और देहरादून से प्राप्त की। उनका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों में बीता आरंभिक जीवन में उन्होंने जो आर्थिक, सामाजिक और मानसिक कष्ट झेलने पड़े उसकी उनके साहित्य में मुखर अभिव्यक्ति हुई है। वाल्मीकि कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे। वहाँ वे दलित लेखकों के संपर्क में आए और उनकी प्रेरणा से डॉ० भीमराव अम्बेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। इससे उनकी रचना-दृष्टि में बुनियादी परिवर्तन हुआ। वे देहरादून स्थित आर्डिनेंस फैक्टरी में एक अधिकारी के रूप में काम करते हुए अपने पद से सेवानिवृत्त हो गए। 17 नवम्बर, 2013 ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का देहावसान हो गया।

वाल्मीकि के अनुसार दलितों द्वारा लिखा जाने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। उनकी मान्यतानुसार दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वहीं उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आशय की पुष्टि के लिए उन्होंने अपनी आत्मकथा जूठन में वंचित वर्ग की समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अस्सी के दशक से लिखना प्रारम्भ किया, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में वे चर्चित और स्थापित हुए 1997 में प्रकाशित अपनी आत्मकथा 'जूठन' से। इस आत्मकथा से पता चलता है कि किस तरह के उत्पीड़न के बीच एक दलित रचनाकार की चेतना का निर्माण और विकास होता है। किस तरह लम्बे समय से भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर खड़ी जाति का एक बालक ओमप्रकाश सवर्णों से मिली चोटों-कचोटों के बीच परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ दलित आन्दोलन का क्रान्तिकारी योद्धा 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' बनता है। 'जूठन' दलित साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कविता संग्रह—सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका, अब और नहीं, शब्द झूठ नहीं बोलते, चयनित कविताएँ।

कहानी संग्रह—सलाम, घुसपैठिए, अम्मा एंड अदर स्टोरीज, छतरी।

आत्मकथा—'जूठन' इस आत्मकथा का अनुवाद अनेक भाषाओं में हुआ है।

आलोचना—दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सफाई देवता।

दलित साहित्य—अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

नाटक—दो चेहरे, उसे वीर चक्र मिला था।

ओमप्रकाश वाल्मीकि को अनेक सम्मान एवं पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं; जैसे—सन् 1993 में डॉ० अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार, सन् 1995 में परिवेश सम्मान, न्यू इंडिया बुक पुरस्कार 2004, कथाक्रम सम्मान 2001, 8वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 2006 न्यूयार्क, अमेरिका सम्मान और साहित्यभूषण पुरस्कार (2008-2009) से अलंकृत किया जा चुका है।

प्र.7. साहित्य लेखक के अनुसार आत्मकथा के स्वरूप पर टिप्पणी लिखिए

उत्तर साहित्य में आत्मकथा (autobiography) किसी लेखक द्वारा अपने ही जीवन का वर्णन करने वाली कथा को कहते हैं। यह संस्मरण से मिलती-जुलती लेकिन भिन्न है। जहाँ संस्मरण में लेखक अपने आसपास के समाज, परिस्थितियों व अन्य घटनाओं के बारे में लिखता है वहाँ आत्मकथा में केन्द्र लेखक स्वयं होता है। आत्मकथा हमेशा व्यक्तिपरक होती है अर्थात् वह लेखक के दृष्टिकोण से लिखी जाती है। इनमें लेखक अनजाने में या जानबूझ कर अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्य छुपा सकता है या फिर कुछ मात्रा में असंत्य वर्णन भी कर सकता है। एक ओर आत्मकथा से व्यक्ति के जीवन और परिस्थितियों के बारे में पढ़कर पाठकों को जानकारी व मनोरंजन मिलता है, तो दूसरी ओर इतिहासकार आत्मकथाओं की जानकारी को स्वयं में मान्य नहीं ठहराते और सदैव अन्य स्रोतों से उनमें कही गई बातों की पुष्टि करने का प्रयास करते हैं।

प्र.8. 'जूठन' आत्मकथा की भाषा-शैली एवं उद्देश्यों पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर

'जूठन' आत्मकथा की भाषा-शैली

दलित स्वर को वाल्मीकि ने साहित्यिक मंचों पर मुखरता से उठाया। वैसी ही भाषा में, सच कहने का साहस और एक विशेष रचाव को विकसित कराने की कोशिश उनकी आत्मकथा 'जूठन' में है। इसलिए जब यह आत्मकथा आई थी तो उसने लेखकों और पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। वास्तव में दलित साहित्य हिन्दी में एक आन्दोलन के रूप में कुछ देर से प्रारम्भ हुआ। मुख्य रूप से सन् 1990 के बाद आरम्भ हुआ। उसमें जो प्रतिभाशाली लेखक थे, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि सबसे आगे थे। इन लेखकों की रचनाशीलता की गुणवत्ता के कारण वो मुख्यधारा के समानान्तर धारा के रूप में स्थापित हुआ और उसे स्वीकार भी किया गया। एक व्यक्ति के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुत ही सहज, निर्भीक और साहस के साथ अपनी सोच-विचार का सच कहने वाले व्यक्ति हैं। उनका मानना है कि दलित भाषा में दलित साहित्य लिखा जा सकता है क्योंकि दलित अपने जीवन में सदियों से जिस भाषा को सुनते और सहते चले आ रहे हैं, उसी भाषा में उसके जीवन की सच्चाई, उनके जीवन की समस्याएँ और उनके जीवन की संवेदनाएँ प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त की जा सकती हैं।

उद्देश्य

'जूठन' दलित जीवन की मर्मान्तक पीड़ा का दस्तावेज है। जीवन की सुख-सुविधा और तमाम नागरिक सुविधाओं से वंचित दलित जीवन की त्रासदी उनके व्यक्तिगत अस्मिता से लेकर घर-परिवार, बस्ती और पूरी सामाजिक व्यवस्था तक फैली हुई है। दलितों के जीवन यथार्थ को लेखक की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—'जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियाँ, बड़ी-बूढ़ी यहाँ तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बावाली के किनारे खुले में टट्टी-फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं दिन के उजाले में भी पर्दों में रहने वाली त्यागी महिलाएँ, घूँघट काढ़े, दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शौचालय में निवृत्ति पाती थीं। तमाम शर्म-लिहाज छोड़कर वे डब्बेवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थी। इसी जगह गाँव भर के लड़ाई-झगड़े गोलमेज क्रांफेंस की शक्ल में चर्चित होते थे। चारों तरफ गन्दगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाये। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धडंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यही था वह वातावरण, जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए, तो उनकी राय बदल जाएगी।' आत्मकथा की इन प्रारंभिक पंक्तियों से ही इसकी कथा और कथ्य की मार्मिकता और उद्देश्य का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्र.9. 'जूठन' आत्मकथा के शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

जूठन आत्मकथा के शीर्षक की सार्थकता

जूठन आत्मकथा का शीर्षक ही बहुत चौंकाने और सोचने वाला है। लोगों ने विचार किया कि आखिर 'जूठन' कैसा नाम है, पर इस नाम को रखने के पीछे लेखक का जो दर्द छिपा हुआ है उसे उन्होंने बताते हुए अपने बचपन के दिनों को याद किया है। बचपन के दिनों को बताते हुए वे कहते हैं कि कैसे उनकी माता और पिता दोनों हाड़तोड़ मेहनत करते थे पर उसके बाद भी दोनों समय निवाला मिलना दुष्कर कार्य था, उनकी माता कई तथाकथित ऊँचे घरो में झाड़ू पोछें का काम करती थीं और बदले में मिलता था

उन्हें रूखी सूखी रोटियाँ जो जानवरों के भी खाने लायक नहीं होती थी, उसी को खाकर गुजारा करना पड़ता था। ऐसे समय में जब किसी सवर्ण के घर बारात आती थी या उत्सव का कोई अवसर आता था तो उस क्षेत्र के सारे दलित खुश हो जाते थे क्योंकि भोजन के बाद फेंके जाने वाले पत्तलों को उठाकर वे घर ले जाते और उनके जूठन को एकत्र करके कई दिनों तक खाने के काम में लाते, इस घृणित कार्य के बाद भी पेट की भूख शांत होने पर उन्हें थोड़े समय के लिए खुशी ही मिलती थी। भय-भूख का दृश्य सभी दलित आत्मकथाओं में देखा जा सकता है। यह कल्पना की चीज नहीं, दलित समाज की हकीकत है—'पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक-आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बांछे खिल जाती थीं। जूठन चटकारे लेकर खाई जाती थी।' इस आत्मकथा का शीर्षक 'जूठन' हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक राजेन्द्र यादव द्वारा सुझाया गया था।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राहुल सांकृत्यायन के व्यक्तित्व एवं कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

राहुल सांकृत्यायन : जीवन परिचय

राहुल सांकृत्यायन का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पंदहा गाँव में 9 अप्रैल, 1893 को हुआ था। उनके बाल्यकाल का नाम केदारनाथ पाण्डेय था। इनके पिता गोवर्धन पाण्डेय एक धार्मिक विचारों वाले किसान थे। उनकी माता कुलवंती अपने माता-पिता की अकेली पुत्री थीं। वह अपने माता-पिता के साथ रहती थीं। बचपन में ही इनकी माता का देहांत हो जाने के कारण इनका पालन-पोषण इनके नाना श्री राम शरण पाठक और नानी ने किया था। सन् 1898 में इन्हें प्राथमिक शिक्षा के गाँव के ही एक मदरसे में भेजा गया। राहुल जी का विवाह बचपन में कर दिया गया। यह विवाह राहुल जी के जीवन की एक संक्रान्तिक घटना थी जिसकी प्रतिक्रिया में राहुल जी ने किशोरावस्था में ही घर छोड़ दिया। घर से भाग कर ये एक मठ में साधु हो गए। लेकिन अपनी यायावरी स्वभाव के कारण ये वहाँ भी टिक नहीं पाये। चौदह वर्ष की अवस्था में ये कलकत्ता आ गए। इनके मन में ज्ञान प्राप्त करने के लिए गहरी लालसा थी इसलिए सारे भारत का भ्रमण करते रहे।

राहुल जी का समग्र जीवन ही रचनाधर्मिता की यात्रा थी। जहाँ भी वे गए वहाँ की भाषा व बोलियों को सीखा और इस तरह वहाँ के लोगों में घुलमिल कर वहाँ की संस्कृति, समाज व साहित्य का गूढ़ अध्ययन किया। राहुल सांकृत्यायन उस दौर की उपज थे जब ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति सभी संक्रमणकालीन दौर में थे। वह समय समाज सुधारकों का था एवं कांग्रेस अभी शैशवावस्था में थी। इन सब से राहुल अप्रभावित न रह सकें एवं अपनी जिज्ञासु व घुमक्कड़ प्रवृत्ति के चलते घर-बार त्याग कर साधु वेशधारी सन्यासी से लेकर वेदान्ती, आर्यसमाजी व किसान नेता एवं बौद्ध भिक्षु से लेकर साम्यवादी चिन्तक तक का लम्बा सफर तय किया। सन् 1930 में श्रीलंका जाकर वे बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गये एवं तभी से वे 'रामोदर साधु' से 'राहुल' हो गये और 'सांकृत्य' गोत्र के कारण सांकृत्यायन कहलाये। उनकी अद्‌भुत तर्कशक्ति और अनुपम ज्ञान भण्डार को देखकर काशी के पंडितों ने उन्हें महापंडित की उपाधि दी एवं इस प्रकार वे केदारनाथ पाण्डेय से महापंडित राहुत सांकृत्यायन हो गये। सन् 1939 में रूस के लेनिनग्राद के एक स्कूल में उन्होंने संस्कृत अध्यापक की नौकरी कर ली और उसी दौरान ऐलेना नामक महिला से दूसरी शादी कर ली, जिससे उन्हें इगोर राहुलोविच नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। छत्तीस भाषाओं के ज्ञाता राहुल ने उपन्यास, निबन्ध, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण व जीवनी आदि विधाओं में साहित्य सृजन किया परन्तु अधिकांश साहित्य हिन्दी में ही रचा। राहुल तथ्यान्वेषी व जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे सो उन्होंने हर धर्म के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। अपनी दक्षिण भारत यात्रा के दौरान संस्कृत-ग्रन्थों, तिब्बत प्रवास के दौरान पालि-ग्रन्थों तो लाहौर यात्रा के दौरान अरबी भाषा सीखकर इस्लामी धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया। निश्चितत: राहुल सांकृत्यायन की मेधा को साहित्य, आध्यात्म, ज्योतिष, विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति, भाषा, संस्कृति, धर्म एवं दर्शन के टुकड़ों में बाँटकर नहीं देखा जा सकता वरन् समग्रत: ही देखना उचित है। राहुल सांकृत्यायन हिन्दी के एक प्रमुख साहित्यकार एवं प्रतिष्ठित बहुभाषाविद् थे और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में उन्होंने यात्रा वृतान्त/यात्रा साहित्य तथा विश्व-दर्शन के क्षेत्र में उल्लेखनीय साहित्यिक योगदान किए। वह हिन्दी यात्रा साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। बौद्ध धर्म पर उनका शोध हिन्दी साहित्य में युगान्तरकारी माना जाता है, जिसके लिए उन्होंने तिब्बत से लेकर श्रीलंका तक भ्रमण किया था। इसके अलावा उन्होंने मध्य-एशिया तथा कॉकेशस भ्रमण पर भी यात्रा वृत्तांत लिखे जो साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

21वीं सदी के इस दौर में जब संचार-क्रांति के साधनों ने समग्र विश्व को एक 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित कर दिया है एवं इण्टरनेट द्वारा ज्ञान का समूचा संसार क्षणभर में एक क्लिक पर हमारे सामने उपलब्ध हो जाता है, ऐसे में यह अनुमान लगाना कि कोई व्यक्ति दुर्लभ ग्रन्थों की खोज में हजारों मील दूर पहाड़ों व नदियों के बीच भटकने के बाद, उन ग्रन्थों को खच्चरों पर लादकर

अपने देश में लाए, रोमांचक लगता है, पर ऐसे ही थे भारतीय मनीषा के अग्रणी विचारक, साम्यवादी चिन्तक, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत, सार्वदेशिक दृष्टि एवं घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के महान पुरुष राहुल सांकृत्यायन। राहुल सांकृत्यायन के जीवन का मूलमंत्र ही घुमक्कड़ी अर्थात् गतिशीलता रही है। घुमक्कड़ी उनके लिए वृत्ति नहीं वरन् धर्म था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन एक यात्राकार, इतिहासविद्, तत्वान्वेषी, युगपरिवर्तनकार साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं।

घुमक्कड़ी स्वभाव वाले राहुल सांकृत्यायन सार्वदेशिक दृष्टि की ऐसी प्रतिभा थे जिनकी साहित्य, इतिहास, दर्शन संस्कृति सभी पर समान पकड़ थी। विलक्षण व्यक्तित्व के अद्भुत मनीषी, चिन्तक, दार्शनिक, साहित्यकार, लेखक, कर्मयोगी और सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत रूप में राहुल ने जिन्दगी के सभी पक्षों को जिया। यही कारण है कि उनकी रचनाधर्मिता शुद्ध कलावादी साहित्य नहीं है वरन् वह समाज, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, विज्ञान, धर्म, दर्शन इत्यादि से अनुप्राणित है जो रूढ़ धारणाओं पर कुठाराघात करती है तथा जीवन-सापेक्ष बनकर समाज की प्रगतिशील शक्तियों को संगठित कर संघर्ष एवं गतिशीलता की राह दिखाती है। ऐसे मनीषी को अपने जीवन के अंतिम दिनों में 'स्मृति लोप' जैसी अवस्था से जूझना पड़ा एवं उपचार हेतु उन्हें मॉस्को भी ले जाया गया। 1 अप्रैल, 1963 में वे पुन: मास्को से दिल्ली आ गए और 14 अप्रैल, 1963 को सत्तर वर्ष की आयु में दार्जिलिंग में सन्यास से साम्यवाद तक उनका सफर पूरा हो गया पर उनका जीवन दर्शन और घुमक्कड़ी स्वभाव आज भी हमारे बीच जीवित है।

प्र.2. यात्रा वृतान्त के स्वरूप को व्याख्यायित कीजिए।

उत्तर

यात्रा वृतान्त का स्वरूप

यह साहित्य की वह विद्या है जिसमें लेखक किसी स्थान की यात्रा का वर्णन करता है और यह वर्णन रोचक होता है। वर्णन के दौरान लेखक किसी स्थान के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, अर्थव्यवस्था आदि से पाठक को परिचित कराता जाता है। यात्रा वृतान्त में संस्मरण और रेखाचित्र का मिलाजुला रूप देखने को मिलता है। किसी भी यायावर (घूमने वाला व्यक्ति) के अनुभव में विविधता होती है यात्रा वृतान्त में यायावर के अनुभव की व्याख्या नहीं होती है बल्कि निश्चित दृष्टिकोण से दर्शनीय स्थानों को देखा जाता है। एक यात्री उन समस्त बिन्दुओं को उल्लास और ऊर्जा के भाव से देखने का प्रयास करता है, जहाँ पर वह यात्रा के दौरान गया होता है। यात्रा वृतान्त की दो विशेषताएँ होती हैं—एक तो सौंदर्य का बोध और दूसरा कौतूहल को जगाए रखना। देश काल के संदर्भ में किसी भी पाठक की जानकारी को बढ़ाना यात्रा वृतान्त का प्रमुख उद्देश्य होता हैं। हिन्दी में यात्रा वृतान्त एक आधुनिक गद्य विधा के रूप में स्वीकृत है। भारतेन्दु युग में स्वयं भारतेन्दु ने विभिन्न स्थलों की यात्रा की और अपने अनुभवों को साझा किया; जैसे—यात्रा वृतान्त के रूप में उनके कुछ संस्मरण है-सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा। भारतेन्दु युग में ही कुछ लेखकों के द्वारा विदेश यात्रा के वृतांत भी लिखे गए। इसी प्रकार द्विवेदी युग में भी विभिन्न यात्रा वृतांत लिखे गए श्रीधर पाठक की देहरादून, शिमला यात्रा। स्वामी सत्यदेव परिवाजक की मेरी कैलाश यात्रा अमेरिका भ्रमण आदि। सबसे महत्त्वपूर्ण यात्रा वृतांत लेखक राहुल सांकृत्यायन के माने जाते हैं उन्होंने विभिन्न देशों की ओर यात्रा में आने वाली कठिनाइयों को बताने के साथ-साथ उस स्थान विशेष की प्राकृतिक संपदा, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं को भी बारी-बारी से प्रस्तुत किया; जैसे—किन्नर देश में, दार्जिलिंग परिचय, यात्रा के पन्ने आदि। बाद में चलकर अज्ञेय ने अपनी यात्रा वृतान्त के द्वारा विदेशी अनुभवों को भी एक कहानीकार की रोचकता और यात्री के रोमांच के साथ प्रस्तुत किया है। 'एक बूंद सहसा उछली' में यूरोप और अमेरिका की यात्राओं को प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश ने अपनी यात्रा वृतान्त 'आखिरी चट्टान' में दक्षिण भारत की यात्राओं का वर्णन किया है। निर्मल वर्मा ने 'चीड़ों पर चाँदनी' नामक यात्रा वृतांत में अपने यूरोप यात्रा का वर्णन किया है। इस यात्रा वृतांत में वे वहाँ के इतिहास, दर्शन और संस्कृति से सीधा संवाद करते हैं। उनके यात्रा वृतान्तों में संवेदनशीलता के साथ-साथ बौद्धिक गहराई का भी अनुभव होता है।

साहित्य को किसी बँधे-बँधाए साँचे में तो नहीं बाँधा जा सकता फिर भी उसकी प्रत्येक विधा की अपनी कुछ खास विशेषताएँ होती हैं जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं और उन्हें एक विशेष पहचान देती हैं। यात्रा-वृत्तांत में स्थान और तथ्यों के साथ-साथ आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता और रोचकता का विशेष महत्त्व होता हैं।

स्थानीयता—यात्रा-वृतांत में लेखक का उद्देश्य स्थान-विशेष के सम्पूर्ण वैभव, प्रकृति, रस्मों-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, मनोरंजन के तरीके तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का चित्रण करना होता है। यह लेखक पर निर्भर करता है कि वह इनमें से किस तत्त्व को ज्यादा प्रमुखता देता है। किसी प्रदेश-विशेष की यात्रा में उसे जो चीज सबसे ज्यादा प्रभावित करती है, आमतौर से उस तत्व को वह प्रधानता देता है। इसलिए उसके चित्रण में कहीं विवरण तो कहीं भावों की प्रधानता होती है। कभी-कभी वह तुलनात्मक पद्धति का सहारा भी लेता है। प्रकृति-सौंदर्य के चित्रण में उसकी शैली भावात्मक हो उठती है। यदि वह

KOUSHIK PASS

स्थान-विशेष को जल्दी में देखता है तो उसकी शैली वर्णात्मक हो जाती है। अपने देश या प्रान्त की अन्य प्रान्त या विदेश से तुलना करते समय लेखक तुलनात्मक शैली का सहारा लेता है।

तथ्यात्मकता—यात्रा वृतांत में लेखक की कोशिश होती है कि यात्रा के दौरान उसने जो कुछ देखा है उससे संबंधित तथ्यों का विवेचन कर दे। लेकिन ऐसा करते समय वह भूगोल और इतिहास लेखन की शैली का सहारा ना लेकर कथा साहित्य की सहज सरल भाषा शैली को अपनाता है जिससे यात्रा वृतांत में रोचकता बनी रहे।

आत्मीयता—यात्रा-वृतांत में आत्मीयता का भाव होना आवश्यक है। यात्रा के दौरान लेखक जिन स्थानों, स्मारकों, दृश्यों आदि को इतिहास और भूगोल के रूप में नहीं देखता, बल्कि वह उनसे आत्मीय संबंध स्थापित करता है ताकि पाठक को पढ़ते समय अपनापन और सच्चाई की अनुभूति हो सके। इसमें लेखक यथातथ्य वर्णन से बचने की लगातार कोशिश करता है ताकि वृतांत उबाऊ, नीरस और इतिहास न बनने पाए। दृश्यों अथवा स्थितियों के साथ आत्मीय रिश्ता ही पाठक को वृतांत से जोड़ने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आत्मीयता ही उसे गाइड बनाने से रोकती है।

वैयक्तिकता—यात्रा-वृतांत में वैयक्तिकता की आवश्यकता अन्य विधाओं की तुलना में कहीं अधिक अनुभव की जाती है। खान-पान, वेश-भूषा, पारिवारिक सुख-सुविधा का अहसास यात्रा के दौरान कुछ ज्यादा ही होता है क्योंकि व्यक्ति उस समय अपने आत्मीय जनों से दूर होता है। यात्रा के दौरान आदमी अपरिचित लोगों के बीच रहता है जहाँ उसकी शक्ति और प्रतिभा से लोग परिचत नहीं होते, ऐसे में लेखक को अपने व्यक्तित्व से दूसरों को परिचित एवं प्रभावित करना होता है। इसलिए यात्रा वृतांत में लेखक के व्यक्तित्व की प्रभावशाली छाप उपस्थित रहती है।

रोचकता—यात्रा-वृतांत का सबसे अनिवार्य गुण रोचकता है। यह पाठक को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यात्रा वृतांत में रोचकता लाने के लिए लेखक किसी स्थान से जुड़ी लोक-कथा, दंत-कथा आदि का उल्लेख करता है। कभी-कभी वह अचानक होने वाली घटनाओं का वर्णन करता है तो कभी रोचक शीर्षक के समावेश से वृतांत की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है। इसमें मिथकों, प्रतीकों, अलंकारों और मुहावरों का भी प्रयोग किया जाता है। चित्रात्मक वर्णन भी इस विधा की एक विशेषता है। संवेदनशीलता न केवल स्वाभाविक बनाती है बल्कि इसे एक साहित्यिक कृति का रूप भी देती है।

इस प्रकार यात्रा-वृतांतों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौंदर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिंबविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा के समय यायावर का साहस, उसकी संघर्षशीलता, स्वच्छंदता और अचानक आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने की क्षमता उसे एक वीर नायक की-सी गरिमा प्रदान करती है और पाठक उसे प्यार करने लगता है।

राहुल सांकृत्यायन और यात्रा वृतांत—राहुल जी घुमक्कड़ी के बारे में कहते हैं—'मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ से बढ़कर व्यक्ति और समाज का कोई हितकारी नहीं हो सकता। दुनिया दुःख में हो चाहे सुख में, सभी समय यदि सहारा पाती है तो घुमक्कड़ों की ही ओर से। प्राकृतिक आदिम मनुष्य परम घुमक्कड़ था। आधुनिक काल में घुमक्कड़ों के काम की बात कहने की आवश्यकता है क्योंकि लोगों ने घुमक्कड़ों की कृतियों को चुरा के उन्हें गला फाड़-फाड़कर अपने नाम से प्रकाशित किया। जिससे दुनिया जानने लगी कि वस्तुतः तेली के कोल्हू के बैल ही दुनिया में सब कुछ करते है। आधुनिक विज्ञान में चार्ल्स डार्विन का स्थान बहुत ऊँचा है। उसने प्राणियों की उत्पत्ति और मानव-वंश के विकास पर ही अद्वितीय खोज नहीं की, बल्कि कहना चाहिए कि सभी विज्ञानों को डार्विन के प्रकाश में दिशा बदलनी पड़ी। लेकिन, क्या डार्विन अपने महान आविष्कारों को कर सकता था, यदि उसने घुमक्कड़ी का व्रत न लिया होता। आदमी की घुमक्कड़ी ने बहुत बार खून की नदियाँ बहायी हैं, इसमें संदेह नहीं और घुमक्कड़ों से हम हरगिज नहीं चाहेंगे कि वे खून के रास्ते को पकड़ें। किन्तु घुमक्कड़ों के काफिले न आते जाते, तो सुस्त मानव जातियाँ सो जाती और पशु से ऊपर नहीं उठ पाती। अमेरिका अधिकतर निर्जन सा पड़ा था। एशिया के कूपमंडूक घुमक्कड़ धर्म की महिमा भूल गए इसलिए उन्होंने अमेरिका पर अपनी झंडी नहीं गाड़ी। दो शताब्दियों पहले तक ऑस्ट्रेलिया खाली पड़ा था। चीन, भारत को सभ्यता का बड़ा गर्व है, लेकिन इनको इतनी अक्ल नहीं आयी कि जाकर वहाँ अपना झंडा गाड़ आते।'

पुस्तक के अंश—राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृतांत 'मेरी तिब्बत यात्रा' की भूमिका जो कि 'प्राक्कथन' कहलाती हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृंतात 'मेरी तिब्बत यात्रा' का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर

प्राक्कथन

मैंने अपनी इस यात्रा को तिब्बत से लौटते ही प्रेस में दे दिया था, किन्तु कुछ कारणों से 36 पृष्ठ तक छपकर काम रूका रहा और अब तीसरी बार तिब्बत से लौटने के बाद यह पुस्तिका पाठकों के हाथ में जा रही है। 128 पृष्ठ के बाद दो तीन पृष्ठ लुप्त हो गये हैं, इसलिए वहाँ सिलसिला कुछ टूटा सा मालूम होगा। प्रूफ देखने में पंडित दयानारायण त्रिपाठी (एम०ए० साहित्य) से बहुत मदद मिली, इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ। इस यात्रा के अन्तिम दो अध्याय 'सरस्वती' में निकले थे। चित्र 'सरस्वती' तथा 'प्रवासी' (बांग्ला) में प्रकाशित हुये थे। ब्लाकों के देने के लिए हम दोनों पत्रों के आभारी हैं।

पटना 6-3-1937
राहुल सांकृत्यायन

ल्हासा से उत्तर की ओर

प्रिय आनन्दजी,

ल्हासा
30-7-1934

मालूम हुआ कि इधर दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक के कितनी विहार हैं, जिनमें रे-डिङ् में तो निश्चित ही थोड़ी सी तालपत्र की पुस्तकों के होने की बात बतलाई गई है और सम्भावना औरों में भी है। वस्तुत: यही कारण है इधर आने का। जब पुस्तक के लिए आना था, तो उसके लिए विशेष तैयारी करनी जरूरी थी। यद्यपि सभी पुराने मठों के लिए पुस्तकें दिखाने आदि के लिए भोट-सरकार से चिट्ठी मिलने वाली है, किन्तु अभी कुछ देर थी, इसलिए यह दो सप्ताह की यात्रा उसके बिना ही करनी पड़ रही है। हाँ, भोट के वर्तमान राजा रेडि-रिम्पो-छे ने एक पत्र अपने रे-डिङ् मठ के लिए दे दिया है और शिकम की महारानी के भाई स्क-सा कुशो ने तग्-लुङ् के लिए चिट्ठी दी है। इसी तरह दो-तीन और चिट्ठियाँ मिल गई हैं। चिट्ठियों के बाद दूसरा प्रश्न था साथी सवारी का। कु-सिन्-शर के स्वामी साहु पूर्णमान ने अपने छ: खच्चरों तथा खच्चर वाले को दे दिया। सवारी का प्रश्न तो इस प्रकार हल हो गया। रहा साथियों का गेशे के सिवा एक फोटोग्राफर की भी आवश्यकता थी। हमारा रोलैफ्लैक्स कैमरा पुस्तकें छापने से इन्कार करता है। सौभाग्य से ल्हासा के फोटोग्राफर श्री लक्ष्मीरत्न ने चलना स्वीकार कर लिया। किन्तु अभी एक और साथी को जैसे बने जरूर ही ले जाना था क्योंकि हम ऐसे प्रदेश में जा रहे हैं, जहाँ संख्या और पिस्तौल-बंदूक ही हमारी रक्षा कर सकती है। हमारे खच्चरों के सरदार सो-नम ग्यल् छन् (पुण्य-ध्वज)खाम् (पूर्वी-तिब्बत) के हैं, जहाँ की कहावत हैं—तुम अपने ही भरोसे पर जी सकते हो। उन पर पूरा भरोसा है। अपने राम तो हथियार बाँध ही नहीं सकते। हाँ, तो चौथे साथी जो मिले, उनका जन्म अम्-दो का हैं, जहाँ पर गोली-गट्ठा लेकर नब्बे-सौ आदमी मिल कर ही मंजिल तय कर सकते हैं, किन्तु वे भी तलवार के धनी नहीं हैं। गेन् दून-छों-फेल् (संघ धर्मवर्धन) यही उनका नाम है अच्छे चित्रकार हैं तथा इतिहास और न्यायशास्त्र में अच्छा प्रवेश रखते हैं। कह सुनकर उनके कंधे से भी एक सात गोली की पिस्तौल एवं कारतूसों की माला लटकाई गई। श्री लक्ष्मीरत्न को लोग नाती-ला के नाम से जानते हैं। उनकी नानी इन्हें नाती कहा करती थीं, ल्हासा पहुँचने पर फरिश्तों ने इस नाम को यहाँ पहुँचा दिया था फिर ला (जी) जोड़कर भोट वासियों ने उन्हें नाती ला बना दिया। बुढ़ापे तक अब उन्हें नाती-ला ही रहना है। हाँ, तो नाती-ला को बहुत एतराज था हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य स्मृति जानकीर्ति के नाम से फर्जी बनाई मिट्टी का छोटा मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती। कहने पर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा कराने से इंकार कर दिया। खैर किसी तरह वे भी पिस्तौल लटकाने को राजी हुए।

सो-नम् ग्यल्-छन् (उच्चारण सोनम ग्यंज)ने कहा कि छठे मास की 18वीं तिथि (30 जुलाई) ही को चलना अच्छा है, बीस को थम्-व (शून्य) आ जाएगा, और आगे भी साइत अच्छी नहीं। इस प्रकार तैयारी करते-करते आज साढ़े आठ बजे ल्हासा से निकले। साथ में फेम्बो में चराई के लिए कुसिन्-शर के बाकी छ: खच्चर तथा उनका दूसरा आदमी था।

ल्हासा के बाद पहला घर तब्-ची का आया। यहीं भोट सरकार की टकसाल तथा सैनिक कार्यालय है। पहले सिपाही भी थे, किन्तु इधर अनावश्यक होने से उन्हें छुट्टी मिल गई है। तब्-ची से आगे पहाड़ की जड़ में हरे-भरे खेतों के बीच एक घर मिला। फिर दाहिनी ओर की कोने वाली उपत्यका में हजारों हरे-भरे खेतों की सीढ़ियों को छोड़ते, हम बाई ओर नदी पार ही हल्की चढ़ाई चढ़ने लगे। एक फलहीन किन्तु सुन्दर बाग आया और तब्-ची से तीन मील आने पर बिजली बत्ती की मा (लोक-शुइ-आ-मा) हमें

मिली। एक मामूली से घर में पानी द्वारा पहिया घूम रहा हैं और बिजली पैदा हो रही है। पानी तो इनका बाकी है कि उससे सारे ल्हासा को रोशन करके भी बिजली बची रह सकती हैं। उससे जरा ही ऊपर पानी पार कर कुछ नए, किन्तु टूटे-फूटे मकान मिले। मालूम हुआ, बिजली देवी के लिए पहले अच्छे-अच्छे मकान बने थे, किन्तु उन्हें वे पसन्द न हुए और वे नष्ट हो गए, अब उनके लिए टूटी मँड़ड्या मिली है। असल में तो चाहिए था ज्योतिषी को फाँसी दे देना क्योंकि उसने ऐसी बुरी साइत बताई कुछ दूर और ऊपर चढ़ने पर एक वृक्षरहित आखिरी गाँव मिला, और गो-जोत (गो-ला), उससे चार-पाँच मील इस पार एक भी गाँव नहीं हैं। अब चढ़ाई भी कुछ कठिन थी और ऊँचाई के कारण हवा के पतलेपन से जानवरों का दम भी अधिक फूल रहा था। उपत्यकाएँ और उनकी बेटी-पोतियाँ सभी घन-नील वसन' थीं सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियाँ (याक) काला दाग-सा बन रही थीं। यद्यपि दूर-दूर पर सफेद भेड़ों के झुंड चर रहे थे, किन्तु न हिलने के कारण वे जहाँ तहाँ पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे। पिछले दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिए रास्ता बनाया गया था बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाई के कहने के मुताबिक तो उस पर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासा में दलाई लामा के लिए तीन मोटरों का आना मालूम है। उसी अपशकुन से कुछ लोग कहते हैं दलाई लामा को शरीर त्याग करना पड़ा और उनके कृपापात्र कुम्-भे-ला को, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्व से हाथ धो एक कोने में निर्वासित होना पड़ा। रास्ता कुछ तो अच्छा जरूर है। गोला (यही इस जोत का नाम है) के ऊपर चढ़ कर पीछे की ओर मुड़कर देखने पर ल्हासा नगरी सुदूर दिखाई पड़ी। दूरबीन से देखने पर वह कुछ और स्पष्ट हुई, किन्तु उससे भी विचित्र दूर क्षितिज के अन्त तक, सहस्रों पर्वत शिखर थे, जो तिब्बत देश को सहस्त्रशीर्षा पुरुष बना रहे थे। दूसरी ओर देखने पर नीचे उपत्यका में अनगिनत खेल बतला रहे थे कि फन्-यल वस्तुतः हित का देश है।

अब हरी उतराई शुरू हुई। जोन पर हम डेढ़ बजे पहुँचे थे, तब से साढ़े चार बजे तक उतराई ही उतराई रही। बिना वृक्षों के कुछ घर छोड़कर हम और उतरे और पा-या पहुँच गए। हमारे साथी संघ-धर्मवर्धन तभी से दिमाग लड़ा रहे हैं, कि पा-या का अर्थ क्या है। किन्तु हमारा कहना हैं, पा-या का अर्थ पाया ही है इतनी मेहनत से पाया और बिना चोरों की गोली का शिकार हुए पाया।

नालन्दा (तिब्बत)

21-7-34

पा-या से साढ़े आठ बजे रवाना हुए। अब हमारे ही छः खच्चर साथ थे। एक लाल पहाड़ी के पार करते ही कितने स्तूपों से युक्त लड्-थड् (बलों का मैदान) विहार दिखाई पड़ा पा-या से यह स्थान दो मील से अधिक न होगा। हममें से किसी को यह बात मालूम न थी, अन्यथा कल यहीं आकर ठहरे होते। तिब्बत के प्राचीन मठों के अनुसार यह मठ पहाड़ के ऊपर न होकर मैदान में है। हमारे दीपंकर श्रीज्ञान (982-1054 ई०) के प्रशिष्य पो-तो-पा-रिन्छन-सल् (1027-1104 ई०) के शिष्य लड्-था-पा-दोर्जे-से-गे (बज्रसिंह) ने इस विहार को बनवाया था। लड्-थड्पा बढ़ा ही गंभीर था। उसके बारे में कहा जाता है कि उसे जन्मभर में सिर्फ तीन बार हँसी आई थी। संसार के दुःख को वह हर वक्त अनुभव करता था, उसके लिए हँसना हराम था। तीन बार में दो बार की ही बार हमें मालूम हो सकी (1) एक छोटा बच्चा एक गेहूँ के दाने को उठाकर खाना चाहता था प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं उठा सकता था। उसी समय उसकी नाक का पोटा बह कर दाने से लगा। दूसरे ही क्षण साँस के साथ दाना बच्चे के मुँह पर आ गया वह बड़ा प्रसन्न हो गया। यह देखते ही लड्-थड्पा को भी हँसी आई। (2) किसी मंदिर की पूजा में एक बड़ा फीरोजा चढ़ा हुआ था। एक चूहा उसे चुरा कर अपने बिल में ले जाना चाहता था, लेकिन वह उठाने में सफल न होता था चूहा जाकर अपने दूसरे साथी को बुला लाया। फिर चूहे ने अपने पैरों से फीरोजे को छाती में दबाया साथी ने उसकी पूँछ को मुँह से खींचकर मदद दी और इस प्रकार फीरोजा लेकर वे अपने बिल में चले गए। चूहे की इस सफलता को देखकर लड्-थड्पा को भी हँसी आ गई।

पुराने विहारों की जैसी दुरवस्था आमतौर से तिब्बत में दिखाई देती है वैसी ही इसकी भी है। जब हमारे खच्चर आँगन में गए, तो हमने समझा, शायद वह ठहराव होगा। किन्तु बाद में मालूम हुआ कि यही लड्-थड्पा वाया विहार है। बारहदरी में घुसते ही दीवार पर लिखा कर-छग (बीजक) दिखाई पड़ा। फिर हम मंदिर के भीतर गए। अस्तव्यस्त बहुत सी मूतियाँ रखी हुई हैं। सामने पिछली दीवार तथा बाईं ओर की दीवारों में क्रमशः मैत्रेय और बुद्ध की पीतल की मूतियाँ हैं। दोनों मूर्तियों के शरीर-मंडल सुन्दर और पुराने हैं। मैत्रेय की बाईं ओर एक विचित्र सी भारतीय लामा की मूर्ति देखी। पूछने पर मालूम हुआ यह भारतीय सिद्ध ए-दम्-पास स्-ग्येस् (सप्तिता बुद्ध मृत्यु 1118 ई०) हैं। बहुत जीर्ण-शीर्ण मूर्ति हैं। सामने नीचे कुछ और भी छोटी-बड़ी पीतल की मूर्तियाँ हैं, जिनमें अधिकांश भारत से लाई गई हैं। यह उनकी नाक, भौंह, कम चौड़ा मुँह, सुन्दर छाती और कमर बतला रही है। ढूँढ़ने पर भी उन पर अक्षर नहीं मिले। एक और बहुत सी पुरानी, भोट-अक्षर में लिखी हुई पुस्तकें वे परवाह से रखी हुई हैं। पीछे के बने देवालयों तथा पुराने स्तूपों को देखकर हम लौट और धर्मवर्द्धन ने बीजक से खास-खास बातों का नोट लेना शुरू किया नाती-ला ने फोटो लिए। अभी मंदिर के अंधेरे में पा की मूर्ति का भी फोटो लेना था। किट्सन लैंप के सहारे उसका भी फोटो लिया पड़ी सिद्ध

फवम् गया। बाहर के स्तूपों और सारे विहार के भी फोटो लिए इसी वक्त किसी आदमी ने जाकर गाँव के जमींदार से वस्तुत: तो यहाँ का जमींदार भोट-सरकार का है और खेती का काम उसकी ओर से कोई नौकर करवाता है कह दिया जवाब तलब किया गया। हमारे साथी ने जाकर मोटराज रे-डिब् रिम्पो-छे की लाल लाख की मुहर से अंकित चिट्ठी दिखला दी। मामला वहीं समाप्त हो गया।

मध्याह्न के भोजन के बाद हमारा काफिला नालन्दा के लिए रवाना हुआ। भारत के नालन्दा के नाम पर जहाँ लंका में एक नालन्दा हैं, वहाँ तिब्बत भी उससे वंचित नहीं है। प्राय: दो घंटा चलने पर हम नालन्दा पहुँचे। यद्यपि स्थान निचले मैदान से कुछ ऊपर चढ़कर है, किन्तु यहाँ भी मैदान सा ही हैं। उसके निचले भाग पर बहुत से परित्यक्त खेत हैं। कुछ खंडहर भी कहीं-कहीं खड़े हैं। नालन्दा बहुत ही सुन्दर जगह पर है और आजकल पिछले पहाड़ों के हरित-वसन हो जाने से तो वह और भी अनुपम हो गई है। यह विहार ताब्दी के आ। निर्माता रोड़ तांन् शक्य-ग्यल् छन् अपने समय के अच्छे दार्शनिक थे और चौड़-ख-पा (1357-1419 ई०) के विद्वान शिष्य म्खस-ग्रह (1385-1432 ई०) के प्रतिद्वंदी थे किसी समय नालन्दा तिब्बत की नालन्दा थी। चोड्-ख-पा के अनुयायियों के डे-पुड़ आदि विहारों की भाँति यह एक अच्छा विद्या केंद्र था प्रदेशों के क्रम से कई खम् जन् और छात्रावास भी हैं ढाई हजार के रहने लायक घरों में पाँच सौ भिक्षु रहते हैं, जिनमे भी पढ़ने वाले पचास से अधिक नही पहले ब्यु-बद्-ल-ब्रड् गये यहाँ एक लम्बदा-चौड़ा बीजक लगा हुआ है, जिसके सामने से रक्षा के साथ भी निकलना आसान काम नहीं हैं। पूछने पर बताया गया, मछांग्-पुल्-रिम्पो-छे से तालपत्र की पुस्तकों के बारे में पूछे जाने पर देखा, लामा प्राय: दो दर्जन भिक्षुओं को विनय पढ़ा रहे हैं। पूछने पर सहृदयापूर्वक बतलाया, यहाँ तालपत्र की पुस्तकें नहीं हैं। हाँ, स-छेक्कुन्-द्ग-स्त्रिड्-पो (1098-1158 ई० के समय का बना एक चित्रपट है)। चित्रपट के निकालने में अभी देर थी, इसलिए हम पुरातन मंदिर चू-ला खड् (बिहार) देखने गये पुजारी जी देर में आए। भीतर बुद्ध की विशाल मूर्ति है, जिसके सामने रोड् स्तोन् की प्रतिमा है। बाहर और कुछ छात्रावासों को देखते सारे विहार के फोटो लिए बगल की पहाड़ी पर चढ़ चले। बहुत करने पर भी सारा विहार एक फिल्म में न आ सका। लौटने पर चार बज गए थे। अभी पुराने चित्रपट का भी फोटो लेना था, इसलिए आज नालन्दा में ही रात्रिवास की ठहरी फोटो ले लेने पर रहने के लिए अच्छे स्थान का प्रबन्ध ही हो गया। उक्त लामा का जो कि स्वयं अवतार हैं बड़ा प्रेमपूर्ण बर्ताव था। शाम को कुछ मिनटों के लिए शास्त्रार्थ वाले बगीचे (छोस्-रा) में भी हो आए। बीस-पचीस आदमी खूब ताली पीटते, शोरगुल करते शास्त्रार्थ हो रहा था। यहाँ तालपत्र की पुस्तकें तो नहीं देखने में आई किन्तु नालन्दा का दर्शन और रात्रिवास अवश्य ही संतोष का विषय है।

ग्य-ल्ह-खड्,
1-8-1934

नालन्दा से सवेरे बिदाई ली। बादल थे, किन्तु बूंदाबांदी नहीं थी एक छोटी-सी जोत पार कर फिर खेतों के पास आ गए। नालन्दा में बतलाया गया था कि पा-छब् घंटे का ही रास्ता है, किन्तु हमें चलते-चलते चार घंटे लग गए। मार्ग अठारह मील से कम का न होगा। हमारा रास्ता अधिकांश पश्चिम की ओर था, जिससे बादल फाड़ कर समय-समय पर आती सूर्य की तीक्ष्ण किरणें कष्ट नहीं देती थी। बारह बजे हम पा-छब्-लो-च-व-त्रि-म-ग्रगस्की (ज० 1055 ई०) की समाधि पर पहुँचे। यह लो-च-व तिब्बत के तीन सबसे बड़े विद्वान अनुवादकों में है। आशा थी कि शायद यहाँ कोई तालपत्र ही पुस्तक हो, किन्तु यहाँ तो एक मामूली स्तूप है, जिसके भीतर कहा जाता है, महान अनुवादक का शरीर है। पास में मठ है, जिसमें बाईस-चौबीस भिक्षुणियाँ वास करती हैं।

पा-छब् में बहुत ठहरना नहीं पड़ा। कुछ ही मिनटों बाद हम फिर चल पड़े और डेढ़-दो घंटे बाद पर्वत के कोने में छिपा ग्य-लह-खद् (भारतीय देवालय) आ गया। सम्-ये की तरह स्तूपों को, जो भारत में आठवीं शताब्दी के आसपास ही बनते थे। देख कर ही मालूम होने लगा कि यह तो आठवीं-नवीं शताब्दी के बाद का विहार नहीं हो सकता। मैत्रेय देवालय के सामने द्रो-रिङ् (महास्तम्भ) और उसके लेख को देखकर और भी विश्वास हो चला कि यह विहार या कम-से-कम उसका कुछ भाग श्रेंड्-चन-गम्बो के समय का बना है। आज पास के गाँव में घुड़दौड़ थी। मठ के सभी भिक्षु तमाशा देखने गए थे। सामान बाहर ही रख दिया। तब तक हमने दौ-रिह के लेख की छाप लेनी चाही राय साहब मनोरंजन घोष ने पटना में छापे का सामान बाँध दिया था, किन्तु अभी तक छाप लेने का मौका नहीं आया था। पहले प्रयत्न में जैसी छाप आई उस पर ही संतोष करना चाहिए। यद्यपि लेख में लिखने वाले का नाम नहीं हैं, किन्तु हासा में ऐसे दौ-रि पुराने राजाओं के ही हैं इससे अनुमान है, यह स्तम्भ भी तिब्बत के किसी राजा के ही है। मैत्रेय देवालय रा-सत्र-नम्-दौ-द्वद्-युग ने बनाया था, जो आचार्य शंतरक्षित के शिष्य सम्राट खि-खेद-लदेब (802-845 ई०) का समकालीन था। पाषाण-स्तम्भ पर चाहे किसी का लेख हो, उसमें लिखने वाले दो बौद्धजनों को दस अच्छी बातों का उपदेश दिया हैं, जिनमें मुख्य है बुद्ध में एकांत निष्ठा रखना, धर्म का मन में ख्याल रखना, मूलदृष्टि (अनात्मवाद आदि)

को चित में रखना आदि हैं। थोड़ी देर बाद मैत्रेय देवालय का पुजारी आ गया। आज उसी के यहाँ रहने का निश्चय हुआ रहने के लिए विशाल सभामंडप मिला। मंदिर में मैत्रेय की विशाल मूर्ति है। कहते हैं, तुर्कों के युद्ध के समय मंदिर में आग लगा दी गई थी समझ में नहीं आता, तुर्क कब इधर आये। मंदिर में हस्तलिखित तीन कन्-जुर और तीन तन्-जुर है जो एक के ऊपर एक छल्ली बाँधकर रखे हुए हैं। मंदिर के एक कोने में द्विभुज, लोकेश्वर बुद्ध और एकादशमुख लोकेश्वर की पाषाणमूर्तियाँ हैं। पाषाण की मूर्तियाँ भोट अति दुर्लभ है ये मूर्तियाँ तन्-जुर हैं, जो भारतीय मालूम होती हैं। मैत्रेय के दर्शन के बाद हम प्रधान मठ को देखने गए। पुस्तकों, मूर्तियों और कमखाबङ की छतों से मालूम होता हैं कि किसी समय वह विहार बहुत रौनक पर था। विद्यार्थियों के रहने के लिए बहुत से मकान है। स्तोद, स्मद्-दो-ड-सङ् (महाविद्यालय) तथा शास्त्रार्थ की बगीची के होते हुए विहार अब श्रीहीन है। भिक्षु 180 के करीब बतलाए जाते हैं। एक अवतारी लामा और दो मखन्-पो (आचार्य) है। हम मिल आए, किन्तु निराश होना पड़ा। तीन पुराने चित्रपट देखे जिन्हें रिन् छोन-बसम-ग्रुब ने बनवाया था। भारत से आई कुछ मूर्तियाँ यहाँ के विहार में है। सम्भव है, कुछ और भी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हो, किन्तु उसके लिए अधिक दिन और परिचय की आवश्यता है। कल कोई विशेष बात न थी, इसलिए लिखने की इच्छा न हुई। मेघ के रिमझिमाते ही हम लोग ग्य-लह-खड़ से चल दिए। हाँ, वहाँ कूड़े में से कुछ हस्तलिखित पुस्तकों के पन्ने लिये उनमें एक पोथी शसस्त्रिका की बारह पोधियों में से थी। दो छोटी-छोटी जोतें पार करनी पड़ीं, फिर कुछ दूर तक जौ-गेहूँ के हरे खेतों में से चलना पड़ा। मामूली बलुआ चढ़ाई थोड़ी-सी (प्राय: सवा मील), बाद शन्-बुम्-पा मठ में पहुँचे।

दीपंकर के शिष्य डोम्-तोन के प्रशिष्य श-स्-बा का यह निवास स्थान था। एक घेरे में बहुत से स्तूप हैं, जिनमें से एक श-स्-बा का शरीर भी है। इसी की बगल में एक छोटा-सा स्तूप हैं, जिसके महत्त्व के बारे में कहा जाता है कि संसार में चाहे हिम-प्रलय हो जाये, किन्तु इस स्तूप पर बर्फ नहीं पड़ेगी। एक और सम्मेलन घर है, किन्तु वहाँ पर कोई वस्तु नहीं मिली। आजकल यह विहार भिक्षुणियों का है, जिनकी संख्या पूछने पर एक वृद्धा भिक्षुणी ने कहा तीन-बीस, सोलह सह अर्थात् 76-77, हमने आशा की थी, शायद यहाँ हमारे काम की कोई चीज हो। ढाई बजे हम लोग फिर रवाना हुए। चढ़ाई थी और एक छोटी जोत यहीं दूसरी ओर के पहाड़ पर हमने नाजीला को एक दृद्-मो-नग्-मो (काली भूतनी) दिखलाई। हमने कहा, देखो (1) इसके वस्त्र बिल्कुल काले हैं जैसे इस मुल्क के स्त्री-पुरूषों के नहीं हुआ करते, (2) इसका आकार अधिक लम्बा-चौड़ा हैं (3) इसके पास भेड़े या चमरियाँ नहीं है और (4) न आसपास रही घास है। लेकिन नाती-ला भी अब हमारी भाषा को समझने लगे हैं। पाँच बजे के करीब हम रे-डिङ् अथवा कन्-सू और मंगोलिया के रास्ते पर पहुँच गए। एक गाँव में रहने का स्थान न मिलने पर अगले गाँव में एक गरीब के घर में जगह मिली। गाँव का नाम फन्-दा है। 'यथा नाम तथा गुण' तो नहीं मालूम होता।

पो-तो दीपंकर के प्रशिष्य पौ-तो-पा का निवास यहाँ से तीन-चार मील से अधिक नहीं है, किन्तु रास्ता अलग होने से जाने की सलाह नहीं हुई आज पौने नौ बजे थोड़ी दूर पर पहाड़ के किनारे सात स्तूप कुछ स्तूपों के साथ दिखाई पड़े। यह भी दीपंकर की परम्परा के एक विज्ञान का नाम है स्नेङ्-सर स्तूप इधर के पहाड़ों पर कुछ झाड़ियाँ दिखाई पड़ती है, जो यहाँ के लिए नई चीज है। झाड़ियाँ अधिकतर जंगली गुलाब की हैं। तीन-चार मील चलने के बाद मानव बस्ती खत्म हो गई है। हाँ, चमरियाँ' तो जोत के पास तक मिलीं। रास्ते में एक जगह अपने बाएँ पहाड़ पर एक कस्तूरी मृग को भागते देखा ठीक मध्यान्ह में हम जोत के ऊपर पहुँचे। इस जोत पर डाकुओं का भय बहुत अधिक रहता है, किन्तु हमारे साथियों के पास दो पिस्तौले और एक बंदूक भी हैं। उतराई में हम पैदल चलना अधिक पसन्द करते हैं, इससे खच्चर की पीठ कटने का डर भी कम रहता है। दो बजे तक हम उतरते ही गए। फिर बाईं ओर की पहाड़ी रीढ़ को पार कर लेने पर स्तुग्-लुङ् की नदी आ गई मठ अभी डेढ़ मील दूरी पर था। रास्ता उतराई का था। सब लोग पैदल चलने लगे। संघ धर्मवर्द्धन के खच्चर की लगाम उसके पैर में आ गई। हमारे खच्चर वाल-सो-नम्-ग्यंजे को गुस्सा हो आया धर्मबर्द्धन पर, किन्तु उसे निकाला उसने खच्चर पर पहले से भी नम्-ग्यंजे को शिकायत थी कि धर्मवर्द्धन क्यों नहीं काम करते, किन्तु बचपन से ही अभ्यास न होने के कारण वे मेहनत करने में असमर्थ है। मठ के पास पहुँचने पर हम लोग उसे धार के इस पार छोड़ लामा के पास गए शिक्म की महारानी के भाई र-क-स कुशो का पत्र होने पर भी एक बहुत दरिद्र जगह हमें बतलाई गई। हमे हम अपना अपमान समझ रहे थे, इसी समय ख्याल हुआ खच्चरों के आने में देर क्यों हो रही है? थोड़ी देर में सो-नम्-ग्यंजे आया, बोला-मैं साथ नहीं चलूँगा, मैं ल्हासा लौटूँगा। हमने भी समझाया किन्तु वह नहीं माना। एक खच्चर लेकर चल दिया। पीछे मालूम हुआ, वह ल्हासा की और न जाकर अपने जन्म स्थान खम् की ओर जा रहा। इस प्रकार डाकुओं से भरे इस प्रदेश में पाँच खच्चरों हमारे मत्थे मार वह चलता बना। आज खच्चरों को बाँधने और खिलाने का काम नाती-ला और धर्मबर्द्धन पर पड़ा। यात्रा में भी कुछ कमी करनी पड़ेगी। यहाँ से रे-उङ् के लिए दो आदमी मिलने वाले हैं। देखो, कल क्या होता हैं।

उक्त घटना ने कुछ चिंतित बना दिया था। ऐसे ही समय विहार-दर्शन को गए। प्रधान विहार 1180 ई० में स्तग्-लुङ्-थङ्-पा-ग्लिङ्-रस्-पा ने बनवाया था। एक आँगन के गिर्द सुन्दर विशालकाय बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। अनेक कन्जूर-तन्जूर

की सुन्दर हस्तलिखित पुस्तकें ईंटों की छल्ली की तरह रखी है। जब पढ़ना नहीं, तो दूसरी तरह रखने की आवश्यकता क्या? आखिर कुछ समय बाद जीर्ण मंदिर के गिरने पर ये पुस्तकें भी नष्ट हो जाएँगी, किन्तु क्या दाम से भी यह लोग एक-दो प्रतियाँ दे सकेंगे?

ल्ह-खड्-गुदोड्
4-8-1934

आज जब सोये पढ़े थे और घर में भी अंधरा था, तभी सो-नम्-ग्यंजे आ पहुँचा। पूछने पर बतलाया कि उसके सामान को रास्ते में से कोई उठा ले गया, जब कि उसे फेंककर पीछे की ओर भागते खच्चर को पकड़ने लौटा। यह भी कहा कि रात को वह पहाड़ में सोया था। उसकी इन बातों पर विश्वास न होता था, बल्कि और संदेह बढ़ता जाता था कि कहीं मार पर सामान लूटने के लिए तो नहीं आया है। हमारे पाँच पाँच सौ रुपये के पैसे भी हैं और कुछ दूसरे सामान भी ऐसा संदेह करने का कारण था सो-नम्-ग्यंजे के जन्म स्थान के लोगों का यही स्वभाव लूट-मार करना। यद्यपि सो-नम्-ग्यंजे का चार-पाँच वर्ष का रिकॉर्ड बहुत अच्छा रहा है तो भी हम अर्धविक्षिप्त समझते थे। वह कहता थी मैं तो नदी में छलांग मार कर जान दे दूँगा। इस प्रकार आज रास्ते भर हम लोग शंकित और सलग ही चलते रहे।

स्त-ग्लुड् मठ से प्राय: डेढ़ मील तक साधारण ढालू भूमि पर चलकर रूखे पत्थरो को जोड़ कर बनाए एक पुल से हम पार के बाएँ हो लिए रास्ते में पहाड़ के वश में ढ़के एक मठ का फोटो लिया। जिस जगह हम चल रहे थे, वह ल्हासा (12,000 फुट) से अधिक ठंडा है, तो भी आज के पहाड़ जंगली गुलाब और करौंदे की झाड़ियों से खूब ढँके थे। छोटी-छोटी घास तो वर्षा के कारण होगी, किन्तु बिच्छू-घास तो बारहमारी है, जिसकी यहाँ बहुतायत हैं चारों ओर हरियाली की अद्भुत शोभा है। हमारे काफिले में दो नौकरों की बढ़त हुई। उन्हें हमने पौने तीन साड़ (प्राय: 9 आने) रोज फर रखा हैं। 12 बजे हम लोग फुन-दो में ब्रह्मपुत्र की उस शाखा के तट पर पहुँचे, जो ल्हासा होकर गुजरी हैं। यहाँ आदमियों के लिए लोहे के साँकल पर चमड़े बँधी लकड़ियों का झूला है। सामान के लिए चमड़े की नाच (क्वा) हैं जानवरों को तैरकर पार करना पड़ता है। हम लोग दो घंटे के इंतजार के बाद क्वासे उतर सके। मंगोलिया और कन-स् (चीन) की ओर का यह प्रधान रास्ता है। यहाँ भी लकड़ी की नाव का इंतजाम करना चाहिए था।

छ-ला पार करने के बाद ही पुरुषों के बालों में भेद दिखलाई पड़ता है। यह लोग खाम् वालों की भाँति सामने के बालों को कैंची से कटवाते हैं। जहाँ से इस पत्र को लिख रहा हूँ, यहाँ से आधे दिन के रास्ते पर ला-ग्त्रिस् (जोत-युगल) हैं, जिसके पार होते ही हम होर-प्रांत में पहुँच जाते हैं, भोट देश के होते हुए भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों की पोशाक में बहुत फर्क है। सवा दो बजे रवाना हुए। अब हम ल्हासा वाली नदी की बाई शाखा के दाहिने से चल रहे थे।

यह धार पिछली बार से बहुत बड़ी है। खैरियत यही है कि इसे हमें पार नहीं करना होगा। इधर के पहाड़ों पर तो और भी अधिक झाड़ियाँ और हरियाली हैं। खेती के लायक जमीन होने पर भी खेत देखने में नहीं आते। नदी के पार एकाध जगह सरसों के पीले फूल दिखलाई पड़ते थे। हाँ जगह-जगह पहाड़ों पर चरती चमरियों के चलायमान काले दाग जरूर थे। दो-एक जगह परित्यक्त ऊँचे घरों की पत्थर की दीवारें बतला रही थी कि किसी समय इधर अब से अधिक बस्ती थी। नदी की उपत्यका काफी चौड़ी हैं। दो-तीन जगह हमें होर-प्रांत वाले मक्खन विक्रेताओं की लदी चमरियाँ मिलीं। दो-तीन जगह तीर्थाटक भिखमंगे भी मिले। होर् की दो-तीन तीर्थटिकाओं के फोटो लेने का भी हमने प्रयत्न किया। पाँच बजे हम उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ रे-डिड् का रास्ता मंगोलिया के रास्ते अलग होता है। यहाँ एक मंदिर हैं, जिसे रिग्स्-ग्सुम-स्गोन्-पो-का-ल्ह-खड् (देवालय) कहा जाता है। लोग कहते हैं, इसे श्रोड्-ब्चन्-स्गम्-पो ने बनवाया था। स्थान तो महत्वपूर्ण जरूर है, तो 1 देवालय उतना पुराना नहीं होगा। हाँ, यह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से इधर का नहीं हो सकता। मंदिर के भीतर बुद्ध की दो सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कुछ और मूर्तियों के अतिरिक्त एक एकादशमुख अवलोकितेश्वर की भी मूर्ति हैं। ल्ह-खड् (देवालय) पहाड़ के उस कोने पर हैं, जहाँ से मंगोलिया का रास्ता मुड़ता हैं। बगल गृहपति ने स्वागतपूर्वक हमें अपना सबसे अच्छा कमरा दिया। इस कमरे में आसन और चाय की चौंकियों के अतिरिक्त दीवारों पर कितने ही चित्रपट और एक कोने में सजा कर रखी पद्मसंभव की मूर्ति किट्सन-लैम्प के सहारे हमने एक फोटो लेने का प्रयत्न किया था। आ जाए, तब है। यहाँ से रे-डिड् पाँच मील के करीब है। कल सवेरे ही वहाँ पहुँच जाएँगे।

रे-डिड्
5-8-34

प्र.4. मुक्तिबोध द्वारा लिखित 'एक साहित्यिक की डायरी' पर लेख लिखिए।

उत्तर

एक साहित्यिक की डायरी

गजानन माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा लिखित 'एक साहित्यिक की डायरी' का एक पाठ जोकि 'तीसरा क्षण' नाम से पुस्तक में दिया गया है यथारूप विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु यहाँ प्रस्तुत हैं—

तीसरा क्षण

आज से कोई बीस साल पहले की बात है। मेरा एक मित्र केशव और मैं दोनों जंगल-जंगल घूमने जाया करते, पहाड़ चढ़ा करते, नदी पार किया करते। केशव मेरे जैसा ही पन्द्रह वर्ष का बालक था। किन्तु वह मुझे बहुत ही रहस्यपूर्ण मालूम होता। उसका रहस्य बड़ा ही अजीब था। उस रहस्य से मैं भीतर ही भीतर बहुत आतंकित रहता।

केशव ने ही बहुत पहले मुझे बताया कि इड़ा, पिगंला और सुषुम्ना किसे कहते हैं। कुण्डलिनी चक्र से मुझे बड़ा डर लगता है। उसने हठयोगियों की बहुत सी बातें बड़े ही विस्तार के साथ वर्णन की।

केशव का सिर पीछे से बहुत बड़ा था। आगे की ओर लम्बा और विस्तृत था। माथा साधारण और घनी-घनी भौंहों के नीचे काली आँखें, बहुत गहरी, मानो दो कुएँ पुतली के काँच से मढ़े हुए हों। यह भी लगता कि उसकी आँखें और जमी हुई हैं। आँखों के बीच, नाक की शुरुआत पर घनी-घनी भौंहों की दोनों पट्टियाँ नीचे झुककर मिल जाती थीं। कभी-कभी नाई द्वारा वह इस मिलन-स्थल पर भौंहों के बाल कटवा लेता। लेकिन उनके रोएँ फिर उग आते। आँखों के नीचे फीका पीला, लम्बा, शिथिल और उकताया हुआ थका चेहरा था। केशव मझोले कद का बालक था जिसे खेलने-कूदने से कोई मोह नहीं था। उसका गणित विषय अच्छा था। इसलिए केशव मेरे लिए मिडिल और मैट्रिक में जरूरी हो उठा था। फिर भी मैं केशव के प्रति विशेष उत्साहित नहीं था। मुझे प्रतीत हुआ कि वह मेरे प्रति अधिक स्नेह रखता है। वह मेरे पिताजी के श्रद्धेय मित्र का लड़का था इसलिए उसके यहाँ मेरा काफी आना-जाना था।

केवल एक ही बात उसमें और मुझमें समान थी। वह बड़ा ही घुमक्कड़ था। मैं भी घूमने का शौकीन था। हम दोनों सुबह, शाम और छुट्टी के दिनों में तो दिन-भर दूर-दूर घूमने जाया करते। इसके बावजूद इसका चेहरा लम्बा फीका और पीला रहता। किन्तु वह मुझसे अधिक स्वस्थ था, उसका डील ज्यादा मजबूत था। वह निस्सन्देह हट्टा-कट्टा था। फिर भी उसके चेहरे की त्वचा काफी पीली रहती। पीले लम्बे चेहरे पर घनी भौंहों के नीचे गहरी-गहरी काली चमकदार कुएँनुमा आँखे और सिर पर मोटे बाल और गोल अड़ियल मजबूत ठुड्डी मुझे बहुत ही रहस्य-भरी मालूम होती। केशव में बाल सुलभ चंचलता न थी वह एक स्थिर प्रशान्त पाषाण-मूर्ति की भाँति मेरे साथ रहता। मुझे लगता कि भूमि के गर्भ में कोई प्राचीन सरोवर हैं। उसके किनारे पर डरावने घाट, आतंककारी देव-मूर्तियाँ और रहस्यपूर्ण गर्भ-कक्षोंवाले पुराने मन्दिर हैं। इतिहास ने इन सबको दबा दिया। मिट्टी की तह पर तह, परतों पर परतें, चट्टानों पर चट्टानें छा गयीं। सारा दृश्य भूमि में गड़ गया, अदृश्य हो गया और उसके स्थान पर यूकैलिप्टस के नये विलायती पेड़ लगा दिये गये, बंगले बना दिये गये। चमकदार कपड़े पहने हुई खूबसूरत लड़कियाँ घूमने आने लगीं और उन्हीं किन्हीं बंगलों में रहने लगा मेरा मित्र केशव जिसने शायद पिछले जन्म में या उसके भी पूर्व के जन्म में उसी भूमि गर्भस्थ सरोवर का जल पिया होगा, वहाँ विचरण किया होगा।

मनुष्य का व्यक्तित्व एक गहरा रहस्य हैं—इसका प्रथम भान मुझे केशव द्वारा मिला इसलिए नहीं कि केशव मेरे सामने खुला मुक्त हृदय नहीं था। उसके जीवन में कोई ऐसी बात नहीं थी जो छिपायी जाने योग्य हो। इसके अलावा वह बालक सचमुच बहुत दयालु, धीर-गम्भीर, भीषण कष्टों को सहज ही सह लेने वाला, अत्यन्त क्षमाशील था। किन्तु साथ ही वह शिथिल, स्थिर, अचंचल, यन्त्रवत् और सहज-स्नेही था। उसमें सबसे बड़ा दोष यह था कि उसमें बालकोचित, बाल-सुलभ गुण-दोष नहीं थे। मुझे हमेशा लगा कि उसका विवेक वृद्धता का लक्षण है।

जब हम हाईस्कूल में थे, केशव मुझे निर्जन अरण्य प्रदेश में ले जाता। हम भर्तृहरि की गुहा, मछिन्दरनाथ की समाधि आदि निर्जन किन्तु पवित्र स्थानों में जाते। मंगलनाथ के पास शिप्रा नदी बहुत गहरी, प्रचण्ड मन्थर और श्याम-नील थी। उसके किनारे हम नये-नये भौगोलिक प्रदेशों का अनुसन्धान करते। शिप्रा के किनारों पर गैरव और भैरव साँझें बितायीं। सुबह और दोपहर अपने रक्त में समेट लीं। सारा वन्य-प्रदेश श्वास में भर लिया। सारी पृथ्वी वक्ष में छिपा ली। मैंने केशव को कभी भी योगाभ्यास करते हुए नहीं देखा, न उसने कभी सचमुच ऐसी साधना की। फिर भी वह मुझसे योग की बातें करता। सुषुम्ना नाड़ी के केन्द्रीय महत्त्व की बात उसने मुझे समझायी। षट्चक्र की व्यवस्था पर भी उसने पूर्ण प्रकाश डाला। मेरे मन के अँधेरे को उसके प्रकाश ने विच्छिन्न नहीं किया। किन्तु मुझे उसके योग की बातें रहस्य के मर्ममेदी डरावने अँधेरे की भाँति आकर्षित करती रहती मानों मैं किन्हीं गुहाओं के अँधेरे में चला जा रहा हूँ और उस ओर से (किसी स्त्री की) कोई मर्ममेदी पुकार मुझे सुनाई दे रही हैं।

मैंने अपने मन का यह चित्र उसे कह सुनाया। वह मेरी तरफ अब पहले से भी अधिक आकर्षित हुआ। बहुत सहानुभूति से मेरी तरफ ध्यान देता। धीरे-धीरे मैं उसके अत्यन्त निकट आ गया। उसकी सलाह के बिना काम करना अब मेरे लिए असम्भव हो गया था।

साधारण रूप से, मेरे मन में उठनेवाली भाव-तरंगे मैं उसे कह सुनाता-चाहे वे भावनाएँ अच्छी हों, चाहे बुरी, चाहे वे खुशी करने लायक हों, चाहें ढाँकने लायक। हम दोनों के बीच एक ऐसा विश्वास हो गया था कि तथ्य का अनादर करना, छुपाना, उससे परहेज

करके दिमागी तलघर में डाल देना न केवल गलत है, वरन् उससे कई मानसिक उलझनें होती हैं। एक बात कह दूँ। अपने ख्याल या भाव कहते समय मैं बहुत उच्छवसित हो उठता। मुझे लगता कि मन एक रहस्यमय लोक है। उसमें अँधेरा है। अँधेरे में सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ गीली है। सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी हुई है। वहाँ अथाह काला जल है। उस अथाह जल से स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल में कोई बैठा है। वह शायद मैं ही हूँ। अथाह और एकदम स्याह-अँधेरे पानी की सतह पर चाँदनी का एक चमकदार पट्टा फैला हुआ है, जिसमें मेरी ही आँखे चमक रही हैं, मानों दो नीले मूँगिया पत्थर भीतर उद्दीप्त हो उठे हों।

मेरे मन के तहखाने में उठी हुई ध्वनियाँ उसे आकर्षित करतीं। धीरे-धीरे वह मुझमें ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा। मैं जब उसे अपने मन की बातें कह सुनाता तो वह क्षणभर अपनी घनी भौंहोंवाली प्रशान्त-स्थिर आँखों से मेरी तरफ देखता रहता। साधारण बातें, जो कि हमारे समाज की विशेषताएँ थीं, हमारी चर्चा का विषय बनतीं। यद्यपि उसकी ज्ञान-सम्पत्ति अल्प ही थी, हमारी चर्चाएँ विविध विषयों पर होतीं। मुझे अभी तक याद है कि उसने मुझे पहली बार कहा था कि गाँधीवाद ने भावुक कर्म की प्रवृति पर कुछ इस ढंग से जोर दिया है कि सप्रश्न बौद्धिक प्रवृत्ति दबा दी गयी है। असल में यह गाँधीवादी प्रवृत्ति प्रश्न, विश्लेषण और निष्कर्ष की बौद्धक क्रियाओं का अनादर करती हैं। यह बात उसने मुझे तब कही थी तब सन् तीस-इकतीस का सत्याग्रह खत्म हो चुका था और विधान सभाओं में घुसने की प्रवृति जोर पकड़ रही थी। तब हम स्थानीय इण्टरमीडिएट कॉलेज के फर्स्ट ईअर में पढ़ते थे। तभी हमने रूस के पंचवर्षीय आयोजन का नाम सुना था। इसके बाद हम डिग्री कॉलेज में पहुँचे किसी दूसरे शहर में मुझे नही मालूम था कि केशव ने भी वही कॉलेज जॉयन किया है। मैंने उसके बारे में जानकारी लेने की कोशिश भी नहीं की थी। सच तो यह है कि मेरा उसके प्रति कोई विशेष स्नेह नहीं था, न कोई आकर्षण। ऐसे पाषाणवत, प्रशान्त, गम्भीर व्यक्ति मुझे पसन्द नहीं। हाँ, उसके प्रति मेरे मन में सम्मान और प्रशंसा के भाव थे, और चूँकि वह मुझे बहुत चाहता था, इसलिए मुझे भी उसे चाहना पड़ता था। शायद उसे मेरी यह स्थिति मालूम थी। लेकिन कभी उसने अपने मन का भाव नहीं दर्शाया इस सम्बन्ध में।

और एक बार जब हम दोनों फोर्थ ईअर में पढ़ रहे थे वह मुझे कैण्टीन में चाय पिलाने ले गया। केवल मैं ही बात करता जा रहा था। आखिर वह बात भी क्या करता उसे बात करना आता ही कहाँ था। मुझे फिलॉसफी में सबसे ऊँचे नम्बर मिले थे। मैंने प्रश्नों के उत्तर कैसे-कैसे दिये, इसका मैं रस-विभोर होकर वर्णन करता जा रहा था। चाय पीकर हम दोनों आधी मील दूर एक तालाब के किनारे जा बैठे। वह वैसा ही चुप था। मैंने साइकोऐनलिसिस की बात छेड़ दी थी। जब मेरी धारा-प्रवाह बात से वह कुछ उकताने लगता तब वह पत्थर उठाकर तालाब में फेंक मारता। पानी की सतह पर लहरें बनतीं और डुप्प-डुप्प की आवाज।

साँझ पानी के भीतर लटक गयी थी। संध्या तालाब में प्रवेश कर नहा रहीं थी। लाल-भड़क आकाशीय वस्त्र पानी में सूख रहे थे और मैं संध्या के इस रंगीन यौवन से उन्मत हो उठा था। हम दोनों उठे चले, और दूर एक पीपल के वृक्ष के नीचे खड़े हो गए। एकाएक मैं अपने से चौंक उठा। पता नहीं क्यों, मैं स्वयं एक अजीब भाव से आतंकित हो उठा। उस पीपल वृक्ष के नीचे अँधेरे में मैंने उससे एक अजीब और विलक्षण आवेश में कहा, 'शाम, रंगीन शाम, मेरे भीतर समा गयी है, बस गयी है। वह एक जादुई रंगीन शक्ति है। मुझे उस सुकुमार ज्वाला-ग्राही जादुई शक्ति से-यानी मुझसे मुझे डर लगता है।' और सचमुच, तब मुझे एक कँपकँपी आ गयी। इतने में शाम साँवली हो गयी। वृक्ष अँधेरे के स्तूप-व्यक्तित्व बन गये। पक्षी चुप हो उठे। एकाएक सब ओर स्तब्धता छा गयी। और, फिर इस स्तब्धता के भीतर से एक चम्पई पीली लहर ऊँचाई पर चढ़ गयी। कॉलेज के गुम्बद पर और वृक्षों के ऊँचे शिखरों पर लटकती हुई चाँदनी सफेद धोती सी चमकने लगी।

एकाएक मेरे कन्धे पर अपना शिथिल ढीला हाथ रख केशव ने मुझसे कहा, याद है एक बार तुमने सौन्दर्य की परिभाषा मुझसे पूछी थी? मैंने उसकी बात की तरफ ध्यान न देते हुए बेरूखी-भरी आवाज में कहा, हाँ। 'अब तुम स्वयं अनुभव कर रहे हो।' मैं नहीं जानता कि मैं क्या अनुभव कर रहा था। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि किसी मादक अवर्णनीय शक्ति ने मुझे भीतर से जकड़ लिया था। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय मेरे अन्तःकरण के भीतर एक कोई और व्यक्तित्व बैठा था। मैं उसे महसूस कर रहा था। कई बार उसे महसूस कर चुका था। किन्तु अब तो उसने भीतर से मुझे बिल्कुल ही पकड़ लिया था। 'मैं जो स्वयं था वह स्वयं हो गया था। अपने से 'बृहत्तर, विलक्षण अस्वयं'।' एकाएक उस पाषाण-मूर्ति-मित्र की भीतरी रिक्तता पर मेरा ध्यान हो आया। वह मुझसे कितना दूर है, कितना भिन्न है, कितना अलग है अवांछनीय रूप से भिन्न।

वह मुझसे पण्डिताऊ भाषा में कह रहा था, किसी दृश्य या भाव से मनुष्य जब एकाकार हो जाता है तब सौन्दर्य वस्तु या बोध होता है। सब्जेक्ट और ऑब्जेक्ट वस्तु और उसका दर्शन, इन दो पृथक् तत्वों का भेद मिटकर सब्जेक्ट ऑब्जेक्ट से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है तब सौन्दर्य भावना उद्बुद्ध होती है! मैंने उसकी बात की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सौन्दर्य की परिभाषा वे करें जो उससे अछूते हैं, जैसे मेरा मित्र केशव! उनकी परिभाषा सही हो तो क्या, गलत हो तो क्या! इससे क्या होता जाता है!! दिन गुजरते गये। एक ही गाँव के हम दो साथी, भिन्न प्रकृति के, भिन्न गुण-धर्म के, भिन्न दशाओं के। एक-दूसरे से उकता उठने के बावजूद हम

दोनों मिल जाते, चर्चा करने लगते। मेरा जीभ कतरनी जैसी चलती। केशव साँकल में लगे हुए, फिर भी खुले हुए ढीले ताले-सा प्रतीत होता। कोई मकान के अन्दर जाये, देख-भाल ले, चोर-चपाटी कर ले, लेकिन जाते वक्त साँकल में ताला जरूर अटका जाये, वह भी खुला हुआ; चाबी लगाने की जरूरत नहीं। ताला भीतर से टूटा है, चाबी लग ही नहीं सकती। लेकिन इस ताले में एक दिन अचानक चाबी भी लग गयी। छुट्टी का दिन। वृक्षों के समीप धूप अलसा रही थी। मैं घर में बैठे-बैठे 'बोर' हो रहा था। मैंने साइकिल पर आते हुए और धूप में चमकते हुए एक चेहरे को दूर से देखा। इधर मैंने काफी कविताएँ लिख ली थीं। सोचा, शिकार खुद फँसने आ रहा है। केशव का चेहरा उत्तप्त था। चेहरे पर कुछ जाल में नयी बात थीं जिसको मैं पहचान नहीं पाया। कविताओं से मुझे इतनी फुरसत नहीं थी कि केशव की तरफ ध्यान दे सकूँ। मैं तो अपने नशे में रहता था। अगर मैं बोलना न शुरू करता तो चुप्पी काली होकर घनी और घनी होकर और भी काली और लम्बी हो जाती। इसलिए मैंने ही बोलना शुरू किया, 'कैसे निकले?'

केशव गरदन एक ओर गिराकर रह गया। उसके बाल तब आधे माथे पर आ गये। मुझे लगा, वह आराम करना चाहता है। उसने आरम्भ किया, 'मैंने तो बहुत-बहुत सोचा कि ईस्थेटिक एक्सपीरिएन्स क्या है। आज मैंने इसी सम्बन्ध में कुछ लिखा है। तुम्हें सुनाने आया हूँ।' भीतर दिल में मेरी नानी मर गयी। मैं खुद कविताएँ सुनाने की ख्वाहिश रखता था। अब यह केशव अपनी सुनाने बैठेगा। मेरी सारी दोपहर खराब हो जायेगी। शी। मैंने प्रस्ताव रखा, 'अपने उस विषय की बात ही क्यों न कर लें।' 'जरूर; लेकिन डिसिप्लिन से बात करनी होगी।' यह कहकर वह मुस्कुरा दिया!!

यह मुस्कुराहट मुझे चुभ गयी। तो क्या मैं इतना पागल हूँ कि बात करने में भटक जाता हूँ। इस साले ने बहुत ध्यानपूर्वक मेरे स्वाभाव का अध्ययन किया होगा। शायद मैं इसे बहुत 'बोर' करता रहा हूँगा। अपने स्वभाव के अध्ययन के इतने अधिक और इतने प्रदीर्घ अवसर किसी को देना शायद उचित नहीं था। मैं तो उल्लू सरीखा बोलता जाता हूँ और ये हजरत अपने दिमाग की नोटबुक में मेरी हर गलती टीप लेते हैं! मैंने विश्वास दिलाने की जबरजस्त चेष्ठा की और कुचेष्टा करते हुए 'बात बिल्कुल ढंग से ही होगी।' उसने कहा, "मैंने तुम्हें बताया था कि 'निज' और 'पर' 'स्व-पक्ष' और 'वस्तु-पक्ष' दोनों जब एक हो जाते हैं तब तादात्म्य उत्पन्न होता है!"

उसको भावों की गम्भीरता कुछ ऐसी थी, चेहरा उसने इतना सीरियस बना रखा था कि मुझे अपनी हँसी दबा देनी पड़ी। पहली बात तो यह है कि मुझे उसकी शब्दावली अच्छी नहीं लगी। यह तो मैं जानता हूँ कि सारे दर्शन का मूल आधार सब्जेक्ट-ऑब्जेक्ट रिलेशनशिप की कल्पना है स्व-पक्ष और वस्तु-पक्ष की परिकल्पनाएँ और उन दो पक्षों के परस्पर सम्बन्ध की कल्पना के आधार पर ही दर्शन खड़ा होता है। अथवा यूँ कहिए की ज्ञान-मीमांसा खड़ी होती है। एपिस्टेमॉलॉजी अर्थात् ज्ञान-मीमांसा की बुनियाद पर ही परिकल्पनाओं के प्रसाद की रचना की गयी है। इस दृष्टि से देखा जाये तो मुझे वाक्य पर हँसने की जरूरत नहीं थी। मैं उसकी स्थापना को विवाद्य मान सकता हूँ, हास्यास्पद नहीं। फिर भी मैं हँस पड़ा-इसलिए कि मुझे उसके शब्दों में, उसके स्वयं के विचित्र व्यक्तित्व की झलक दिखलाई दी। वही बोझिल, गतिहीन, ठण्डा, पाषाणवत् व्यक्तित्व!! उसकी भौंहें कुछ आकुंचित हुई। फीका, पीला चेहरा, किंचित् विस्मय से मेरी ओर वही ठण्डी दृष्टि डालने लगा मानो वह मेरे रूख का अध्ययन करना चाहता हो। मैंने कहा, "भाई मुझे तादात्म्य और तदाकारिता की बात समझ में नहीं आयी। सच तो यह हैं कि वस्तु में तदाकार नहीं हो पाता। तदाकारिता की बात का मैं खण्डन नहीं करता, किन्तु मैं उसको एक मान्यता के रूप में ग्रहण नहीं करना चाहता।"

उसने कहा, 'क्यों?' मैंने जवाब दिया, "एक तो मैं वस्तु-पक्ष का ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझता। हिन्दी में मन से बाह्य वस्तु को ही वस्तु समझा जाता है मेरा ख्याल है। मैं कहता हूँ कि मन का तत्त्व भी वस्तु हो सकता है। और यह मान लिया जाये कि मन का तत्व भी एक वस्तु है तो ऐसे तत्व के साथ तदाकारिता या तादात्म्य का कोई मतलब नहीं होता क्योंकि वह तत्व मन ही का एक भाग है। हाँ मैं इस मन के तत्व के साथ तटस्थता का रूख की कल्पना कर सकता हूँ; तदाकारिता नहीं।" मेरे स्वर और शब्द की हल्की धीमी गति ने उसे विश्वास दिला दिया कि मैं उसकी बात उड़ाने के लिए नहीं कह रहा हूँ, वरन् उसकी बातें समझने में महसूस होने वाली कठिनाई का बयान कर रहा हूँ। आखिरकार वह मेरा मित्र था, बुद्धिमान और कुशाग्र था। उसने मेरी ओर देखकर किंचित् विस्मत किया और कहने लगा, 'तुम एक लेखक की हैसियत से बोल रहे हो इसलिए ऐसा कहते हो।' किन्तु सभी लोग लेखक नहीं हैं। दर्शक हैं, पाठक हैं, श्रोता हैं। वे हैं, इसलिए तुम भी हो—यह नहीं कि तुम हो इसलिए वे हैं! वे तुम्हारे लिए नहीं हैं, तुम उनके सम्बन्ध से हो। पाठक या श्रोता तादात्म्य या तन्मयता से बातें शुरू करें तो तुम्हें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। 'मेरे मुँह से निकला, 'तो?'

उसने जारी रखा, "तो यह कि लेखक की हैसियत से, सृजन प्रकिया के विश्लेषण के रास्ते से होते हुए सौन्दर्य-मीमांसा करोगे या पाठक अथवा दर्शक की हैसियत से, कालानुभव के मार्ग से गुजरते हुए सौन्दर्य की व्याख्या करोगे? इस सवाल का जवाब दो।" मैं उसकी चपेट में आ गया। मैं कह सकता था कि दोनों करूँगा। लेकिन मैंने ईमानदारी बरतना उचित समझा। मैंने कहा, 'मैं तो लेखक की हैसियत से ही सौन्दर्य की व्याख्या करना चाहूँगा।' इसलिए नहीं कि मैं लेखक को कोई बहुत ऊँचा स्थान देना चाहता हूँ वरन् इसलिए कि मैं अपने अनुभव की चट्टान पर खड़ा हुआ हूँ। उसने भौहों को सिकोड़कर और फिर ढीला करते हुए जवाब दिया,

TOUCH 'n' PASS

'बहुत ठीक; लेकिन जो लोग लेखक नहीं हैं वे तो अपने अनुभव के दृढ़ आधार पर खड़े रहेंगे और उसी बुनियाद पर बात करेंगे। इसलिए उनके बारे में नाक-भौं सिकोड़ने की जरूरत नहीं। उन्हें नीचा दिखाना तो और भी गलत है।''

उसने कहना जारी रखा, 'इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि आप किस सिरे से बात शुरू करेंगे! यदि पाठक श्रोता या दर्शक के सिरे से बात शुरू करेंगे तो आपकी विचार-यात्रा दूसरे ढंग की होगी। यदि लेखक सिरे से सोचना शुरू करेंगे तो बात अलग प्रकार की होगी। दोनों सिरे से बात होगी सौन्दर्य-मीमांसा की। किन्तु यात्रा की भिन्नता के कारण अलग-अलग रास्तों का प्रभाव विचारों को भिन्न बना देगा। दो यात्राओं की परस्पर भिन्नता, अनिवार्य रूप से, परस्पर-विरोधी ही है यह सोचना निराधार है। भिन्नता पूरक हो सकती है, विरोधी भी। यदि हम यथा तथ्य बात भी करें तो भी बल (एम्फैसिस) की भिन्नता के कारण विश्लेषण भी भिन्न हो जायेगा। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रश्न किस प्रकार उपस्थित किया जाता है। प्रश्न तो आपकी विचार-यात्रा को रेगिस्तान में विचरण का पर्याय नहीं बनाना हैं तो प्रश्न को सही ढंग से प्रस्तुत करना होगा। यदि वह गलत ढंग से उपस्थित किया गया तो अगली सारी यात्रा गलत हो जायेगी।'

उसने मेरी तरफ ध्यान से देखा। शायद वह देखना चाहता था कि मैं उसकी बात गम्भीरतापूर्वक सुन रहा हूँ या नहीं। शायद उसका यह विश्वास था कि मैं अत्यधिक इम्पल्सिव, सहज-उत्तेजित हो उठने वाले एक बैचेन आदमी की तरह हूँ। किन्तु मैं शान्त था। मेरे मन की केवल एक ही प्रतिक्रिया थी और वह यह कि केशव यह समझता है कि मैं समस्या को ठीक तरह से प्रस्तुत करना नहीं जानता। असल में उसकी यह धारणा मुझे बहुत अप्रिय लगी। उसकी इस धारणा को मैं बहुत पहले से जानता था। वह कई बार दुहरा भी चुका था। असल में वह बौद्धिक क्षेत्र में अपने को मुझसे उच्चतर समझता था। उसका ठण्डापन, उसके फलस्वरूप हम दोनों के बीच के दूरी, दूरी का सतत मान, और इस मान के बावजूद हम दोनों का नैकट्य-परस्पर घनिष्ठता और उसके विपरीत, दूरी के उस मान के कारण मेरे मन में केशव के विरुद्ध एक झख मारती खीझ और चिड़चिड़ापन-इन सब बातों से अन्तःकरण में केशव से मेरे सम्बन्धों की भावना विषम हो गयी थी। सूत्र उलझ गये थे। मैं केशव को न तो पूर्णतः स्वीकृत कर सकता था न उसे अपनी जिन्दगी से हटा सकता था। इस प्रकार की मेरी स्थिति थी। फिर भी चूँकि ऐसी स्थिति बहुत पहले से चली आयी थी इसलिए मुझे उसकी आदत पड़ गयी थी। किन्तु इस अभ्यस्तता के बावजूद कई बार में विक्षोभ से फूट पड़ता और तक केशव की आँखों में एक चालाक रोशनी दिखाई देती, और मुझे सन्देह होता कि वह मेरी तरफ देखकर मुस्कुराता हुआ कोई गहरी चोट कर रहा है। उस समय इसके विरुद्ध मेरे हृदय में घृणा का फोड़ा फूट पड़ता!!

किसी न किसी तरह मैंने अपने को सामंजस्य और सन्तुलन की समाधि में लिया; यह बताने के लिए मैं उसकी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा हूँ। मैंने उसके तर्कों और युक्तियों के प्रवाह में डूबकर कर मर जाना ही श्रेयस्कर समझा क्योंकि इस रवैये से या रूख से मेरे आत्मगौरव की रक्षा हो सकती थी। इस बीच मेरा मन दूर-दूर भटकने लगा। बाहर से शायद मैं धीर-प्रशान्त लग रहा था।

प्र.5. डॉ० पद्मसिंह शर्मा के 'मैं इनसे मिला' साक्षात्कार विधा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, इसका उल्लेख कीजिए।

उत्तर

'मैं इनसे मिला' साक्षात्कार

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने 'मैं इनसे मिला' की भूमिका 'मेरा दृष्टिकोण' नाम से लिखी है। इसे पढ़कर पुस्तक के स्वरूप का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। 'मैं इनसे मिला' पुस्तक की भूमिका विद्यार्थियों के अध्ययन हेतु यहाँ प्रस्तुत हैं—

'मैं इनसे मिला' पुस्तक की भूमिका

मेरा दृष्टिकोण

सन् 1985 की बात है। मैं बम्बई गया था। बम्बई-हिन्दी-विद्यापीठ संस्थापक आदरणीय भाई भानुकुमार जैन के यहाँ एक दिन हिन्दी साहित्यकारों के विषय में चर्चा हुई। उनके व्यक्तिगत जीवन, संघर्ष, हित्य-साधना आदि पर कितनी ही बातें हुई। सब लोग इस बात पर सहमत थे कि साहित्यकारों के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कही जाने वाली बातों में बहुत झूठ का अंश होता है। उसी समय मेरे मन में यह विचार उठा कि क्यों न साहित्यकारों से मिलकर उनके जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त की जाए। इस विचार का आना था कि दूसरे दिन बम्बई के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यिक श्री दाऊदत्त उपाध्याय 'अंकुर' के साथ में हिन्दी के अभिनव शैलीकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' से मिलने गया। जाने से पहले लोगों ने मुझसे कहा—'उग्र जी बड़े विचित्र जीव हैं, अक्खड़ स्वभाव के हैं, और गाली देकर बात करते हैं। जरा बचकर रहना।' कुछ ने तो कहा कि अच्छा है, आप मिलने ही न जायें। इन सलाहकारों की बातों से मेरे मन में कुछ भय तो हुआ, पर उग्र जी से मिलने की इच्छा कम न हुई और मैं उनसे मिलने जा पहुँचा। अंकुर जी ने परिचय कराया। परिचय कराने के बाद से लेकर तीन-चार घण्टे बाद तक उग्र जी ने मुझसे कोई ऐसी बात नहीं की जो उसके विषय में मुझसे न मिलने की सलाह देने वालों ने कही थी। 'विक्रम-कार्यालय' में (उन दिनों उग्र जी 'विक्रम' साप्ताहिक के सम्पादक थे) कवियों, साहित्यकारों तथा सम्पादकों के सम्बन्ध में बातें हुई, चौपाटी पर घूमते हुए और चाट खाते हुए उनके

स्वभाव और जीवन के विषय में मैंने लोगो द्वारा उड़ाई गई बे-सिर-पैर की बातें पूछीं; पर उग्रजी की उग्रता का पता, जैसा लोगों ने मुझसे कहा था, कही न चला। मैंने अपनी और लोगों की कल्पना के विपरीत उग्र जी को एक मौलिक कला-सृजन और शैलीकार ही पाया। बम्बई में ही उन दिनों हिन्दी के वयोवृद्ध पत्रकार और नाटककार स्व० श्री हरिकृष्ण जौहर भी रहते थे। सत्तर-बहत्तर वर्ष के वृद्ध अनुभवी साहित्यिक के यहाँ जब मैं पहुँचा तो गदगद होकर बोले 'जीवन के अंतिम दिनों में आज आप मेरी साहित्य-साधना के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए आने वाले एक मात्र सज्जन हैं। मेरे हर्ष की सीमा नहीं है।' उस वृद्ध साहित्यकार के इन शब्दों ने मुझे अनुभव कराया कि उन-जैसे अनेक महारथी हिन्दी की सेवा में मर-खप रहे हैं और उनके सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं लिखता। फलत: लोगों को उनके जीवन के विषय में भी कोई जानकारी नहीं होती। यदि ऐसे अनुभवी साहित्यकारों से उनके तथा उनके समकालीन साहित्यकारों के विषय में कुछ तथ्य संग्रह हो सके तो हिन्दी में एक नई सामग्री भावी आलोचकों तथा इतिहास लेखकों को मिल जाएगी, जिसके प्रकाश में वे उनके साहित्य को ठीक-ठीक कसौटी पर कस सकेंगे। एक बात और थी, जिसने मुझे इन साहित्यकारों से मिलकर इनके जीवन के अतरंग को जानने के लिए प्रोत्साहित किया और वह यह कि मैं स्वयं साहित्य साधना के पथ पर बढ़ना चाहता था, इसलिए मेरे मन में दूसरे साहित्यकारों के रहन-सहन, लेखन के ढंग, साहित्य के प्रति उनके दृष्टिकोण, उनकी परिस्थिति आदि को जानने की उत्कृष्ट अभिलाषा थी। बम्बई से घर लौटकर मैने उग्र जी तथा जौहर जी के साक्षात्कार दिल्ली के 'नवयुग' साप्ताहिक में छपने भेजे। 'नवयुग' के तत्कालीन सुयोग्य सम्पादक श्री महावीर अधिकारी ने उनकी प्रशंसा में टिप्पणी लिखते हुए उन्हें प्रकाशित किया और मुझे इस दिशा में लिखने के लिए बढ़ावा दिया। 'नवयुग' में प्रकाशित इन भेटों को पाठकों ने तथा हिन्दी-प्रेमियों ने भी बहुत पसन्द किया और साहित्यिकों से भी मिला और उनसे हुई भेटों का विवरण 'हंस' में छपाया। 'हंस' में छपे हुए लेखों की आलोचना हिमालय में हुई। 'हिमालय' के सम्पादक बाबू शिवपूजन सहाय ने जहाँ 'हंस' के लेखों की प्रशंसा की वहीं मुझे कई लम्बे पत्र भी इस विषय में लिखे। एक पत्र में तो उन्होंने लिखा था कि यदि मैं केवल यही काम कर जाऊँ तो हिन्दी की बड़ी सेवा हो जाए। यही नहीं उन्होंने स्वयं 'हिमालय' में भी कई 'साक्षात्कार' छापे और भरपूर पारिश्रमिक दिया। उनके जैसे वयोवृद्ध तपस्वी साहित्यकार की सम्मति ने मुझे दृढ़ता से इस कार्य को करने की प्रेरणा दी तथा मैंने निश्चय किया कि केवल इस कार्य को छोड़कर कुछ न करूँगा और पाँच वर्ष में हिन्दी के ही नहीं, प्रत्युत समस्त देश को प्रांतीय भाषाओं के साहित्यकारों के साक्षात्कार हिन्दी-माता के चरणों में समर्पित कर दूँगा। लेकिन पारिवारिक संकटों और जीवन की अन्य उलझनों के कारण ऐसा न हो सका और आज केवल कुछ साहित्यकारों के ही साक्षात्कार यहाँ दिये जा रहे हैं।

मेरे 'साक्षात्कार' देर से प्रकाशित हो रहे हैं, इसका भी एक कारण है। वह यह है कि पहले मैंने एक प्रश्नावली बनाकर साहित्यकारों से उसके उत्तर लिये थे। कवि, कथाकार, नाटककार, आलोचक आदि सबसे एक ही प्रश्नावली के उत्तर लेने से कुछ एकरसता जाने लगी थी और कुछ अपूर्णता भी रहने लगी थी। इसी बीच सौभाग्य से श्रीमती महादेवी वर्मा से मिलना हुआ। ठहरा मैं श्री निराला जी के यहाँ था। महादेवी जी से जब मिला तो उन्होंने मेरी प्रश्नावली लेकर रख ली और बोली- 'मैं प्रश्नों के उत्तर नहीं देती। वैसे तो बाते करनी हो, कीजिए।' मैंने उनसे बिना प्रश्नों के उत्तर लिये बातें की और घुमा-फिराकर सब प्रश्नों की बाते तो पूछ ही ली और भी बहुत-सी बातें, जिनके लिए मैंने प्रश्न बनाए ही नहीं थे, जान लीं। घर आकर डायरी में उनसे जिस ढंग से बाते हुई थीं, लिख डाली। उनकी भेंट का जो वर्णन लिखा तो प्रश्नों के क्रमश: उत्तर लेने वाले 'इण्टरव्यू' से वह अच्छा जँचा, उसमें स्वाभाविकता भी थी और रोचकता थी। यही निराला जी के सम्बन्ध में हुआ। निराला जी की मानसिक स्थिति के कारण उनसे प्रश्न तो न पूछ सका, पर उनके व्यक्तित्व को निकट से पढ़ने का अवसर मिला। मैंने अपने ऊपर पड़ी उनके व्यक्तित्व की छाप को लिख दिया। इन दोनों लेखों की हिन्दी के पाठकों और विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की। निराला जी के लेख को पढ़कर तो हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'रंग' रो पड़े। महादेवी जी और निराला जी के इन लेखों के प्रकाशन के बाद मैंने प्रश्नोत्तर का ढंग बदल दिया और अपने 'इण्टरव्यू' कलात्मक ढंग से लिखने का विचार किया। प्रश्न तो फिर भी रहे, पर उनका रूप बदल गया। व्यक्ति और उसकी साहित्यिक दिशा की विभिन्नता के कारण प्रश्न कुछ भिन्न हो गए। उनके लिखने में भी मैंने कुछ सावधानी से काम लिया। साहित्यकार और उसकी परिस्थिति का चित्र देने का प्रयत्न इसमें प्रमुख रहा। जब मेरे दृष्टिकोण में विकास हुआ तो मैंने प्रश्नोत्तर वाले ढंग के लेखों को दोबारा लिखने की सोची। उन साहित्यकारों से मैं फिर मिला जिनके इण्टरव्यू लिख चुका था, और वे इण्टरव्यू नए सिरे से लिखे। ऐसे इण्टरव्यू इस संग्रह में कई हैं। कुछ अन्य प्रश्नोत्तर वाले इण्टरव्यू, जो पहले के लिये हुए हैं, इस संग्रह में इसलिए नहीं दिये जा सके कि वे मेरी दृष्टि से अपूर्ण है। उन्हें पूर्ण करके फिर प्रकाशित कराने की व्यवस्था होगी। इण्टरव्यू का कार्य बड़ा व्यय साध्य और कष्टप्रद है। साहित्यकार के पास जाना, उससे उसके जीवन और साहित्य के आन्तरिक रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना, उसे लिखना, लिखकर फिर साहित्यकार के पास जाँचने के लिए भेजना और तब प्रकाशित कराना, इस प्रकार एक-एक इण्टरव्यू में दो या तीन महीने लगते हैं। किसी-किसी में छ:-छ: महीने लग जाते हैं। कभी-कभी इण्टरव्यू देने वाला

किसी प्रश्न के उत्तर के लिए अपनी कोई पुस्तक सुझा देता है, तो उसे पढ़कर उस प्रश्न से सम्बन्धित जानकारी देनी पड़ती है। श्री सुमित्रानन्दन पंत का इण्टरव्यू लेने तो मैं बम्बई गया। काफी रूपया खर्च हुआ और पाँच छः दिन जमकर बातें करके इण्टरव्यू लिखा; लेकिन जब जाँचने के लिए उसे मैंने पंत जी के पास भेजा तो मेरे दुर्भाग्य से वह उनसे खो गया। उसके बाद मैं एक बार फिर इलाहाबाद गया, पर उनसे भेंट न हो सकी। अब न जाने कब भेंट हो। लेकिन मैं इससे निराश नहीं हूँ। जब कभी अवसर मिलेगा, मैं पंत जी का इण्टरव्यू लूँगा अवश्य। मेरा यह कार्य 'मिशन' बन गया है। इसलिए मैं सब कुछ सहकर भी इसे करते जाना चाहता हूँ। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि मैं पत्र व्यवहार द्वारा तिथि निश्चित करके किसी साहित्यकार के पास इण्टरव्यू लेने गया हूँ और उसके कार्यवश बाहर जाने या अस्वस्थ होने से भेंट नहीं हो सकी है और मैं लौट आया हूँ। यही नहीं कभी-कभी तो साहित्यकार के 'मूड' में न होने के कारण भी इण्टरव्यू नहीं लिया गया है। बात यह हैं कि मैं इण्टरव्यू को चलती हुई चीज नहीं बनाना चाहता और न प्रभाववादी आलोचना की भाँति निन्दा-स्तुति का समावेश ही उसमें करना चाहता हूँ। मेरा लक्ष्य तो साहित्यकार की साधना की कठिनाइयों का स्पष्टीकरण है। इसलिए मेरे इण्टरव्यू कहीं भी साहित्यकार के ऊपर कीचड़ उछालते हुए न मिलेंगे। कुछ लोगों ने मुझे सुझाव दिया है कि मैं बुराइयों को भी देखूँ। कारण, उनके बिना व्यक्तित्व की पूरी झलक नहीं मिलेगी। उनके सुझाव की महत्ता को मैं मानता हूँ पर बहुत कम साहित्यकार ही अपनी बुराइयाँ बताने को उद्यत होंगे। यदि बता भी दें तो उनके प्रकाश में आने के पक्ष में तो कदापि नहीं हो सकते। जब इतनी कठिनाई है, तो मैं अपना समय ऐसे प्रश्नों के पूछने में क्यों नष्ट करूँ। इसलिए मेरी दृष्टि साहित्य से सम्बन्धित व्यक्तित्व के उद्‌घाटन की ओर ही रही है। वैसे मैं 'हॉबी' और व्यसनों की बाते पूछता हूँ और जो साहित्यकार बताते हैं उनके इण्टरव्यू में वे सब बाते लिख भी देता हूँ। बुराइयों का प्रकाशन साहस का कार्य है और महात्मा गाँधी की भाँति उच्च चरित्र के व्यक्ति ही अपनी आत्म-कथाओं में वैसा कर सकते हैं। मैं तो इण्टरव्यू लिखकर इण्टरव्यू देने वाले व्यक्ति को दिखा भी इसलिए लेता हूँ कि कहीं कोई ऐसी बात न चली जाए, जो वह नहीं चाहता। मेरे ऐसा करने का कारण यह है कि मैं इस कार्य को शुद्ध साहित्य सेवा की दृष्टि से करना चाहता हूँ, किसी व्यक्ति की अच्छाई-बुराई को उभारकर दिखाने की दृष्टि से नहीं इण्टरव्यू में कटुता या गलतफहमी को मैं स्थान नहीं देना चाहता।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो 'इण्टरव्यू' और 'इम्प्रेशन' को एक समझते हैं। लेकिन यह भूल है। इम्प्रेशन और इण्टरव्यू दो भिन्न वस्तुएँ हैं। इण्टरव्यू का अर्थ हैं, आप जो पूछें उसका उत्तर लिखें और इण्टरव्यू देने वाले की स्वीकृति की मुहर भी उस उत्तर पर हो, ताकि 'भूल-सुधार' करते हुए इण्टरव्यू लेने वाले को क्षमा याचना न करनी पड़े। इम्प्रेशन का अर्थ यह है कि आप पर किसी के व्यक्तित्व का भला या बुरा जो प्रभाव पड़ा है, उसे आप ज्यों-का-त्यों व्यक्त कर दें। इन दोनों को एक-दूसरे का पर्यायवाची समझना ठीक नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इम्प्रेशन का नितान्त बहिष्कार होना चाहिए। नहीं, रोचकता के लिए इण्टरव्यू लेने वाला, इण्टरव्यू देने वाले की परिस्थिति, उसकी भाव-भंगिमा, और उसके व्यवहार से कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकाल सकता है। पर वे निष्कर्ष भी ऐसे हों, जिनसे इण्टरव्यू देने वाले के स्वभाव की किसी विशेषता का पता चलता हो और जिन्हें वह स्वीकार भी करता हो वह इम्प्रेशन ही क्या कि जिसमें जिसका इम्प्रेशन है उसी की स्वीकृति न हो। इसलिए इण्टरव्यू में मैंने कुछ इम्प्रेशन का भी सहारा लिया है, पर वह इम्प्रेशन भी स्वीकृति की मुहर से रहित नहीं हैं यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि कोरा इम्प्रेशन बुराई-भलाई को तीव्रता से प्रकट करने के कारण आकर्षक अवश्य हो सकता है, पर उससे मेरी दृष्टि में साहित्य का विशेष हित नहीं हो सकता। इसलिए मैंने तथ्य-संग्रह पर अधिक बल दिया है, इससे मेरे इण्टरव्यू रोचक कम बन पाए हों। पर यदि वे इण्टरव्यू देने वाले के विषय में अधिक से अधिक जानकारी देते हैं, तो मैं अपने श्रम पर लज्जित नहीं हूँ।

इस संग्रह में वयोवृद्ध साहित्यकार भी हैं, और तरूण भी। यह जान-बूझकर नहीं किया गया है। मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं इसमें एक ही वय के व्यक्तियों का रखूँ। लेकिन जैसा मैं कह चुका हूँ, यह कार्य बड़ा कठिन है। एक ही वर्ग के साहित्यकारों से भेंट करने के लिए समय और धन पर्याप्त मात्रा में चाहिए, जो हिन्दी का एक सामान्य लेखक जुटा नहीं सकता। दूसरे हमारे हिन्दी के कुछ साहित्यकारों ने भी इण्टरव्यू देने में हिचकिचाहट दिखाई। इस कारण भी मेरा यह कार्यक्रम न चला। मैंने यह भी सोचा था कि पाँच या छः भागों में यह इण्टरव्यू निकलें और कवि, कथाकार, नाटककार, निबन्धकार, आलोचक, आदि अलग-अलग पुस्तकों में रहें। इसमें भी कठिनाई का अनुभव हुआ। अन्त में मैंने निश्चय किया कि जैसे-जैसे साहित्यकारों से मिलने का अवसर मिलता जाए वैसे-वैसे उनके इण्टरव्यू लिये जाये और नए-पुरानों को एक साथ ही रखा जाए तो कोई हर्ज नहीं। हाँ, जब पूरा कार्य हो जाए तक नए सिरे से वय की दृष्टि से उनको संग्रहीत किया जा सकता है। मेरा ध्येय काम को करते जाने का हैं, इसलिए मैंने इसमें जो इण्टरव्यू रखे हैं वे विभिन्न वय के साहित्यकारों के हैं। इनमें किसी पक्षपात की बात न समझी जाए, यह मेरा विनम्र निवेदन है। अभी मुझे लगभग 70-75 पुराने तथा नए साहित्यकारों के इण्टरव्यू लेने हैं, जिनमें से अपनी भूलों को सुधारने का बल मिलेगा।

दस के तो मैं ले चुका हूँ। पाँच-छ: अधूरे हैं, जिन्हें पूरा करना है। उनके पूरा होते ही दूसरी पुस्तक प्रकाशित हो जाएगी। पत्रकारों की तो एक अलग पुस्तक होगी। उसका भी आधा कार्य हो चुका है। एक और पुस्तक स्वर्गीय साहित्यकारों से सम्बन्धित 'काल्पनिक इण्टरव्यू' नाम की है। 'साहित्य-सन्देश' के 'श्यामसुन्दर दास-अंक' में मेरी बाबू श्यामसुन्दर दास पर ऐसी एक इण्टरव्यू छपी भी है। इसके लिए मैं स्वर्गीय साहित्यकारों के ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ उनके वंशज तथा परिचितों से मिलकर सामग्री एकत्रित कर रहा हूँ। इस प्रकार इण्टरव्यू लिखने का मेरा लम्बा कार्य है। हिन्दी के कलाकार और सृष्टा यदि मुझे सहानुभूतिपूर्वक सहयोग और सहायता देंगे तो मैं निश्चय ही इस कार्य में कृत-कार्य हूँगा। यह प्रसन्नता की बात है कि अब तक जितने भी साहित्यकारों से मैं मिला हूँ, उनमें से अधिकांश महानुभावों ने मेरे इस कार्य के पूर्ण होने की मंगल कामना की है और पूरा-पूरा सहयोग भी दिया है।

इस पुस्तक की भूमिका मैं किसी विशिष्ट विद्वान से लिखाता तो उचित होता क्योंकि अपनी कृति के विषय में स्वयं कुछ कहना अत्यन्त कठिन कार्य है। लेकिन मुझे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करना था, इसलिए इसकी भूमिका मैंने ही लिखी है। मैंने ईमानदारी से अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने की चेष्टा की है और इण्टरव्यू लेने के कड़वे-मीठे अनुभवों को स्थान न देकर सामान्य कठिनाइयों का ही उल्लेख किया है। इसे मूल्यांकन नहीं समझना चाहिए। मूल्यांकन तो हिन्दी के विद्वान आलोचक और सजग पाठक करेंगे। मैं तो भयभीत हृदय से अपने इस प्रयास को उनकी कसौटी पर कसने के लिए भेज रहा हूँ। वे ही इसके खोटे-खरे का निर्णय करेंगे। इतना अवश्य है कि मेरे दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यदि वे अपने निर्णय और सुझाव देंगे तो मैं आगे बढ़ने का साहस सँजोने का उपक्रम करूँगा। वैसे मैं उनके प्रहारों से लाभ उठाने के लिए भी प्रस्तुत हूँ क्योंकि मुझे उनसे भी अपनी भूलों को सुधारने का बल मिलेगा। उन साहित्यकारों का मैं बहुत ऋणी हूँ, जिनके इण्टरव्यू इस पुस्तक में संग्रहीत हैं, क्योंकि यदि वे मुझे पूरा सहयोग न देते तो इस कार्य में कभी सफल न हो पाता। अन्त में मैं इस पुस्तक के प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली के उदारमना संचालक श्री रामलाल पुरी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिनकी कृपा से मेरा यह श्रम सार्थक हो सका। इस सम्बन्ध में हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस के श्री श्यामसुन्दर गर्ग का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने अत्यन्त अल्प-काल में पुस्तक को इस रूप में मुद्रित करके मुझे उपकृत किया है।

सबसे अधिक आभारी मैं हिन्दी के ख्यातनामा लेखक तथा कवि भाई श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का हूँ, जिन्होंने मुझे इस कार्य में समय-समय पर प्रोत्साहन और सहायता दी है। यह पुस्तक जैसी भी है, उनके ही अविरत प्रयत्न का फल है। इसकी आत्मा और शरीर के सँवारने सजाने का समस्त श्रेय उन्हीं को है। मैं उनके प्रति एक बार फिर कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आगरा कॉलिज, आगरा 14 जनवरी 1952
पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

प्र.6. ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'जूठन' आत्मकथा अंश की समीक्षा कीजिए। इसके देशकाल का भी उल्लेख कीजिए।

उत्तर

जूठन की समीक्षा

वर्ण्य विषय—ओमप्रकाश वाल्मीकि हिन्दी में दलित आन्दोलन से जुड़े महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनके साहित्य में मात्र आक्रोश और प्रतिक्रिया से परे समता, न्याय और मानवीयता पर टिकी एक नई पूर्णतर सामाजिक चेतना और संस्कृतिबोध की आहट है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया क्योंकि यह अपनी संवेदना और मार्मिकता के कारण मन पर गहरा असर छोड़ती है। दलितों का जीवन ऐसा था कि कोई सामन्त व सेठ-साहूकार दलितों को नाम से पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उनके संबोधन का तरीका यह होता था, अगर उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े, बराबर या उम्र में छोटा हैं तो 'अबे चूहड़े के' छुआछूत व अस्पृश्यता का एक ऐसा माहौल था कि कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस या अन्य किसी जानवर को छूना बुरा नहीं माना जाता था। यदि चूहड़े (मनुष्य) का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। यानी दलितों का समाज में कोई मान-सम्मान, इज्जत, अस्मिता तथा अपनी पहचान कुछ भी नहीं थी सिवाय 'चूहड़े' के। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा खत्म कर दिया गया था। वाल्मीकि जी अपने स्कूल की बात बताते हैं कि कैसे सवर्ण अध्यापक उन्हें बात ही बात में मारते थे, या कहते थे कि भंगी या चमारो के लड़के पढ़ नहीं सकते क्योंकि इनका जन्म पढ़ने के लिए नहीं हुआ हैं, आश्चर्य की बात यह है कि यह सच्चाई 1960 के दशक की है पर इसके लक्षण आज भी हर जगह दिख जाते हैं।

दलित विद्यार्थियों का पानी की पर्याप्त मात्रा के बाद भी प्यास बुझाना मुश्किल था, 'परीक्षा के दिनों में प्यास लगने पर गिलास से पानी नहीं पी सकते थे। हथेलियों को जोड़कर ओक से पानी पीना पड़ता था। पिलाने वाला चपरासी भी बहुत ऊपर से पानी डालता था। कहीं गिलास हाथों से छू न जाए।' ऐसे परिवेश में एक ओर सवर्णवादी मानसिकता का विकास होगा, तो दूसरी ओर दलित विद्यार्थियों के अंदर हीनता-कुण्ठा का भाव विकसित होगा। अकारण नहीं कि शिक्षित लोग जातिवादी मानसिकता से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

जूठन में दलितों को किस प्रकार 'बेगार' करनी पड़ती थी उसे भी लेखक ने बताया है। सवर्ण जमींदार दलितों को जबर्दस्ती से अपने खेत में काम करवाते थे। अगर कोई नहीं करता तो उसे दंड भी दिया जाता था। इस प्रथा ने दलितों के मान-सम्मान को कुचल दिया है। ऐसा ही प्रसंग लेखक के जीवन में भी आया है। जब लेखक दसवीं कक्षा में होते हैं तब वे अपनी परीक्षा की तैयारी करते हैं। उनके दो पेपर लिखना भी बाकी होता है। तीसरे पेपर की तैयारी शुरू करते हैं। तब गाँव का सवर्ण जमींदार लेखक के पास आता है और जबरदस्ती से बेगार करने ले जाता है। किन्तु लेखक आने के लिए तैयार नहीं होते फिर भी वह क्या कहता है, लेखक बताते हैं—'रात को पढ़ लियो .... अब मेरे साथ चल ईख बोना है। फौजी ने आदेश दिया। मैंने उससे बहुत कहा कि मुझे पढ़ना हैं, कल मेरा पेपर है, लेकिन वह नहीं माना। जबरदस्ती बाँह पकड़कर खींचते हुए खेत पर ले गया। डरा-धमकाकर काम पर लगा दिया। गालियों की बौछार में मेरा मस्तिष्क दहकने लगा। मेरे भीतर आग भर गई थी उस रोज त्यागियों के ये जुल्म मेरी स्मृति में बहुत गहरे तक भरे हुए हैं जिनकी तपाशे में अनेक बार झुलसा हूँ।' इस प्रथा का जन्म 'सामंती समाज की देन है जिसे दलितों ने कई पीढ़ियों तक इसे भोगा है। सामन्ती व्यवस्था में विलासिता की दृष्टि ज्यादा दिखाई देती है। जिसमें गरीबों को कुचलकर धन इकट्ठा किया गया। इस बेगारी में दलितों पर शारीरिक अत्याचार भी होने लगते थे। गरीब दलित शोषण के भाग्य का विधान मानकर अपनी असमर्थता और असहाय व्यवस्था का परिणाम मानकर निरन्तर इस चक्र में पिसता रहा। बेगारी प्रथा ने दलितों के जीवन में अँधेरा भर दिया था। 'जूठन' मे भी 'बेगारी' प्रथा का चित्रण आया है। लेखक के पूरे परिवार को माँ से लेकर भाई सभी को हिन्दू, मुसलमानों के घर में साफ-सफाई करना पड़ता था। गाय, भैंस, बैल का गोबर उठाना पड़ता था। गोबर और मूत्र पूरे दलान में फैलने पर दुर्गंध होती थी फिर भी उन्हें गोबर ढूंढकर निकालना पड़ता था। इन सभी के बदले उन्हें पैसे नहीं दिए जाते बल्कि क्या मिलता था? इस प्रसंग को लेखक व्यक्त करते हैं—'इन सब कामों के बदले मिलता था दो जानवर के पीछे फसल के समय पाँच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज। दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर अनाज, दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची-हुई रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी। कभी-कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी।' इस प्रकार पूरे सालभर काम करने के बावजूद 22-23 किलो अनाज दिया जाता था और बात करने का लहजा भी बड़ा क्रूर होता था। फिर भी दलितों ने इतने कष्ट होने के बावजूद अपने आपको बचाकर रखा यहीं बड़ी बात है। अत: ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने, जातीय अपमान और उत्पीड़न के जीवंत वर्णन के माध्यम से एक दलित की आत्मव्यथा को प्रस्तुत किया है। दिन-रात मर-खप कर भी पसीने की कीमत मात्र जूठन फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं, कोई शर्मिंदगी नहीं, पश्चाताप नहीं। यह समाज का एक क्रूर पक्ष है।

देशकाल—दलित-जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव-दग्ध हैं। इस वर्ण में पैदा होना ही उस समय भारत देश में सबसे बड़ी गलती मानी जाती थी जहाँ दलित परिवार के लोगों को आदमी नहीं समझा जाता था। इसी की अभिव्यक्ति 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से हुई है, एक दलित की आत्मव्यथा क्या होती है उसे बड़े ही मार्मिक ढंग से बताया है। अपनी आत्मव्यथा को उजागर करने वाली इस 'आत्मकथा' के बारे में स्वयं ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं—'दलित जीवन की पीड़ाएँ असहनीय और अनुभव-दग्ध हैं। ऐसे अनुभव जो साहित्यिक अभिव्यक्तियों में स्थान नहीं पा सके। एक ऐसी समाज-व्यवस्था में हमने साँसे ली हैं, जो बेहद क्रूर और अमानवीय है। दलितों के प्रति 'असंवेदनशील' भी....। अपनी व्यथा-कथा को शब्द-बद्ध करने का विचार काफी समय से मन में था। लेकिन प्रयास करने के बाद भी सफलता नहीं मिल पा रही थी।....इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लम्बी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा, उस दौरान गहरी मानसिक यातनाएँ मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर-परत उघेड़ते हुए कई बार लगा-कितना दु:खदायी है यह सब! कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण लगता है।' 'जूठन' सिर्फ ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा नहीं अपितु दलित समाज का भोगा सच है। 'जूठन' जातिगत उत्पीड़न और अतिदलित समाज के संघर्ष का आख्यान है।

❐

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अत: कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं। 922

मॉडल पेपर

हिन्दी गद्य

B.A.-II (SEM-III) [**पूर्णांक** : 75

निर्देश—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—सभी **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।* **(3 × 5 = 15)**

1. गद्य कहानी का आविर्भाव कब माना जाता है?
2. गबन उपन्यास किस सन् में लिखा गया?
3. 'दस तस्वीरें' किसकी रचना है?
4. 'श्रम ही साधना की सबसे बड़ी पूँजी है' यह कथन किसके द्वारा कहा गया है?
5. डायरी लेखन कितने प्रकार का होता है?

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित **तीन** पद्यांशों में से किन्हीं **दो** की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए। प्रत्येक व्याख्या **7.5** अंक की है। अधिकतम **200** शब्दों में उत्तर अपेक्षित है।* **(7.5 × 2 = 15)**

6. प्रेमचन्द युग के पश्चात् उपन्यास को कितने भागों में विभाजित किया गया? टिप्पणी कीजिए।
7. कहानीकार यशपाल जी के जीवन परिचय पर प्रकाश डालिए।
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित **पाँच** प्रश्नों में से किन्हीं **3** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15** अंक का है। विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।* **(15 × 3 = 45)**

9. प्रेमचन्द पूर्व युग के हिन्दी उपन्यासों का उल्लेख कीजिए।
10. गबन उपन्यास के पुरुष पात्रों के चरित्र का विवरण दीजिए।
11. रामकुमार वर्मा के 'दीपदान' एकांकी के तत्वों पर प्रकाश डालिए।
12. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन-परिचय और रचनाएँ लिखते हुए उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
13. यात्रा वृतान्त के स्वरूप को व्याख्यायित कीजिए।

❑

TOUCH 'n' PASS